

माय ब्लैक डायरी भाग-६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-६ : क्रोध

प्रवचन में मैंने सुना है कि किसी ने दूसरे का या हमारा कोई छोटा-बड़ा अपराध किया हो, और हम उसे सहन न कर सकें, उसे क्षमा न कर सकें, उस पर प्रतिक्रिया दें, उससे बात न करें, उसे भला-बुरा सुनाएँ... यह सब क्रोध है। अपराध-अक्षमा ही क्रोध है। मुझे इस परिभाषा के आधार पर अपने जीवन के छोटे-बड़े क्रोध का पश्चात्ताप भी करना है और आलोचना भी करनी है। मेरे क्रोध के कारण बेचारे दूसरे जीवों को बहुत दुःख होता ही है, और मान लीजिए कि दूसरे जीव दुःखी न भी हों, तो भी मुझे तो ऐसे भयानक पापों का बंध होता है कि मैं आने वाले भवों में दुर्गति पाकर अत्यंत दुःख भोगूँगा।

क्रोध के चार नुकसान मुझे अच्छी तरह याद हो गए हैं। (१) जब मैं क्रोध करता हूँ, तो मैं स्वयं ही अत्यंत दुःखी होता हूँ। मेरा मन तपता है, शरीर तपता है, शरीर काँपता है... यह मेरा अपना स्वानुभव है। (२) मेरे क्रोध के कारण अनेक लोग परेशान होते हैं। परिवार, मित्र, माता-पिता, भाई-बहन, बच्चे... सभी... (३) क्रोध के कारण मैं अनेक लोगों का दुश्मन बना हूँ। फिर हमारी दुश्मनी लंबी चली है, उसका अंत नहीं आया है। (४) ऐसा क्रोध सद्गति का नाश करता है, (चौथा फल मैंने सीधे अनुभव नहीं किया, लेकिन शास्त्रों के आधार पर इसमें मुझे दृढ़ श्रद्धा है)।

बचपन से लेकर आज तक क्रोध के बहुत से प्रसंग बने हैं, मैं उन सबको याद करने का प्रयास करके एक-एक प्रसंग लिखूँगा। इसमें मैं क्रम तो नहीं बनाए रख पाऊँगा, जैसे-जैसे याद आएगा, वैसे-वैसे लिखता जाऊँगा।

(१) मुझे क्रिकेट का बहुत शौक था, और मेरी गेंदबाज़ी ज़ोरदार थी। मेरी गेंदबाज़ी में रन बनाना आसान नहीं था। और मुझे विकेट भी अच्छे मिलते थे। स्वाभाविक है कि मुझे इसका घमंड आ ही गया था। पाठशाला के प्रवास में हम नागेश्वर गए थे। दोपहर में दो टीमें बनाकर मैच खेल रहे थे। उसमें सामने वाली टीम में मुझसे छोटा और क्रिकेट में सामान्य माना जाने वाला मेरा एक मित्र था। जब मेरी गेंदबाज़ी आई, तब वह स्ट्राइक पर था। उसने मेरी गेंदबाज़ी पर ज़ोरदार शॉट मारे, धड़ाधड़ चौके जाने लगे, सब मेरा मज़ाक उड़ाने लगे, सीटियाँ बजाने लगे। मेरा मान आहत हुआ। एक बिल्कुल सामान्य बल्लेबाज़ ने आज मेरी धुलाई कर दी थी। दूसरे ओवर में मैंने गुस्से से बाउंसर फेंकी, सीधे उसके मुँह पर लगे, उसी तरह से फेंकी। लेकिन उस गेंद पर भी ज़ोरदार प्रहार करके उसने चौका लगा दिया। उसकी टीम वाले ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। उसके बाद की गेंद मैंने सीधी मुँह पर फेंकी, पिच पर गेंद को टप्पा ही नहीं खिलाया... कोई भी देखता तो समझ जाता कि 'मैं उसे घायल करना चाहता हूँ।' पर उसने उस गेंद को भी पीटकर चार रन ले लिए। मेरी टीम के कप्तान ने भी आकर मुझसे कहा कि 'यह तरीका ठीक नहीं है, दुश्मन के साथ भी ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। यह तो खेल है। इसमें खेल-भावना होनी ही चाहिए...' साहेबजी! मेरी टीम वालों को भी मेरा व्यवहार अत्यंत खराब लगा, तो इसका मतलब यही है कि मेरा व्यवहार कितना नीच स्तर का रहा होगा... पर उस समय मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ। मैंने उसे आउट करने या उसे नियंत्रण में लेने की बहुत कोशिश की, लेकिन उस दिन उसने मुझे सबसे ज़्यादा धोया, और अंत में मेरी ही गेंद पर शॉट मारकर, चार रन लेकर उसने जीत हासिल की। नागेश्वर के गाँव के स्कूल में मैच हारने के बाद जब हम सब धर्मशाला की ओर लौट रहे थे, तब मेरा मुँह उतरा हुआ था। मेरे कानों में तरह-तरह के शब्द सुनाई दे रहे थे... 'बेचारा आज अच्छी तरह धुल गया... देखो तो ज़रा, जैसे अरंडी का तेल पी लिया हो ऐसा मुँह हो गया है... अहंकार तो राजा रावण का भी नहीं टिका...' मेरा क्रोध बहुत बढ़ता जा रहा था, उसमें एक लड़के ने तो मेरा बहुत मज़ाक उड़ाया, और मैं अपना

नियंत्रण खो बैठा, दौड़कर उसके पास पहुँचा और उसे ज़ोर से एक थप्पड़ मार दिया। उसने मुझे धक्का मारकर नीचे गिरा दिया... फिर तो हम दोनों के बीच सड़क पर ही गुत्थम-गुत्था शुरू हो गई। दूसरे सब लोगों ने बड़ी मुश्किल से हम दोनों को अलग किया। पर हमारे मुँह से निकल रहे अपशब्दों को कोई नहीं रोक सका।

ऐसी तीर्थभूमि में भी मैंने अतिक्रोध में आकर एम.सी., बी.सी. जैसी गंदी गालियाँ दीं। सभी लड़के आश्चर्यचकित रह गए। क्योंकि मैं अष्टप्रकारी पूजा करने वाला, पाठशाला में पाँच प्रतिक्रमण सीख चुका, सामायिक-प्रतिक्रमण करने वाला लड़का था, मेरे मुँह से निकली ये गालियाँ उन्हें आश्चर्य में डाल गईं... हम धर्मशाला पहुँचे, रात में मेरे उस मित्र ने मुझसे बात करने की कोशिश की थी, उसका तो कोई दोष ही नहीं था, क्योंकि उसने तो बस बल्लेबाज़ी की थी। पर मुझे उसके प्रति बहुत क्रोध था... मैंने उससे बात नहीं की। मुँह फेर लिया, उसने मुझे मनाने की कोशिश की, पर मैंने उससे कह दिया 'हमारी दोस्ती अब कैंसिल! मुझसे बात करने की बिल्कुल कोशिश मत करना।'

म.सा.! कैसा ज़हरीला, नाग जैसा स्वभाव था मेरा! नाग तो फिर भी अच्छा कि परेशान करने वाले को डंसता है। मैं तो एकदम निर्दोष को डंस रहा था। पर्युषण में भी उसने अपनी कोई गलती न होने पर भी मुझसे मिच्छामि दुक्कड़ माँगा था, पर मैंने कोई जवाब ही नहीं दिया...

मेरे इस क्रोध परिणाम के लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

कुछ वर्षों बाद जब मुझे सच्चा धर्म मिला, मैंने क्षमा का महत्त्व समझा। तब मैं उसके घर जाकर माफ़ी माँग आया। वह तो मुझे देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ, हम दोनों गले मिले, बहुत रोए... आज तो हम पक्के मित्र हैं।

(२) मैंने माँ को बहुत परेशान किया है। मुझे खाना पसंद नहीं आया, तो थाली को लात मारकर उठ गया हूँ। माँ मुझे मनाती, तो भी गुस्से के कारण मैं नहीं मानता था। माँ को न जाने कैसे-कैसे शब्द कहे हैं। 'तुम तो मेरी असली माँ हो ही नहीं। तुम्हें मुझसे कोई प्यार नहीं है।' ऐसे-ऐसे शब्द बोले हैं, माँ बहुत रोई भी है... और फिर भी मुझमें करुणा नहीं जागी। मैंने अपनी ज़िद पूरी करने के लिए हर बार गुस्सा किया है। किसी भी बात के लिए माँ मना करे, तो तुरंत गुस्सा... अंत में माँ को मेरी बात माननी ही पड़ती थी।

- मुझे कोई गेम चाहिए था, माँ ने खरीदने से मना किया, और गुस्सा, अपशब्द, रूठना, बोलना बंद, खाना-पीना बंद... माँ को मानना ही पड़ता था।
- मुझे होटल-थिएटर जाना था, माँ ने फिजूलखर्ची के कारण, मेरी सेहत के कारण, कुसंस्कारों से बचाने के कारण मुझे मना किया... और गुस्सा, अपशब्द, रूठना...
- स्कूल से विदेश यात्रा पर जाना था। माँ ने मना किया, और गुस्सा...
- मुझे कोई चीज़ खानी थी, मैंने वही चीज़ बनाने की ज़िद की। उस दिन माँ की अनुकूलता नहीं थी, तो उसने मना किया, और गुस्सा...

साहेबजी! कितनी बातें लिखूँ? अपनी अत्यंत उपकारी माँ को मैंने अपनी नौकरानी ही समझा। उससे अपनी सेवा करवाई, उसे बस आदेश ही देता रहा। मैंने उसकी कीमत नहीं समझी... और माँ सिर्फ मेरे प्रेम के खातिर मेरी सारी इच्छाएँ पूरी करती थी।

इसीलिए मैं सुध-बुध खो बैठा था। लेकिन दो प्रसंगों से मेरी आँखें खुलीं। एक बार माँ बीमार पड़ी, बीमारी लंबी होने से, सेवा की ज़रूरत होने से माँ मायके चली गई। तब मुझे एहसास हुआ कि माँ के बिना मुझे कितनी तकलीफें होती हैं... घोर बीमारी के बीच भी माँ का फोन बार-बार आता, खाँसी बहुत तेज़ होती, फिर भी मुझसे पूछती 'तुमने नाश्ता किया, तुमने खाना खाया...' और बार-बार Sorry बोलती, 'Sorry बेटा! मैं बहुत बीमार हूँ। जल्दी ठीक होकर आऊँगी...' मुझे तब समझ आया कि 'माँ क्या तत्व है?'

संयोग से उसी समय एक मित्र मुझे तीन दिन के शिविर में ले गया। म.सा. ने 'माँ-बाप को वंदना' गीत पर बहुत ज़बरदस्त समझाया। मैं बहुत रोया... मैंने उसी समय दो फुलस्केप भरकर माँ को पत्र लिखा। उसमें माँ के उपकार लिखे। अपनी नीचता लिखी... व्हाट्सएप पर पत्र भेजकर फोन किया, रोती आँखों से बोला, 'माँ!...' बस, आगे बोल न सका। माँ ने पूछा 'तुम रो रहे हो? बेटा! क्या हुआ?' वह अपनी बीमारी में भी मेरी चिंता में पड़ गई। बड़ी मुश्किल से मैंने इतना कहा 'माँ! पत्र भेजा है, पढ़ लेना।' और मैंने फोन काट दिया। १० मिनट बाद माँ का फोन आया। वह भी रोते-रोते ही बात कर रही थी। उसके शब्दों में अपार वात्सल्य था। मेरे एक भी अपराध के लिए कोई शिकायत नहीं... मैंने Thank You और Sorry दो शब्द बहुत भावपूर्वक कहे। उसके बाद मैंने माँ पर कभी क्रोध नहीं किया। उसकी हर बात मैंने मानी है। उसकी बहुत देखभाल की है। ज़िद छोड़ दी है... माँ को मैंने बहुत-बहुत-बहुत खुशी दी है। लेकिन इतने समय तक मैंने माँ को जो दुःख पहुँचाया, जो बार-बार गुस्सा किया... उस सब के लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(३) मैंने गुस्से में माँ को गधी, कुतिया, भैंस... ऐसे शब्द भी कहे हैं। माँ ने उस समय मुझे थप्पड़ मारा था, पर फिर भी मुझे अपनी गलती समझ नहीं आई थी। 'माँ' को ऐसे शब्द नहीं कहने चाहिए... इतनी सामान्य समझ भी मुझमें नहीं थी।

(४) गुस्से में मैंने माँ पर अपने हाथ की चम्मच ज़ोर से फेंकी थी, माँ ने बीच में हाथ कर दिया, इसलिए माँ बच गई, वरना सिर में या माथे पर ही लगती।

(५) गुस्से में मैंने अपना मोबाइल ज़ोर से फेंका, दीवार से टकराकर टूट गया, ६० हज़ार का मोबाइल था... माँ ने मुझे डाँटा, समझाया... पर मेरा मन पशु जैसा था। नहीं समझा सो नहीं ही समझा।

(६) बाल कटवाकर घर आया, माँ ने नहा लेने को कहा। मुझे आलस आ रहा था, फिर भी माँ ने आग्रह किया, मैंने स्नान तो किया, परंतु मन में बहुत नाराज़गी थी, तो माँ को

परेशान करने के लिए पौन घंटे तक बाहर ही नहीं निकला। माँ तनाव में आ गई कि 'इसने गुस्से में अंदर कुछ कर तो नहीं लिया है...' उसने मेरा नाम लेकर आवाज़ें लगाईं। मैंने जान-बूझकर जवाब नहीं दिया। उसने दरवाज़ा ज़ोर से खटखटाया, पर मैंने कोई जवाब ही नहीं दिया... फिर जब वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी, तब जवाब दिया कि 'दो मिनट में खोलता हूँ...' तब उसे शांति हुई। इस तरह क्रोधवश रूठकर माँ को बहुत परेशान किया, अंतरमन से मिच्छामी दुक्कड़।

(७) मैं रास्ते पर चल रहा था, और कोई लड़का साइकिल चलाते हुए संतुलन खो बैठा, मुझसे टकरा गया, वह तो ज़मीन पर गिरा ही, पर मुझे गुस्सा आने पर मैंने उसे दो-चार गालियाँ सुना दीं, और साथ में दो थप्पड़ भी मार दिए, वह बेचारा छोटा लड़का था, और गलती उसकी थी, इसलिए Sorry Sorry... बोलता रहा, वह डर गया था, उसे मारकर जाने दिया। मिच्छामी दुक्कड़।

(८) मानसून में पूजा के कपड़े पहनकर देरासर जा रहा था, तभी एक बाइक वाला एकदम तेज़ गति से मेरे पास से निकला, कीचड़-पानी मुझ पर उड़ गया, और दुर्घटना होते-होते रह गई। मुझे तब भी गुस्सा आया, एम.सी., बी.सी. गालियाँ पूजा के कपड़ों में मेरे मुँह से निकलीं। वहीं से घर वापस लौट आया, पर मन में तो गुस्से के कारण कुछ न कुछ सोचता ही रहा...

(९) अपार्टमेंट के नीचे सड़क पर क्रिकेट खेल रहे थे, उसमें किसी कारण से एक बड़े लड़के ने मुझे धक्का मारकर नीचे गिरा दिया, मुझे बहुत गुस्सा आया, पर उस लड़के के सामने मेरी कोई शक्ति नहीं थी, पर उसी समय मेरा बड़ा भाई आ गया, उसने वह दृश्य देख लिया था। उसने उस बड़े लड़के को ज़मीन पर गिराकर उसका गला दबाया, मुझे बहुत खुशी हुई, मैं ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा, 'भाई! मार इसे, ज़ोर-ज़ोर से मार...' आज जब यह प्रसंग याद करता हूँ, तो मुझे बहुत शर्म आती है। मैंने कैसे गंदे विचार किए, कैसा क्रोध किया... ऐसी विचित्र वृत्तियाँ मुझमें थीं, अंतरमन से क्षमा माँगता हूँ।

(१०) परीक्षा में मुझे कुछ उत्तर नहीं आ रहे थे, मैंने इशारे से अपने मित्र से उत्तर पूछे, पर उसने मेरा साथ नहीं दिया। मैंने दो-चार बार इशारे किए, पर उसने जवाब नहीं दिए। बस, मुझे उस बात पर गुस्सा आ गया, परीक्षा के बाद उससे मिलकर गुस्से से कह दिया कि 'मैं तुझे अपना Best Friend मानता था, पर तूने मुझे सपोर्ट नहीं किया। ऐसे दोस्त का मुझे कोई काम नहीं... हट!' गलती तो मेरी थी कि मैं नकल करना चाहता था, उसने मुझे नकल नहीं करने दी, इसमें उसकी क्या गलती? उसके बाद तो दो-चार बार उसकी साइकिल में पंक्चर कर दिया, इस तरह उसे परेशान किया। अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(११) एक मित्र मेरी नोटबुक देखने के लिए ले गया। पर फिर उसने मुझे वापस नहीं दी, उसने उसे खो दिया था, कुछ दिन तो मुझे सही बात नहीं बताई, 'देता हूँ' कहकर झूठे वादे करता रहा। फिर मुझे शक हुआ, और मुझे गुस्सा आया... 'झूठे! तू मेरी नोटबुक खो बैठा है, तो सच क्यों नहीं बोलता? और अगर खोई नहीं है, तो तू मेरी नोटबुक का चोर है...' वह बेचारा क्या बोलता? पर मैंने सबके सामने उसका अपमान किया। उसने माफ़ी माँगी, पर मेरा गुस्सा शांत नहीं हुआ।

(१२) मैंने एक व्यक्ति से अपने काम के लिए बाइक माँगी, उसने कोई बहाना बनाकर मुझे बाइक नहीं दी। मुझे उस पर गुस्सा आया... मैंने उसे मन में रख लिया। कुछ समय बाद उसने मुझसे बाइक माँगी, तब गाली देते हुए उसे सुना दिया कि सा...! उस समय तूने मुझे बाइक नहीं दी थी। अब तू मुझसे माँगने आया है? मर जाऊँगा, पर तुझे नहीं दूँगा... निकल घर से बाहर...' ऐसे अपमानजनक शब्द बोले।

(१३) अपनी बहन पर तो अनेक बार गुस्सा किया है। एक बार मम्मी-पापा बाहर गए थे, बहन ने समय पर खाना नहीं बनाया, तो मैंने उस पर गुस्सा किया, सामने उसने भी मुझे सुना दिया कि 'मैं तेरी नौकरानी नहीं हूँ...' मुझे और गुस्सा आया। मैंने माँ से शिकायत की, माँ ने उसे बहुत डाँटा, वह तब तो क्या बोलती? पर बाद में मुझे कह दिया कि 'तेरे

जैसा नीच भाई न होता तो अच्छा होता...' उसके बाद वह मुझसे कभी प्यार से बात नहीं करती थी। बस काम से काम... मेरी गलती के कारण हमारे बीच हमेशा के लिए न बोलने की एक लोहे की दीवार खड़ी हो गई। आज बहुत पछतावा होता है, धर्म की समझ आने के बाद मैंने उससे विशेष रूप से उस प्रसंग को याद करके माफ़ी भी माँग ली। उसने भी उदार मन से माफ़ कर दिया। अभी तो हम सब शादी करके अपने-अपने जीवन में व्यवस्थित हो गए हैं, पर वर्षों पुराने इस प्रसंग की आलोचना करनी बाकी थी, मिच्छामी दुक्कड़।

(१४) एक पन्यासजी म.सा. के साथ मैंने चर्चा शुरू की कि 'देव वर्षीदान का धन लाते हैं, तो वह तो उनका नहीं होता, तो देवों को दोष लगता है या नहीं?' म.सा. ने जवाब दिए, पर मुझे संतोष नहीं हुआ, वह चर्चा लंबी चली, मेरी आवाज़ ऊँची होती गई। जवाब जैसे-तैसे लगाने से मेरा गुस्सा बढ़ता गया और मेरी ऊँची आवाज़ में वह गुस्सा घुलता गया। अंत में तो मैंने मर्यादा छोड़कर एकदम स्पष्ट उनके मुँह पर कह दिया कि 'म.सा.! गलत-सलत जवाब मत दीजिए, स्वीकार कर लीजिए कि आपको नहीं आता... तो दोष नहीं लगेगा।' म.सा. हक्के-बक्के रह गए, दूसरे दिन म.सा. ने मुझे समझाया कि 'इस तरह बात नहीं करनी चाहिए।' पर मैंने अपने मित्रों से ऐसी बात की कि 'एक तो खुद गलती करते हैं, और ऊपर से मुझे सलाह देते हैं। इन सब म.सा. को आता-जाता कुछ नहीं, और ज्ञानी होने का दिखावा करते हैं...' इस हर अवसर पर मेरे मन में क्रोध का भाव था, उसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(१५) सीरियल-मूवी देखने में मैंने बेवजह अनेक बार क्रोध किया है। उसमें विलेन दिखा। उसकी खराब गतिविधियाँ दिखीं, उसमें वह सफल होता दिखा, तो उस पर बहुत गुस्सा आया। कभी हीरो-हीरोइन की एक्टिंग थर्ड-क्लास लगाने पर भी गुस्सा आया। कभी पूरी मूवी बोरिंग लगाने पर डायरेक्टर पर गुस्सा आया। कभी चलती मूवी में बिजली चले जाने पर सरकार पर गुस्सा आया। 'टैक्स तो लेते हैं, पर ठीक से सुविधा नहीं देते।' ऐसे क्रोधजन्य विचार किए। ये सब क्रोध वैसे तो छोटे थे, पर बिना

कारण के थे। आत्मा में इन सबके कारण बिल्कुल गलत संस्कार पड़े। अंतरमन से मिच्छामी दुक्कड़।

(१६) ऐसा ही क्रिकेट मैच देखने में हुआ, जब भारत के शीर्ष बल्लेबाज़ ठीक से नहीं खेले, गेंदें खाली निकालीं, या फिर जल्दी आउट हो गए, तो तुरंत उन पर गुस्सा आया। मन में विचार किए और बोला भी कि 'सब मैच फिक्सिंग करके, पैसे खाकर बैठे हैं।' विरोधी टीम के बल्लेबाज़ों ने जब ज़ोरदार बल्लेबाज़ी की, तब उन पर गुस्सा आया। भारत के बल्लेबाज़ का विकेट लिया, तब भी गुस्सा आया... इस प्रकार, बिना कारण के अनेक बार क्रिकेटर्स पर गुस्सा किया। यह गुस्सा लंबा नहीं चला। पर गुस्सा तो गुस्सा है! उसके लिए सच्चे मन से मिच्छामी दुक्कड़।

(१७) मेरी सगाई हुई, लड़की अच्छे परिवार की, संस्कारी, गुणवान थी। मैंने सगाई के बाद उसके साथ थोड़ी स्वतंत्रता लेने की कोशिश की। उसने मेरी बात नहीं मानी, मुझे प्यार से समझाया कि 'शादी के बाद यह सब तो है ही। पर अभी मर्यादा नहीं लाँघनी है।' हमारे बीच काफी बहस हुई। मैं गुस्से में बोल रहा था, वह शांति से बोल रही थी... अंत में मेरा पारा चढ़ गया, मैंने उसे एक थप्पड़ मार दिया, और घर जाकर माता-पिता से कह दिया कि 'मुझे सगाई तोड़नी है।' माता-पिता ने मुझे समझाया, शांत किया। उस लड़की की शराफत कि उसने किसी को यह बात नहीं बताई, और सगाई तोड़ने की बात भी नहीं की... मेरी सगाई नहीं टूटी...

(१८) सगाई और शादी के बीच ऐसे अनेक प्रसंग बने। मैंने उसे देर रात की पार्टियों में आने के लिए मनाया, पर उसकी एक ही बात थी, '११ बजे तक मुझे घर पहुँचना है... मुझे ऐसी शराब-हुक्का-डांस वाली पार्टियाँ पसंद नहीं हैं। इसके बदले बगीचे में घूमने चलें...' मैंने फोन पर उसे न जाने कैसे-कैसे शब्द कहे। वह मुझे बहुत पसंद थी, पर उसका ऐसा व्यवहार मुझे पसंद नहीं था। आज समझ आता है कि वह सही थी। उसने अपने माता-पिता की चिंता की थी... ऐसी किसी भी जगह पर वह जाए, कुछ अनहोनी हो जाए, तो

कोई भी माता-पिता चिंता करेंगे ही। पर उस समय तो मैं अपने ही मिजाज में था, मुझे लगता है कि उसने मेरा ऐसा स्वभाव कैसे सह लिया, उसने सगाई क्यों नहीं तोड़ दी? वह समता की देवी थी, और मैं क्रोध का राक्षस था। अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(१९) एक रात हम होटल गए, मैंने उसे मेन्यू दिया, उसने कहा 'आप मँगवा लीजिए। आज चैत्र सुद तेरस है।'

ओली भी चल रही है और प्रभु का जन्मदिन भी है। इसलिए मैंने आज उपवास किया है।' मुझे इतना भयंकर गुस्सा आया कि मैं वहीं कुर्सी पटककर धड़धड़ाते हुए बाहर निकल गया। होटल में बैठे सभी लोग मुझे देखने लगे, वह तुरंत मेरे पीछे-पीछे आई, पर मैं अकेला बाइक पर निकल गया, उसे वहीं अकेला छोड़ दिया। उसने कई फोन किए, पर मैंने उठाए ही नहीं। मैंने उसे बहुत दुःखी किया। आज याद करता हूँ, तो रोना आता है, उसने मुझे हमेशा सुख दिया है, और मैंने उसे अत्यंत दुःखी किया है। खूब-खूब मिच्छामी दुक्कड़।

(२०) शादी होने के बाद कुछ समय तो सब कुछ ठीक चला। धीरे-धीरे सास-बहू का संघर्ष शुरू हो गया। मेरी मम्मी का स्वभाव उम्र के कारण थोड़ा विचित्र हो गया था, मेरी पत्नी बहुत कुछ सह लेती थी। फिर भी रोज़ की खटपट के कारण वह कभी-कभी कुछ बोल बैठती, वह कभी ऊँची आवाज़ में नहीं बोलती, गुस्सा नहीं करती, पर मम्मी की बात के सामने दलील देती, तर्क देती... और मम्मी का अहंकार आहत हो जाता। क्योंकि मम्मी की बात ज़्यादातर बिना तर्क की होती थी, इसलिए पत्नी के तर्कों के सामने उनकी बातें टिक नहीं पाती थीं। अब मम्मी अपनी गलती तो स्वीकार कर नहीं सकतीं, अहंकार को चोट पहुँचती थी। इसलिए फिर सीधी एक ही बात कहतीं कि 'तू मेरे सामने बोलती है, तुझमें कोई विनय नहीं है...' अब मुझे यह सब कुछ पता नहीं था। मम्मी के लिए मेरे मन में बहुत प्यार था, इसलिए जब मैं घर आता, तब मम्मी एकांत में मुझे पत्नी की सही-गलत गलतियाँ बतातीं, और रोतीं... बस! उन्हें रोता देखकर मेरा

खून खौल उठता। मुझे अपनी पत्नी पर गुस्सा आता, 'वह अपने मन में समझती क्या है? मेरी मम्मी के सामने बकवास करती है...' और फिर मम्मी-पापा के सामने ही उसे बुरी तरह डाँट दिया... 'तेरी माँ ने तुझे ऐसे कुसंस्कार दिए हैं...' इस तरह उसकी मम्मी तक को अपशब्द कह डाले। वह रो पड़ी, रोते-रोते बोली, 'Please! मम्मी के लिए कुछ मत बोलिए। जो कुछ कहना हो, मुझे कहिए...' पर उसकी यह विनती सुनकर तो मैं दोगुने गुस्से में आकर बोला, 'अरे, एक बार नहीं, हज़ार बार बोलूँगा... तेरी माँ के लिए! वह कोई देवी है? मुझे तो तेरे बाप पर भी शक होता है कि वही असली बाप है, या कोई दूसरा?' क्रोधावेश में मैंने उसकी माँ को अप्रत्यक्ष रूप से व्यभिचारिणी कह दिया। उस वक़्त पहली बार उसने मेरे सामने गुस्सा किया। 'चुप! एकदम चुप! एक अक्षर भी अब आगे मत बोलिएगा। नहीं तो...' वह बेचारी कुछ धमकी देना चाहती थी, पर क्या धमकी देती? पर मेरा क्रोध तो आसमान पर पहुँच गया, गंदी गालियाँ बकीं, 'तू मुझे चुप कराने वाली कौन?...' गुस्से में उसे धक्का दे दिया। 'तू निकल। अभी के अभी इस घर से निकल... तेरे जैसी औरत मुझे चाहिए ही नहीं...' और सीधा फोन उसके पापा को किया, 'अपनी लड़की को घर ले जाइए...' वे बेचारे मेरे घर आए, मुझसे माफ़ी माँगी, अपनी बेटी को डाँटा, 'शांति से जी न! क्यों हमारी ज़िंदगी में ज़हर घोल रही है...' फिर हमसे बहुत विनती की कि 'इसे यहीं रखिए। अब गलती नहीं करेगी।' मेरे अहंकार के तुष्ट होने से मेरा क्रोध ठंडा पड़ा। 'समझ लेना। अब इसके बाद तुम्हारी कोई शिकायत आई न, तो मेरे जैसा नीच कोई नहीं मिलेगा। मैं अपनी माँ को दुःखी नहीं देख सकता...'

साहबजी! सारी गलती मेरी ही थी। मम्मी मेरी उपकारी हैं, यह बात सच है, पर पत्नी भी सब कुछ छोड़कर सिर्फ मेरे भरोसे इस घर में आई है। मुझे उसके साथ अन्याय नहीं करना चाहिए था। मुझे उसकी बात सुननी चाहिए थी, समझनी चाहिए थी, मन एकदम शांत रखकर बीच का रास्ता निकालना चाहिए था। मम्मी को भी ऐसा न लगे कि 'उनके साथ कोई नहीं है।' पर ऐसा कोई विवेक मैंने नहीं रखा। अरे, जैसे मुझे मेरे माँ-बाप प्यारे हैं, और इसलिए मैं उन्हें दुःखी होते नहीं देख सकता। वैसे ही मेरी पत्नी को

भी उसके माँ-बाप उतने ही प्यारे हैं, वह कैसे उनके लिए गलत शब्द सुन सकती है? कैसे शांत रह सकती है? और उसमें भी मैं उसकी सगी माँ को व्यभिचारिणी कहूँ, यह तो उससे कैसे सहन होता? उसे कितना आघात पहुँचता? वह अपने पेरेंट्स के कहने पर मेरे घर रह गई, वह भी सिर्फ इसलिए क्योंकि वह माँ-बाप पर बोझ नहीं बनना चाहती थी। उसके बाद भी छोटे-मोटे प्रसंग बनते गए, मेरी मम्मी का छोटी-छोटी बातों में शिकायतें करने का स्वभाव नहीं गया, और मेरा गुस्सा करने का स्वभाव नहीं गया। पर उसने सामने तर्क देना छोड़ दिया। तुरंत अपनी गलती स्वीकार कर लेती, माफी माँग लेती... इसलिए वह प्रसंग आगे नहीं बढ़ता था। मैंने अनेकों बार गुस्सा कर-करके उसे बहुत मानसिक त्रास तो दिया ही है, उसके लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(२१) एक बार चौमासी चौदस और रविवार दोनों एक साथ आए, हम हर रविवार को बाहर घूमने जाते थे। वह धार्मिक होने के कारण उसे होटल आदि की इच्छा कम थी, पर सिर्फ मेरे लिए वह आती थी। मेरे साथ मूवी देखती, होटल में खाती... मुझे पता था कि उसकी रुचि कम है, फिर भी उसके व्यवहार में ऐसा कुछ महसूस नहीं होता था... इसलिए इस बारे में प्रायः झगड़ा नहीं हुआ था। पर इस रविवार को मैंने उससे कहा कि 'चल, बाहर घूमने चलते हैं।' उस समय साढ़े नौ बजे थे। वह सकपका गई। 'अरे, आज तो चौमासी चौदस है। मैं तो प्रतिक्रमण भी करके आ गई। मेरा आज एकासना है...' और मुझे ऐसा गुस्सा आया, 'तेरी चौमासी चौदस, तेरे एकासना... इसमें मेरी ज़िंदगी बर्बाद कर रही है तू...' और मैं खिड़कियाँ-दरवाज़े ज़ोर-ज़ोर से पटकने लगा, ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा। चार मंज़िला हमारी बिल्डिंग में सबको सुनाई दे, इतनी ऊँची मेरी आवाज़ थी। वह डर गई। उसे लगा कि 'इसमें इज़्ज़त जाएगी।' वह तुरंत मेरे साथ आने को तैयार हो गई। मुझे अपनी विजय देखकर मज़ा आया। उसने मेरे साथ रात में खाया, और मैं मन ही मन खुश होता रहा। मुझे यह होश नहीं था कि उसकी बाधा तुड़वाकर, और उसमें खुश होकर मैं घोर पाप बाँध रहा हूँ। सिर्फ अपना अहंकार पोष रहा हूँ... उसके हृदय में तो मेरे लिए सम्मान कम ही हो रहा है। ऐसी बातों में अगर मैंने

उसे सपोर्ट किया होता, कि 'कोई बात नहीं, आज चौदस है... फिर कभी चलेंगे...' या 'एक काम करा। तू साथ तो आ, भले ही कुछ खाना मत...' ऐसा भी कह सकता था... रास्ते तो कई थे, पर गुस्सैल स्वभाव होने के कारण मैंने क्रोध के सिवाय दूसरा रास्ता कभी पकड़ा ही नहीं। इस क्रोध के लिए भी खूब-खूब मिच्छामी दुक्कड़।

(२२) मुझमें कामवासना बहुत तीव्र थी, ब्रह्मचर्य का पालन मेरे लिए कठिन था। धर्म में मेरी कोई रुचि नहीं थी। पत्नी तो प्रवचन आदि सुनकर अच्छी तरह धर्म की ओर मुड़ चुकी थी। मुझे उसके धर्म करने से कोई समस्या नहीं थी, पर उसके कारण मेरी मौज-शौक की ज़िंदगी में मुझे समस्या हो, यह बिल्कुल सहन नहीं होता था। एक बार प्रवचन में ब्रह्मचर्य की बातें सुनकर पाँच तिथियों की बाधा ले आई, मुझे पता नहीं था... उस दिन अष्टमी ही थी। रात में जब मैं उसके पास गया, तो उसने सहज भाव से कहा कि 'हम महीने में पाँच तिथि 'दो अष्टमी, दो चतुर्दशी, और शुक्ल पंचमी' को ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे।' मेरी तो आँखें फटी रह गई। मैंने स्पष्ट मना कर दिया, 'यह नहीं होगा...' वह कहने लगी 'मैंने बाधा ले ली है। और महीने में सिर्फ पाँच ही दिन तो हैं...' बाधा शब्द सुनकर मैं भड़क गया, 'तू किससे पूछकर बाधा लेकर आई, तुझे इजाज़त किसने दी? इन सब महाराजाओं के यही धंधे हैं... मैं अभी जाता हूँ महाराज के पास! धमका दूँगा...' मैं तो तुरंत उपाश्रय जाने लगा, वह समझ गई कि मैं महाराज साहब के साथ भयंकर झगड़ा करके ही आऊँगा। वह मेरे पैरों में गिर पड़ी, माफी माँगी, 'मैं अपनी बाधा कैंसिल करती हूँ। पर आप उपाश्रय मत जाइए...' पर मुझे इतना गुस्सा था कि मैंने तय कर लिया कि 'महाराज को धमकाना ही पड़ेगा।' तब तो मैं नहीं गया, पत्नी के साथ अब्रह्म का सेवन करके उसकी बाधा तो तोड़ ही दी। दूसरे दिन दुकान से ट्रस्टियों को साथ लेकर, पत्नी के साथ महाराज साहब के पास गया। सबके बीच उन्हें खरी-खोटी सुनाई। 'आप मुझसे पूछे बिना, मेरी इजाज़त के बिना मेरी पत्नी को ब्रह्मचर्य की बाधा कैसे दे सकते हैं? आपके कारण हमारे झगड़े होते हैं। आप हमें शांति से जीने दीजिए... अब अगर आपने किसी को भी उसके पति की इजाज़त के बिना ब्रह्मचर्य, होटल-

सिनेमा-मूवी आदि की बाधा दी न, तो मैं प्रवचन में सबके बीच आपको सुना दूँगा...' महाराज साहब तो बेचारे एक अक्षर नहीं बोले, पत्नी ने मुझे रोकने की बहुत कोशिश की, पर मैंने स्पष्ट शब्दों में सुना दिया... साहबजी! ऐसे-ऐसे क्रोध किए हैं मैंने, महाराज साहब को भी जो मन में आया सुना दिया है... महाराज साहब ने उसे कोई ज़बरदस्ती नहीं की थी। पत्नी ने सामने से बाधा माँगी, तो उन्होंने भोले भाव से दे दी, उन्हें ऐसा विचार भी नहीं आया कि 'पाँच तिथियों के लिए कोई श्रावक मना करेगा...' वगैरह। मेरे इस क्रोध के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(२३) मेरी दादी बूढ़ी हो गई थीं, बिस्तर पर थीं, दादाजी तो गुज़र चुके थे। बुढ़ापे के कारण उन्हें कई बातों का ध्यान नहीं रहता था। बिस्तर में ही कई बार पेशाब कर लेतीं, कभी-कभी मल भी बिस्तर में ही कर लेतीं... मुँह से लार बाहर टपकती रहती... यह सब मम्मी और एक पगार पर रखी सहायिका साफ़ करती थीं। मुझे इसमें कुछ नहीं करना पड़ता था। पर मम्मी कभी-कभी मुझे मदद के लिए बुलातीं। दादी को उठाने के लिए दो-तीन लोगों की ज़रूरत पड़ती। उस समय यह सब गंदा देखकर मुझे बहुत घिन आती। दादी पर गुस्सा आता। गुस्से में मैंने दादी को कड़वे शब्द कहे कि 'दादी! सारी ज़िंदगी बहुत खाया, अब खाने में होश तो रखिए... यह जो चाहे खा-खा करती हैं, इसीलिए लूज़ मोशन होते हैं। इसलिए कंट्रोल नहीं रहता...' मम्मी को भी खीझ तो आती ही थी, इसलिए उन्होंने भी मुझे ऐसा बोलने से नहीं रोका। दादी को ऐसे शब्दों से बहुत आघात लगा। पर वे अब बिल्कुल अकेली थीं, पराधीन थीं... हमारी दया पर उनकी ज़िंदगी थी...

(२४) एक बार इसी तरह लूज़ मोशन हो गए, बहुत दुर्गंध आ रही थी... मुझे ऐसा गुस्सा आया कि मैंने दादी को थप्पड़ मार दिया, उन्हें ज़ोर-ज़ोर से झिंझोड़ा... 'आपको पहले से कहना चाहिए था न, मुँह में क्या मूँग भर रखे हैं। क्यों हम सबसे भंगी का काम करवाती हो...' दादी बेचारी रो पड़ीं, पर मुझे दया नहीं आई, दो और चांटे मारे, 'रोना बंद करो... नहीं तो और मारूँगा...'

(२५) दादी पूरे दिन कुछ-न-कुछ खाने-पीने को माँगती रहतीं, कई बार तो मम्मी नज़रअंदाज़ कर देतीं, देती ही नहीं। उनकी बात ही नहीं सुनतीं। पर एक दिन मैं घर पर मैच देख रहा था, और दादी ने बार-बार चाय माँगी, उनकी घुरघुराती आवाज़ और बार-बार की माँग के कारण इतना गुस्सा आया कि मैंने गरमा-गरम चाय ली, और ज़बरदस्ती उनका मुँह खुलवाकर चाय उनके मुँह में डाल दी। उन्होंने चीख मारी, पर उनकी शारीरिक शक्ति कम थी, मेरी पकड़ मज़बूत... गरम-गरम चाय से उनकी जीभ जल गई, बाकी गरम चाय उनके ऊपर गिर गई, उससे भी जल गई, वे बेचारी रो-रोकर बोलीं 'मार डालो मुझे...' पर मैं परमाधामी जैसा निष्ठुर बन गया था। 'तुझे मारकर हम क्यों जेल की हवा खाएँ। उसके बजाय खुद मर जा न... कौन तुझे रोकता है...'

(२६) एक बार किसी कारण से दादी पर गुस्सा आया, तो उनके दोनों हाथ उनकी पीठ के पीछे रस्सी से कसकर बाँध दिए...

साहब! परमाधामी कैसे होते होंगे? यह तो पता नहीं। पर मैं परमाधामी का छोटा बच्चा होऊँ, उस समय मेरा स्वरूप ऐसा ही था। मेरी पत्नी को यह पसंद नहीं था, पर वह बेचारी कुछ बोल नहीं पाती थी। उसने मुझे, मम्मी को, पापा को समझाने की कोशिश की, दादी की सेवा करने की भी कोशिश की... पर मैंने उससे कह दिया कि 'तू दादी को बिगाड़ना मत... उसे पड़े-पड़े मरने दे... हम निपट लेंगे।' और अंत में थक-हारकर दादी ने नींद की गोलियाँ ज़्यादा खाकर आत्महत्या कर ली। उनके हाथ का लिखा एक पत्र मिला, 'मेरे परिवार ने मेरी बहुत अच्छी सेवा की है। पर मैं बुढ़ापे से थक गई हूँ। इसलिए आत्महत्या कर रही हूँ। किसी का दोष नहीं है। मैंने पचास लाख रुपये के गहने एक जगह रखे हैं। वे सब मेरे बेटे-बहू, पोते और पोता-बहू को देती हूँ। वे उसके मालिक हैं। बस, मेरे मरने के बाद पूरा परिवार सुख से रहे। मेरी यही भावना है। और बीस लाख रुपये नकद मैंने एक व्यक्ति को दिए हैं, वे मेरे लाडले पोते को दे देने हैं... बस, जाती हूँ... मेरे कारण आपको कोई भी दुःख हुआ हो, तो मिच्छामी दुक्कड़ं...'

यह पत्र मैंने पढ़ा, आँखों से आँसू की धारा बह निकली। जिस दादी को मैंने मारा है, जिन्हें गरमा-गरम चाय से जलाया है, जिनके हाथ बाँधे हैं... जिन्हें गालियों जैसे, दाग़ देने जैसे शब्द सुनाए हैं... उन्होंने मरते समय भी हम पर सिर्फ़ और सिर्फ़ प्यार बरसाया। पुलिस हमें परेशान न करे, ऐसा लिख गई। और मुझे जैसे नालायक के हाथ में नक़द बीस लाख रुपये आ गए। पचास लाख के गहने दे गई। मुझे घोर पश्चाताप हुआ। मुझे पहली बार अपनी दादी की कीमत समझ आई। मैं जब बच्चा था, तब उन्होंने मुझ पर कितना प्यार बरसाया था, वह सब मुझे उस समय याद आने लगा... पापा की मार से अनेक बार मुझे बचाने वाली यह दादी ही तो थीं। मेरे लिए, मेरी ज़िद पूरी करने के लिए पापा-दादा से लड़ जाने वाली यह दादी ही तो थीं... यह सब अब मुझे याद आने लगा... मैंने बीस लाख रुपये उनके नाम पर साधर्मिकों में खर्च कर दिए। मुझे कोई पैसों की कमी नहीं थी... फिर भी यह रकम वैसे तो मैं नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि बड़ी रक़म थी... पर उस एक पत्र ने मेरी आत्मा में घोर पश्चाताप उत्पन्न कर दिया था... दादी के साथ अपने इन सभी दुर्व्यवहारों के लिए ख़ूब-ख़ूब क्षमा माँगता हूँ।

(२७) शादी के कुछ वर्षों में मुझे दो बेटियाँ हुईं। पापा-मम्मी गुज़र गए। घर में हम चार लोग ही रह गए। बेटियाँ छोटी थीं। मेरे जीवन में बुरा दौर आया। मैं गलत संगत में पड़ गया, सिगरेट-शराब पीने लगा, पत्नी ने मुझे रोकने की कोशिश की। उसे अपनी दोनों बेटियों के संस्कारों की चिंता थी। एक थी आठ साल की और दूसरी छह साल की! इस बात पर हम दोनों के बीच झगड़े शुरू हो गए, मैंने उसे बहुत मारा... दोनों बेटियाँ देखतीं, रोतीं... पर मैंने किसी की परवाह नहीं की। 'तुम्हें मेरी ज़िंदगी में दखल नहीं देना है। तुम धर्म करती हो, तो क्या मैंने तुम्हें रोका है...?' पत्नी वैसे तो सहनशील थी, पर बेटियों के संस्कारों की उसे बहुत चिंता रहती थी। इसलिए वह मुझे बार-बार समझाती, और हर बार गालियाँ और मारपीट ही मेरा जवाब होता। बात आगे बढ़ी, मैं वेश्यागमन करने लगा, उसे पता चल गया... झगड़े बढ़े, गालियाँ-मारपीट बढ़ी... मेरा उस पर से प्यार लगभग मर चुका था। और एक दिन मैंने हद कर दी, शराब पिए हुए, नशे की हालत में

वेश्या को अपने घर ही ले आया। उसकी आँखें फटी रह गईं, उसे धक्का मारकर एक तरफ फेंका और अपने बेडरूम में वेश्या को लेकर घुस गया... दरवाज़ा बंद कर दिया। बस, अपनी दो बेटियों के सामने यह निर्लज्ज व्यवहार उससे सहन नहीं हुआ। उस दिन मैंने उसे भयंकर गुस्से में देखा। वह चीख-चीखकर दरवाज़ा पीटने लगी, मुझे नशे के कारण बेहद गुस्सा आया। मैंने दरवाज़ा खोला, सीधा उसका जूड़ा पकड़कर धड़ाधड़ तमाचे मारने लगा, वह चीखने लगी, मैंने उसके पापा को कॉल कर दिया था, स्पीकर चालू कर दिया था, नशे में चूर होकर मैं सारा विवेक खो चुका था। 'ले, तेरा बाप भी सुन रहा है, चीख, और चीख, अभी और चीख...' उसे ज़मीन पर पटककर लातें मारीं, पीठ में और आखिर में पेट में भी लात मारी, वह ऐसी भयानक चीख मारकर उठी, दोनों बेटियाँ दूर खड़ी-खड़ी यह सब देख रही थीं, वे दोनों ज़ोर-ज़ोर से रो रही थीं। पर वे पास नहीं आ रही थीं। क्योंकि वे बुरी तरह डर गई थीं। बस, छोटी बेटी 'मम्मी, मम्मी...' इतना ही बोल रही थी... और बड़ी मुझे दूर से ही विनती कर रही थी, 'पापा! मम्मी को मत मारो, पापा! Please! उसे छोड़ दो...' पर मुझ पर कोई असर नहीं हो रहा था। पत्नी मार खा-खाकर अधमरी हो गई, तब मैंने उसे छोड़ा, मेरे मुँह से गालियाँ, गंदी गालियाँ तो चालू ही थीं। मेरे सिर पर शैतान सवार हो चुका था। चालू मोबाइल उठाकर अपने ससुर से कहा, 'सुन ले, इस कमज़ात को ले जा अपने घर! और समझा देना इस हरामज़ादी को! मुझे सलाह देने न आए। मेरे साथ सिरदर्दी न करे... नहीं तो देख लेना क्या हालत होगी, इसकी!' ऐसा कहकर वीडियो कॉल करके पत्नी को दिखाया। ज़मीन पर पड़ी वह कराह रही थी... पेट पर लात लगने और सिर टकराने के कारण उसे भयंकर पीड़ा हो रही थी... उसी समय दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आई, मैंने देखा तो वेश्या डरकर घर से बाहर जाना चाहती थी। मैंने गाली देकर उसे रोका, 'तेरी **** को पूरी रात के पैसे दिए हैं। (फिर गाली...) चल, अंदर...' और बेडरूम में उसे ले जाकर वेश्यागमन किया। सुबह देर से उठा, नशा उतर चुका था, वेश्या बगल में पड़ी थी, मुझे धीरे-धीरे रात की घटनाएँ याद आने लगीं। नशे के साथ-साथ चढ़ा क्रोध नशा उतरते ही उतर गया। मैं

वास्तविकता की धरती पर आया। वेश्या को तो रवाना किया, पर फिर घर में देखा तो कोई नहीं था। पत्नी और दोनों बेटियाँ गायब थीं... मुझे लगा 'अपने पापा के यहाँ गई होंगी।' मैंने पत्नी को फोन किया, पर उसने नहीं उठाया, दो-तीन बार घंटी की, छोटी बेटि ने फोन उठाया, उसने मेरी आवाज़ सुनी, और तुरंत ही फोन रख दिया। वह घबरा गई थी... एक मिनट बाद बड़ी बेटि ने फोन उठाया, मैंने उसे प्यार से बुलाने की कोशिश की, पर उसने मुझसे कह दिया कि 'अब आप हमारे पापा नहीं हैं...' और उसने फोन रख दिया। उसकी आवाज़ में दर्द और गुस्सा साफ़ महसूस हो रहा था। मैंने ससुर को कॉल किया, उन्होंने तुरंत उठाया, हर बार 'बोलिए, जमाईराज...' कहने वाले ससुर ने आज सिर्फ़ इतना ही कहा 'बोलिए...' मैंने पत्नी के बारे में पूछा... उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया... 'हमारा रिश्ता अब खत्म होता है। आपके यहाँ डिवोर्स के कागज़ आ जाएंगे। आपने रात में जो ऑडियो-वीडियो किया, वह बहुत अच्छा किया। मेरे पास सारी रिकॉर्डिंग तैयार है। अब आपकी भलाई इसी में है कि आप फटाफट डिवोर्स के लिए साइन कर दें। बिल्कुल खींचतान मत कीजिएगा। नहीं तो मज़बूरी में ऑडियो, वीडियो, घर में वेश्यागमन... सब कुछ पूरे समाज में दिखाना पड़ेगा।' बस, उन्होंने फोन काट दिया। हाँ! उससे पहले उन्होंने कहा कि 'आपके पास पैसे बहुत हैं, हम मध्यम वर्ग के हैं, पर भिखारी नहीं हैं, मेरी बेटि और दोनों नातिनों को सारी ज़िंदगी संभालने की ताकत मुझमें है।' उसके बाद मैंने कई बार माफी माँगी, गिड़गिड़ाया, कई मैसेज भेजे, खुद जाकर मिला, पत्नी के पैरों में पड़ा, उसने गुस्सा नहीं किया। पर एक अक्षर भी बात नहीं की, उसके चेहरे पर उदासीनता के सिवाय कुछ नहीं था। वह बुरी तरह टूट चुकी थी, जीवन जीने की उसकी इच्छा मर चुकी थी। बस, दो बेटियों के लिए वह जीने वाली थी।

मैं अपनी दोनों बेटियों से मिलने गया, तो वे मुझे देखते ही भागकर कमरे में चली गईं, कमरा बंद कर लिया... मैं बिल्कुल अकेला रह गया... मुझे मेरी शराब की आदत का फल मिल चुका था। मेरे भयानक क्रोध का फल मिल रहा था। मेरे पूरे परिवार को क्रोध के पाप से मैंने खो दिया, ठीक है। मुझे जो दुःख हुआ, वह तो कुछ भी नहीं है।

लेकिन मेरी पत्नी को, मेरी लाडली दोनों बेटियों को मेरे क्रोध के कारण कितना मानसिक, शारीरिक कष्ट हुआ। गुरुदेव! मेरे जीवन का यह घोरातिघोर पाप है। मुझे इसका सबसे कठोर प्रायश्चित दीजिए... मेरी नरक तय होने वाली है, ऐसा मुझे लगता है।

(ये सभी सच्ची घटनाएँ हैं...)

(२८) वेश्यागमन, शराब आदि तो मैंने छोड़ दिए।

डिवोर्स हो गया, जीवन चलाने के लिए मुझे शादी करना ज़रूरी था। और एक स्त्री मुझे मिल गई, उसका पति एक्सीडेंट में मर गया था। उसकी दो बेटियाँ और एक बेटा था, वह मेरे समाज की थी, उसे भी पुरुष के सपोर्ट की ज़रूरत थी ही, और मेरी उससे शादी हो गई। उसका स्वभाव थोड़ा विचित्र था। मुझे पहली पत्नी की याद आ जाती, उसके सामने यह ६०% भी मुश्किल से गिनी जाती... स्वभाव का ही प्रॉब्लम था। मुझे उसे संभालकर चलना था। लेकिन कुत्ते की पूँछ टेढ़ी तो टेढ़ी... मेरा गुस्सैल स्वभाव फिर बाहर आने लगा। उसकी बड़ी बेटी के लिए मुझे अरुचि ही हो गई थी। बाकी दो के लिए भी विशेष प्रेम नहीं... पत्नी के साथ भी झगड़े चालू ही रहते थे। उसके प्रति विशेष प्रेम न होने के कारण उसे शरीर का सुख भी दे नहीं पाया। हमारे बीच फिज़िकल रिलेशन लगभग बंद थे। इसी कारण उसे असंतोष रहता था, एक बार उसने गुस्से में मुझे ताना मारा। 'तुम सच में पुरुष हो या नपुंसक? तुम्हारे साथ शादी करके मैं तो दुखी हो गई...' उसके शब्द मुझे बहुत चुभ गए, मैंने अपना कंट्रोल खो दिया, लेकिन मैंने उसे हाथ से मारने के बजाय गुस्से में ऐसे शब्द कहे कि वह जीती-जागती जल गई... मैंने उससे कहा 'मैं तो नपुंसक ही हूँ, तुम्हें शादी करने से पहले मेरे साथ एक बार सोकर चेक करना चाहिए था कि मैं पुरुष हूँ या नपुंसक... लेकिन अब जो हो गया, वह हो गया। तू एक काम कर, तुझे तेरी बड़ी बेटी बहुत प्यारी है न, जब तू उसकी शादी तय करे न, तब उस बेचारी को कोई मेरे जैसा नपुंसक पति न मिल जाए, और वह तेरी तरह दुखी

न हो... इसके लिए तू जिसे उसका पति बनाना चाहे, उसके साथ तू एक रात सोकर आ जाना और चेक कर लेना कि वह पुरुष है या नपुंसक... फिर शादी तय करना...' मेरे इस जवाब से उसे इतनी जलन हुई कि उसने मुझे जकड़कर एक तमाचा मार दिया। मैंने उस समय उसे तमाचा नहीं मारा, बल्कि ताने में ही कहा 'तूने मुझे नपुंसक कहा, तो उसका जवाब तो ऐसा ही आएगा न! बाकी तुझे भी पता है कि मेरी पहली पत्नी से दो बेटियाँ हैं। तुझे बोलने पर कंट्रोल रखना चाहिए। मैंने तुझे सहारा दिया, तूने भी मुझे सहयोग दिया। हम दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनकर जीना है... तुझे और मुझे दोनों को आपस में एक-दूसरे को समझकर जीना है...' मेरा जवाब उसे समझ में आ गया, उसने माफी माँगी, उसके बाद हमारे बीच अच्छे रिश्ते रहे। लेकिन मैंने गुस्से में इतने गंदे शब्द बोले थे कि किसी को भी वह हड्डी तक चुभ जाए। मेरे इस क्रोध के लिए बहुत बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(२९) मेरी दूसरी पत्नी प्रेग्नेंट हुई, मैं खुश था। मुझे मेरा अपना संतान मिलने वाला था। मेरी पत्नी भी खुश थी, लेकिन उसे डर था कि उसके तीन बच्चों को मैं नहीं संभालूंगा तो? मैं उन्हें अपनी संपत्ति नहीं दूँगा तो? क्योंकि वे तीन बच्चे आखिर मेरे नहीं थे। वह प्रेग्नेंट होने से पहले भी मुझसे कहती थी कि 'आप मेरी दो बेटियों और एक बेटे के नाम पर ऑफिशियल कुछ व्यवस्था कर दीजिए।' लेकिन मैंने उस बात को टाल दिया था। मेरे मन में उन्हें न देने का भाव नहीं था, लेकिन मुझे वह चीज़ इतनी ज़रूरी नहीं लगी, इसलिए मैंने उपेक्षा की, लेकिन उसने उसका अर्थ उल्टा समझ लिया था। प्रेग्नेंट होने के बाद तो उसकी चिंता और बढ़ गई। प्रेग्नंसी के लगभग ६-७ महीने हो चुके होंगे, तब एक भयानक पाप मेरे हाथों हो गया। उस रात हम दोनों बेडरूम में बातें कर रहे थे... उसमें उसने अपने मन का बोझ बाहर निकाला, 'आप तो इस नए बच्चे को ही सारी संपत्ति-मिल्कियत दे देने वाले हैं। मेरे तीन बच्चे तो सड़क पर भटकते रह जाएंगे। मुझे सब पता है, आपको उन तीनों के लिए कोई भावना नहीं है...' मैंने थोड़ा चिढ़कर कहा, 'तू क्यों उल्टा-सीधा बोलती है। ये सब मेरे भरोसे ही तो जी रहे हैं...' वह गुस्से में बोली

‘खाना-पीना दे देने से आप बाप नहीं बन जाते। आपने मेरी बड़ी बेटी के लिए मुझे कितने गंदे शब्द कहे थे, वह मुझे याद है।’ मैंने और चिढ़कर कहा, ‘तू पुरानी बातें पकड़कर क्यों बैठी रहती है? तू अपने हाथों से दुखी होती है।’ वह बोली ‘मैं पुरानी बातें पकड़कर बैठी हूँ? आप क्या बकवास कर रहे हैं? आज तक मेरे बच्चों के बाप के रूप में आपने अपना नाम नहीं चढ़वाया। पुराने बाप के नाम से ही उनके नाम चलते हैं। हमारी शादी हुई, लेकिन अभी तक कानूनी रूप से मैं आपकी पत्नी के रूप में दर्ज नहीं हुई हूँ। आपने तो मुझे रखैल बनाकर घर में बैठाया है।’ मैं गुस्से में खड़ा हो गया, ‘चुप मर। तू क्या बकती है?’ वह बोली ‘हाँ! मेरी सच्ची बात आपको बकवास लगती है। लेकिन मुझे पता है कि आपने हमारी शादी का कोई सबूत रखा ही नहीं है। मंदिर में जाकर फेरे ले लिए, फोटो-वीडियो सब आपके पास हैं, और पैसे देकर आप सब कुछ कर सकते हैं। मैं एक बार नहीं, हजार बार कहूँगी कि आपने मुझे पत्नी नहीं माना, रखैल ही माना है... मुझे तो ऐसा लगता है कि ‘मैं क्यों आपके बच्चे की माँ बनी? मैंने उसका एबॉर्शन करवा दिया होता तो अच्छा होता...’ और मेरा दिमाग फट गया, ‘तुझे मेरे बच्चे की माँ नहीं बनना है, है न?’ ‘हाँ! नहीं बनना।’ ‘तो ये ले। तेरी इच्छा पूरी करता हूँ...’ और मैंने उसके पेट पर ज़ोर-ज़ोर से मुक्के मारे, वह चीखने लगी। लेकिन मेरे क्रोध के निर्दयी संस्कार! मैंने उसे बिस्तर पर पटक दिया और पेट पर भयानक प्रेशर दिया, लात मारी... उसकी चीखें बेकाबू हो गईं... अत्यधिक पीड़ा के कारण वह बेहोश हो गई। उसके बच्चे दरवाज़ा खटखटा रहे थे... अब मुझे होश आया कि क्रोधावेश में मैंने क्या कर दिया है... अंत में मैंने ही उसे अस्पताल पहुँचाया। वह तो बच गई। लेकिन अंदर का बच्चा मर गया। जिसके लिए मैंने कितने अरमान संजोए थे, जो मेरा सपना था, उसी अपने बच्चे को मैंने अपने ही हाथों, अपने ही पैरों से मार डाला। मुझे पहली पत्नी की तरह इसे भी खोना नहीं था, मैंने तुरंत उसके बच्चों के पिता के रूप में अपना नाम जोड़ दिया। उसके पति के रूप में अपना नाम कानूनी कर दिया। और ‘मेरे बाद मेरी संपत्ति-पत्नी + तीन बच्चों की रहेगी’ यह भी फाइनल कर दिया। अब वे सभी मेरे साथ खुशी से

रहते हैं। पत्नी का डर निकल गया है। मेरे इस भयानक क्रोध के पाप के लिए बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कड़ं...

क्रोध (स्त्री की आलोचना)

(पुरुषों में जो क्रोध के टॉपिक बताए गए हैं, उनमें से कुछ स्त्रियों में भी लगते हैं। उन्हें अपने तरीके से अपने लिए वह सोच लेने हैं... अब सरलता के लिए स्त्रियों ने जो क्रोध किया है, उसके उदाहरण-टॉपिक देखते हैं। यहाँ भी वैसे तो अनेक स्त्रियों के जीवन में हुई घटनाओं के उदाहरण लिए गए हैं। लेकिन जैसे एक ही स्त्री अपने जीवन में हुए सभी क्रोध-प्रसंग बता रही हो, इस तरह वर्णन किया गया है।)

(१) मेरे छोटे भाई के जन्म के बाद मम्मी-पापा का अटेंशन उसी पर रहने लगा। उसे ज़्यादा प्यार, उसकी ज़्यादा देखभाल... उसकी सारी इच्छाएँ पूरी करना। हमारे दोनों के बीच कुछ भी झगड़ा हो तो हर बार मुझे ही डाँट, किसी चीज़ के लिए खींचातानी हो तो मुझे ही कहा जाता 'तू छोड़ दे न, वह छोटा है, उसे दे दे न...' और मेरे मन में माता-पिता के प्रति गहरा गुस्सा भरने लगा। मैं छोटे भाई से केवल चार साल बड़ी थी। वह अगर छह साल का है, तो मैं दस साल की हूँ। मैं भी तो छोटी ही हूँ न, मुझे भी इच्छाएँ होती हैं न, खाने-पीने की चीज़ हो, गेम हो, स्टेशनरी हो, बाहर किसी एक को साथ ले जाने की बात हो... सबमें भाई का ही नंबर लगता। ऐसे सभी प्रसंगों में पहले तो मैं बहुत रोती थी, मुझे लगता था 'मेरा कोई नहीं है। मैं बिल्कुल अकेली हूँ...' और धीरे-धीरे वह दुख क्रोध में बदल गया। फिर मैं मम्मी-पापा के सामने तर्क करने लगी। गुस्से में बोलने लगी... तो वे मुझे मारते 'माँ-बाप के सामने जवाब चलाती है! लड़की जात होकर भी इतना क्रोध!...' वे मुझे समझ नहीं पा रहे थे, और मैं अपनी इच्छाएँ छोड़ नहीं पा रही थी। 'बामत् जोधो मनायते।' यह बात बिल्कुल सही साबित हुई थी। मेरी इच्छाएँ पूरी न होने से मेरे भीतर माता-पिता के प्रति क्रोधाग्नि प्रकट हो चुकी थी। चाहे उनकी जो भी गलती हो... लेकिन मेरी भी गलती तो थी ही कि मुझे मन में ऐसा क्रोध नहीं रखना

चाहिए था। शब्दों में जैसे-तैसे बोलना नहीं चाहिए था... माता-पिता को मेरे प्रति प्यार तो था ही, लेकिन भाई के प्रति ज़्यादा था, बस! उन्होंने मुझे घर से निकाल नहीं दिया था, मुझे खाना-पीना बंद नहीं कर दिया था, मुझे गुलाम बनाकर बहुत काम नहीं कराते थे। बस, मेरे और भाई के बीच कुछ भी हो, तो वे भाई का पक्ष लेते... बस इतना ही था। मुझे इस बात को पॉज़िटिव लेना चाहिए था। लेकिन उस उम्र में मेरे पास ऐसा ज्ञान नहीं था। और ऐसा ज्ञान देने वाले कोई सद्गुरु भी नहीं थे... तो मैंने ये गलतियाँ की हैं... अंतरात्मा से मिच्छामी दुक्कड़।

(२) भाई मेरी चीज़ ले गया, तो मैंने गुस्से में उसे मारा है। उसने मेरी कोई चीज़ बिगाड़ दी, तो गुस्से में उसे मारा है। उसने मम्मी-पापा से मेरी शिकायत की, तो पीछे से उसे मारा है। वह होशियार था। उसकी गलती हो या न हो, लेकिन वह रोता-रोता मम्मी के पास जाता और शिकायत करता... अरे, मैंने उसे मारा न भी हो, उसने मुझे मारा हो, फिर मैं उसे मारने जाऊँ, तो वह दौड़ता-दौड़ता मम्मी के पास जाकर रोने लगता... मम्मी मेरी कोई बात सुने बिना मुझे ही डाँट देती 'क्या तू इतनी बड़ी होकर छोटे को मारती है, तुझे शर्म नहीं आती?' फिर मेरे सामने ही भाई को शांत रखने के लिए प्यार-दुलार करती, चॉकलेट देती...इसलिए भाई तो खुश... लेकिन यह सब देखकर मुझे मम्मी पर बहुत गुस्सा आता। लेकिन मैं क्या करूँ? मैं रूठूँ, रोऊँ तो मम्मी मुझे मनाती नहीं, उल्टा और गुस्सा करती 'चल, नाटक बंद कर...' ऐसा कहती। भाई को जिस तरह प्यार से मनाती, उसी तरह मुझे प्यार से नहीं मनाती, बल्कि डाँट कर, चालाक-कपटी कहकर चुप रहने पर मजबूर करती। आज भी यह याद आता है तो मन वेदना से भर जाता है, लेकिन नहीं! मुझे अपना ही दोष देखना है। वह तो मम्मी ही थी, ज़िंदगी भर मुझे संभालने वाली मम्मी थी... उसके ऊपर किसी भी हालत में मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए, यह स्पष्ट बात है। मैंने वह क्रोध किया है, उसके लिए अंतरमन से मिच्छामी दुक्कड़।

(३) स्कूल में ९वीं कक्षा में थी, उस समय की बात है। एक लड़का मेरे पीछे पड़ा था, कई दिनों से मैं परेशान हो रही थी, लेकिन कुछ बोल नहीं रही थी। डरती भी थी। लेकिन उस दिन उस लड़के ने स्कूल के कंपाउंड में मुझे लक्ष्य बनाकर कोई गंदी टिप्पणी की, सब हँसे... और मेरा पित्त निकल गया। उसके पास जाकर धड़ाधड़ तमाचे मारे, 'साले, अपनी माँ से घर जाकर कहना।' ऐसी गाली दी। वह लड़का हक्का-बक्का रह गया। मेरे ऐसे रिएक्शन की उसने कल्पना भी नहीं की थी। मुझे खुद भी आश्चर्य हुआ कि मुझमें यह जोश कहाँ से आया?... म.सा.! मैं इस बात को आलोचना में लेती हूँ, मुझे उस समय बहुत क्रोध आया था, यह भी सच है... लेकिन मुझे यह क्रोध पाप नहीं लगता। मैंने उसे मारा, उसकी माँ पर गाली दी... यह मुझे बिल्कुल बुरा नहीं लगता। मैंने अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए, अपने शील की रक्षा के लिए ही यह किया है, इसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखता। फिर भी आपको लिखकर बताया है...आपको अगर इसमें मेरी गलती लगे, तो मुझे ज़रूर बताइए... मैं आपकी बात अवश्य मानूँगी। इस प्रसंग के दौरान मेरे आत्मा को नुकसान पहुँचा हो, ऐसे कोई भी परिणाम मुझे आए हों, तो मिच्छामी दुक्कड़।

(४) ऐसे शीलरक्षा के कई प्रसंग मेरे जीवन में बने हैं... मैं अपने घर की ओर जा रही थी। वह गली सुनसान और अँधेरी थी, दो लड़कों ने पहले से योजना बनाकर अचानक पकड़ लिया और एक तरफ घसीट ले गए, एक लड़के ने मेरे दोनों हाथ पीछे की ओर पकड़ रखे थे... दूसरा लड़का सामने से छेड़छाड़ करना चाहता था। लेकिन उन्हें पता नहीं था कि मैंने सेल्फ डिफेंस सीखा है। मैंने पीछे वाले के गुप्तांग पर ज़ोर से लात मारी, वह चीख उठा, उसके हाथ से मेरे दोनों हाथ छूट गए। अब मैं आज़ाद थी। मैं हमेशा अपने साथ टोपाज़ की ब्लेड रखती थी, मैंने एक सेकंड में ब्लेड निकालकर सामने वाले पर वार कर दिया। यह सब बहुत तेज़ी से हुआ, वे दोनों कुछ और करें उससे पहले मैं वहाँ से भाग गई...

(५) भीड़-भाड़ वाले रास्ते से मैं चलती जा रही थी। पीछे से एक बाइक पर दो लड़के आए, एक ने मेरे सिर पर टपली मारी, मेरे कंधे को धक्का मारा... मुझे इस छेड़छाड़ से बहुत गुस्सा आया। भीड़ होने के कारण वे बाइक से जल्दी भाग नहीं सके, मैंने पीछे बैठे लड़के के बाल ज़ोर से पकड़कर खींच लिए, दूसरी ओर आगे वाला बाइक चलाता रहा। उस लड़के के बाल मेरे हाथ में आ गए... मैं तुरंत आगे दौड़ी और दोनों लड़कों को ज़ोर से धक्का मारा, दोनों बाइक सहित ज़मीन पर गिर पड़े, पब्लिक इकट्ठी हो गई, और मैंने दोनों को ज़ोरदार पीटा, लोग समझ गए, तो लोगों ने भी दोनों को खूब मारा।

(६) एक लड़का मेरे मोबाइल पर बार-बार फोन करके 'I Love You...' आदि मैसेज भेजता था। मैं परेशान हो गई, मन हुआ कि 'इसे सबक सिखाना चाहिए।' मैंने उसे एक जगह मिलने बुलाया, सेफ्टी के लिए मैं अपने दो कज़िन भाइयों को साथ ले गई, उन्हें छिपकर खड़ा रखा। उस लड़के से मिली, दो मिनट मीठी बातें कीं, वह जैसे ही मेरे पास आया, मैंने तुरंत उसकी दोनों आँखों में लाल मिर्च की पाउडर डाल दी। वह दोनों हाथों से आँखें मलता हुआ चीखने लगा। लेकिन मुझे उस पर दया नहीं आई, 'अपनी बहन को ऐसे मैसेज भेजना...' कहते हुए लातें मारी, ज़मीन पर पटक दिया, गुस्सा इतना था कि पेट में भी दो लात मारी... कज़िन भाइयों ने मुझे पकड़ा और वहाँ से ले गए। बस, उसके बाद उस लड़के ने मुझे कभी परेशान नहीं किया। पैरेंट्स ने मेरी रक्षा के लिए छोटी उम्र से कराटे सिखाई थी, और मेरा स्वभाव भी स्ट्रॉन्ग था, मुझे समझ आ गया था कि इस ज़माने में स्त्रियों को स्व-रक्षा के लिए आग की तरह गरम बनना ही पड़ेगा।

(७) मेरी उम्र उस समय लगभग अठारह साल की होगी। पापा बहुत कमा चुके थे। पैसों ने उनके जीवन में दुर्गुणों का प्रवेश करा दिया था। पूरे दिन मुँह में गुटखा खाते रहते, मुझे यह भी पता चला कि उनका परस्त्री से संबंध है, इसके कारण मम्मी से झगड़े भी होते थे। एक-दो बार तो मैंने पापा को मम्मी पर हाथ उठाते भी देख लिया था। मुझे मम्मी के प्रति अत्यंत स्नेह था, मैंने बदला लेने के कारण निर्णय कर लिया कि 'पापा की हत्या कर दूँ...' और म.सा.! एक रात मैं तेज़ चाकू लेकर मम्मी-पापा के कमरे में घुस

गई, दोनों शांति से सो रहे थे, मुझे पापा की गर्दन दिखी... दो-पाँच सेकंड का काम था, मैंने चाकू हाथ में ले लिया, लेकिन हिम्मत नहीं हुई... 'मम्मी विधवा बन जाएँगी, मम्मी शायद उसमें ज़्यादा दुखी होंगी। अभी जो दुख है, उससे विधवा होने का दुख ज़्यादा है...' और मैं लौट आई। यह बात मैंने आज तक किसी को नहीं बताई, पहली बार आपको बता रही हूँ... मैंने मन से तो क्रोधवश पापा की हत्या कर ही दी थी और इसे मैं पाप ही मानती हूँ। हर बात में मैं अपने क्रोध को अच्छा नहीं मान सकती। अपनी रक्षा के लिए मैं क्रोध करूँ, वह अलग बात है। मम्मी की भी शील या जीवन की रक्षा के लिए मैं क्रोध करूँ तो भी ठीक है। लेकिन यहाँ ऐसा कुछ नहीं था। मम्मी को पापा से दुख था, बस इसी कारण मैं पापा की हत्या का निर्णय करूँ, यह बिल्कुल उचित नहीं है। (ये सभी सच्ची घटनाएँ हैं...)

(८) मैं एक लड़के से प्रेम करने लगी, वह हमारे रिलेशन में था। वह मेरे कज़िन भाभी का सगा भाई था, कज़िन भाई की शादी में उससे मुलाकात हुई थी, उसके बाद कई बार मिले, बातें भी होती थीं, मैंने मान लिया कि 'वह भी मुझे चाहता है।' लेकिन मेरी धारणा गलत थी। अचानक मुझे खबर मिली, उसी ने दी कि 'मेरी सगाई हो गई है।' मैं इतनी भड़क गई कि फोन पर ही अंग्रेज़ी में दो गालियाँ दीं, 'तू धोखेबाज़ है।' वह पूछता है 'मैंने तुझे धोखा दिया? कैसे?' मैंने फोन काट दिया। लेकिन मन में तूफान चलने लगा। मैंने अपनी नोट्स फाड़ दीं, किताबें फाड़ दीं... क्रोध किसी पर नहीं, तो जड़ वस्तुओं पर उतारा। लेकिन मेरा प्रेम इतना गहरा था कि मैं यह बात सह नहीं पाई... ऊपर से दूसरे-तीसरे ही दिन मैंने उस लड़के को उसकी मंगेतर के साथ देरासर के कंपाउंड में देखा। मैंने स्टेटस में उस युवती को देखा था, वह सुंदर साड़ी पहने खड़ी थी, तब मैंने उस युवती से गुस्से में कहा, 'यह मेरा प्रेमी है, तू मेरी ज़िंदगी बर्बाद करने आई है? इसे छोड़ दे...' बेचारी वह युवती घबरा गई, उसे तो कुछ अंदाज़ा ही नहीं था। तभी वह युवक आ गया, वह मुझ पर भड़क गया, 'तेरे साथ बातें कीं, बस इसी से तू मान ले कि मैं तुझे चाहता हूँ, यह तेरी गलती है। अब यह बेवकूफी बंद कर। बिल्कुल नॉनसेंस है...' मुझे आग लग

गई, उसने मेरा घोर अपमान किया था। मैंने धड़ाक से उसे एक तमाचा मार दिया। और रोती हुई वहाँ से भाग गई। उन दिनों मन में इतना आवेश था कि लगातार उन दोनों के लिए बुरे विचार आते थे। खासकर उस लड़की के लिए... 'वह मर जाए, उसका एक्सीडेंट हो जाए, उसके पैर कट जाएँ, उन दोनों के बीच भयानक झगड़े हों...' ऐसे-ऐसे ढेरों विचार आते रहे; मैं डिप्रेशन में चली गई... मेरे इन क्रोधजन्य पापों के लिए बहुत मिच्छामी दुक्कड़। राग में फँसकर मेरी आत्मा कितने कषायों में फँस गई, बेचारी निर्दोष लड़की और उस निर्दोष युवक को कितनी गालियाँ दीं। मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई, सिर्फ उसी कारण मैं ज़हरीली नागिन बन गई... आज यह सब याद करती हूँ, तो घोर पश्चाताप होता है। धर्म प्राप्ति के बाद मैंने उन दोनों से सच्चे मन से क्षमायाचना कर ली है... और आज वह युवती मेरी बेस्ट फ्रेंड है... उस युवक के लिए भी अब सिर्फ भाई जैसा ही संबंध है...

(९) मेरा प्रेम टूट गया, तब मैं फ्रस्ट्रेशन में चली गई। मुझे आत्महत्या के विचार आए, गुस्से में ही मैंने अपने हाथ की नस ब्लेड से काट दी... मेरा परिवार मुझे अस्पताल ले गया, तब जाकर मेरी जान बची। गुस्से में इंसान क्या नहीं कर बैठता, यही एक सवाल है। मेरे इस पाप के लिए भी मिच्छामि दुक्कड़। मानव-जन्म को नष्ट करना बहुत बड़ा पाप है न!

(१०) हम चार लोग ट्रेन से अपने गाँव जा रहे थे। बीच के स्टेशन से एक परिवार चढ़ा, उसने हमारी जगह हथियाने की कोशिश की। सामान रखने के लिए हमारा सामान इधर-उधर कर दिया। पापा ने उनसे प्रेम से कहा, लेकिन वह परिवार दादागिरी पर उतर आया। मैंने यह सब देखा... और मैंने अपना असली स्वभाव प्रकट कर दिया। मैं उस परिवार से लड़ने पर उतारू हो गई। मम्मी ने मुझे रोका, पर मैंने साफ़ शब्दों में कह दिया, 'हमारी जगह खाली करो, और अपना सारा सामान हटाओ...' उस परिवार का पुरुष बोला, 'अरे, तू क्या कर लेगी?... हम यहीं बैठेंगे, जा तुझसे जो हो सके कर ले...' मेरा पारा चढ़ गया, 'ऐ, तुम मुझे लड़की समझकर किसी भ्रम में मत रहना... वरना बहुत

भारी पड़ेगा...' और हमारे बीच भयंकर कहासुनी हो गई। मुझे डर नहीं लग रहा था। ब्लैक-बेल्ट होने के कारण ऐसे लोगों से निपटने की ताकत तो मुझमें थी ही। अंत में दूसरे यात्री बीच में पड़े, टी.सी. आया। कानूनी तौर पर हम सही थे, इसलिए उस परिवार को हमारी जगह और वहाँ रखा सामान हटाना ही पड़ा। न्याय की दृष्टि से मैं सही थी, पर न्याय के नाम पर मेरे कषाय के संस्कारों का पोषण हो, यही सबसे बड़ा अन्याय था। मुझे लगता है कि इतना ज़्यादा क्रोध करने की मुझे ज़रूरत नहीं थी... अंतर्मन से मिच्छामी दुक्कड़।

(११) मैं हमारे संघ में चलने वाले युवतीमंडल से जुड़ी हुई थी। उसकी लीडर ने पहले तो मुझे कई कामों में आगे किया, पर उसके बाद किसी कारणवश वह मुझे आगे बढ़ने से रोकना चाहती थीं। मंडल में डेढ़ सौ लड़कियाँ थीं। एक बार सिंगिंग प्रतियोगिता रखी गई, जिसमें चार राउंड थे। मैं आखिरी राउंड में पहुँच गई, जिसमें सिर्फ तीन ही लड़कियाँ थीं, और उन्हीं में से किसी एक को पहला नंबर मिलना था। उस लास्ट राउंड के लिए जब मैं हॉल में जा रही थी, तब मेरे कानों में शब्द पड़े, लीडर मैम जज से कह रही थीं कि 'आप इस नाम की लड़की को पहला नंबर मत देना... बाकी दो में से किसी को दे देना...' मैंने यह सुन लिया, मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया। मैं वहाँ तो कुछ नहीं बोली, पर जब हॉल में सब इकट्ठा हुए और गाने के लिए मेरा दूसरा नंबर आया, तब मैंने गाने के बजाय लीडर मैम की धज्जियाँ उड़ा दीं, 'मैं आज गाने वाली नहीं हूँ। क्योंकि मुझे पता है कि मैं चाहे कितना भी अच्छा गाऊँ, मुझे पहला नंबर नहीं मिलने वाला है। बोलिए, जज साहब! आपको हमारी मैम ने क्या सूचना दी है? आप हॉल में आने से पहले जब उनके पास खड़े थे, तब आपको क्या आदेश मिला है?...' जज चुप रहे, उनका मुँह उतर गया... 'ये नहीं बोल पाएँगे, मैं ही बताती हूँ। इन मैम ने उनसे कहा है कि 'इस लड़की को - यानी मुझे, किसी भी कीमत पर पहला नंबर नहीं देना है।' मैंने मैम का क्या बिगाड़ा है? हम तो उन पर पूरा विश्वास रखकर मंडल के विकास के लिए कड़ी मेहनत करती हैं, उनके हर आदेश को सिर-माथे पर रखती हैं। क्या उसका यही बदला हमें मिला है?' मैम

बीच में कुछ बोलने जा रही थीं, पर मैंने उन्हें बोलने नहीं दिया। 'आप चुप ही रहिए। मैं आपकी नस-नस से वाकिफ़ हो गई हूँ। बाकी की दो सिंगर आपकी चमची हैं। और चूँकि मैं आपके साथ उतनी जुड़ी हुई नहीं हूँ, इसलिए आपने मेरा पत्ता काट दिया। पर मैं कोई पहला नंबर लेने के लिए मरी नहीं जा रही हूँ। मुझे इस प्रतियोगिता में भाग ही नहीं लेना है, और सिर्फ़ प्रतियोगिता ही नहीं, मैं आपके पूरे मंडल को ही हमेशा के लिए छोड़ रही हूँ।' और मैं हॉल से बाहर निकल गई। मुझे तीन-चार दिन बाद पता चला कि मेरे निकलने के बाद कम-से-कम पचास लड़कियों ने वह मंडल छोड़ दिया। उन्हें भी छोटे-मोटे अनुभव हुए ही होंगे। पर मैं उन्हें एक नेता के रूप में मिल गई, इसलिए उन सब में हिम्मत आ गई। करीब दस लड़कियों का मेरे पास फ़ोन आया, और उन सब से बात करके मैंने अपने नेतृत्व में एक नए मंडल की स्थापना की। मेरी युवा उम्र, नेतृत्व-शक्ति, पुण्य... इन सब के कारण उस मंडल से लगभग ७० लड़कियाँ इसमें जुड़ गईं। और उनके अलावा ३० नई लड़कियाँ और जुड़ीं। मैंने धूमधाम से एक साध्वीजी की निश्रा में उस मंडल की स्थापना की। उन सबमें मैम के प्रति मेरा क्रोध तो शामिल था ही, मुझे उन्हें तोड़ना था, और मैं बदला लेने के लिए उनके पीछे पड़ गई। उनके मंडल से ३० और लड़कियाँ कुछ ही समय में मेरे मंडल में आ गईं। मेरे मंडल में १३० सदस्य हो गए, और उन मैम के पास मुश्किल से पचास ही रह गए, वे भी कमज़ोर और साधारण... संसार की ऐसी तुच्छ बातों के लिए मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए था। अगर उन्हें दो लड़कियाँ ज़्यादा प्रिय थीं, और वे उन्हें नंबर दिलवातीं, मुझे न दिलवातीं... तो क्या हुआ! मुझे नंबर से कहाँ मतलब था... मुझे तो अपनी सिंगिंग बेहतरीन करनी थी, और वह तो मेरे हाथ में ही था। अगर मैं बेहतरीन गाती, तो लोगों को तो मेरा गाना ही सबसे अच्छा लगता, फिर चाहे नंबर किसी को भी मिलता... पर मैंने तुच्छता के कारण क्रोध किया। मुझे सिंगिंग में आगे बढ़ाने वाली वही थीं, तो अगर वे मुझे एक नंबर पीछे भी धकेल देतीं, तो मुझे आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी। पर मैंने आपत्ति की,

इतना ही नहीं... उनकी दुश्मन बनकर बदला लिया। मेरे इन दुष्ट अध्यवसायों के लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(१२) कॉलेज में मेरी एक सहेली ने मज़ाक-मज़ाक में एक लड़के के साथ मेरे लव-अफ़ेयर की बातें फैला दीं। मेरा तो उस लड़के से कोई संबंध नहीं था, पर उड़ते-उड़ते यह बात मेरे कानों तक आई। मेरा मज़ाक उड़ना शुरू हो गया था। वह लड़का पढ़ाई, रूप, बुद्धि, हर तरह से गँवार था। उसके साथ मेरा नाम जुड़ने से मेरी बहुत बदनामी हो रही थी। मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया। मैंने जाँच-पड़ताल की तो पता चला कि मेरी सहेली ने ही मेरे बारे में यह अफ़वाह फैलाई थी। मेरा स्वभाव ज़हरीला था, मैं बदला लिए बिना नहीं रहती थी। मैंने टेक्नोलॉजी की मदद से उसी लड़के और अपनी सहेली की गले मिलते और किस करते हुए तस्वीरें बनवाकर वायरल कर दीं। पूरे कॉलेज में हाहाकार मच गया। उस बेचारी का तो मुँह दिखाना मुश्किल हो गया... उसके माँ-बाप ने उसे बहुत मारा। उसने अपना बहुत बचाव किया, पर सरेआम तस्वीरों के सामने किसी की नहीं चलती। वे तस्वीरें नकली हैं, झूठी हैं... यह सब तो कोर्ट मानती है, पुलिस जाँच करके तय करती है... आम जनता को तो ऐसी हॉट न्यूज़ में ही दिलचस्पी होती है। मेरी बात तो कहीं दब गई। मैंने उसे मोबाइल पर कह भी दिया कि 'क्यों? मुझे बदनाम करने का फल मिल गया न?' वह बोली, 'यह सब तुमने किया है?' मैंने बस एक ही बात कही, 'यह तुम्हारे किए हुए कर्मों का फल है... कुदरत किसी को नहीं छोड़ती...' मेरी इस क्रोध-भावना और वैर-भावना के लिए ख़ास, ख़ास, ख़ास मिच्छामी दुक्कड़।

(१३) सगाई के लिए एक धार्मिक युवक के साथ मेरी मीटिंग हुई। उसने कहा, 'मैं रात में नहीं खाता, हमारे यहाँ कंदमूल पूरी तरह से बंद है। थिएटर में मूवी देखने की मेरी कसम है। होटल में नहीं खाता... मेरी भावना दीक्षा लेने की थी, पर मैं इकलौता बेटा हूँ। परिवार ने इजाज़त नहीं दी, इसलिए शादी कर रहा हूँ।' मैंने सब कुछ शांति से सुना तो, पर मन में गुस्सा शुरू हो गया था... उसकी बात पूरी हुई। फिर मैंने उसे सुना दिया, 'स्टूपिड! तुम किसी दीक्षार्थी बहन से शादी कर लो, और नहीं तो किसी साध्वी को

भगाकर शादी कर लो... (अपशब्द...) हटो...' और खाने की प्लेट को आगे धकेलकर मैं गुस्से में वहाँ से निकल गई। मैंने दीक्षार्थी और साध्वी के लिए गुस्से में ऐसी गंदी टिप्पणियाँ कीं, यह मेरी भूल है... मुझे लड़का पसंद नहीं आया, तो मना कर देती न... इसमें ऐसी गंदी टिप्पणी करने की क्या ज़रूरत थी? मिच्छामी दुक्कड़।

(१४) मेरी सगाई एक अच्छे युवक के साथ हुई। उसे धर्म में रुचि नहीं थी, पर सगाई के बाद मुझे यह पता चला कि उसे मौज-शौक में भी कम रुचि थी। वह रात में खाता तो था, पर घर का खाना ज़्यादा पसंद करता था। होटल का खाता भी, तो महीने-दो महीने में एक-आध बार... घूमने-फिरने का शौक कम, और सबसे मुख्य बात, वह बोलता बहुत कम था... मुझे एक रोमांटिक युवक चाहिए था, पर यह सीधा-सादा और ठंडा था। मुझे उससे प्यार तो ज़रूर हुआ, पर उसका यह स्वभाव मुझे परेशान करने लगा। इस वजह से मुझे छोटी-छोटी बातों में गुस्सा आने लगा। मैं उसे गालियाँ तो नहीं देती थी, पर नाराज़गी के साथ दो-चार शब्द ज़रूर सुना देती थी। वह मेरी बात सुन लेता था, सामने से गुस्सा नहीं करता था, इसलिए हमारा झगड़ा शांत हो जाता था। पर मैंने अपनी तरफ़ से कई बार अपने पति पर गुस्सा करके अपशब्द कहे हैं... उसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(१५) मेरा जन्मदिन आया, तब मुझे बहुत उम्मीद थी कि 'वह मेरे जन्मदिन के अवसर पर कोई सरप्राइज़ गिफ़्ट देगा।' उसने मुझे जन्मदिन की शुभकामनाएँ दीं। हम बाहर घूमने भी गए, पर उसने कोई गिफ़्ट वगैरह नहीं दी। मुझे इस बात पर गुस्सा आया। आखिरकार घर जाने के बाद मैंने उसे कॉल करके कहा, 'तुममें कोई फ़ीलिंग्स हैं भी या नहीं? हमारी सगाई के बाद यह मेरा पहला जन्मदिन है, तुम्हें कोई स्पेशल गिफ़्ट देना चाहिए था, स्पेशल मैसेज भेजना चाहिए था, स्पेशल बातें करनी चाहिए थीं। इसके बजाय तुमने कुछ भी नहीं किया। बस, सिर्फ़ बाहर घूमना या थोड़ी-बहुत बातें करना... इतने से काम नहीं चलता।' मेरी अपेक्षा पूरी न होने पर मैंने उस पर गुस्सा किया... मिच्छामी दुक्कड़।

(१६) वह मुझे सामने से फ़ोन शायद ही कभी करता, अगर कोई काम होता तो ही... काम के बिना, बस मेरी याद आई हो, मेरे साथ प्यार की बातें करनी हों... इसके लिए उसका कॉल कभी नहीं आता था। जैसे सारी ज़रूरत मेरी ही हो, जैसे प्यार सिर्फ़ मुझे ही करना हो... वैसे मुझे ही कॉल करना पड़ता था। उसकी तरफ़ से कोई उत्साह नहीं दिखता था। हाँ! अगर मैं कॉल करती तो वह तुरंत उठा लेता, कभी यह नहीं कहता कि 'दूसरा काम है, फ़ोन रखता हूँ...'। मैं जो पूछती, उसका ठीक-ठीक जवाब देता, या मैं कोई बात करती, तो उसके बारे में जितना ज़रूरी होता उतना ही बोलता। पर उसकी तरफ़ से प्यार की बातें, हँसी-मज़ाक की बातें, रोमांटिक बातें... यह सब सुनने को नहीं मिलता था। इसलिए तंग आकर एक बार मैंने उस पर गुस्सा किया था कि 'मुझे अकेले तुमसे शादी नहीं करनी है, तुम्हें भी मुझसे करनी है... तुम्हें मेरी तरह कोई उत्साह, कोई भावना, कोई उमंग है भी या नहीं?...' वह शांत स्वभाव का था, वह सामने गुस्सा नहीं करता था। उसने कहा, 'मुझे भी तुमसे प्यार है, पर इसमें ऐसा सब करना पड़ता है, यह मुझे पता नहीं है, और मेरी बुद्धि भी वहाँ तक नहीं पहुँचती...' मुझे एक-दो बार सगाई तोड़ देने के भी विचार आए, पर वे विचार मज़बूत नहीं थे, और ज़्यादा समय तक टिके भी नहीं। हाँ! फ़ोन करने के मामले में मैंने उसके बाद भी कई बार गुस्सा किया है।

(१७) उसके साथ बाहर जाना होता, तो मैं अच्छी तरह तैयार होकर जाती। मन में एक उम्मीद रहती कि वह मुझे देखता रहे, मेरी तरफ़ आकर्षित हो, मेरी प्रशंसा करे कि 'तुम बहुत सुंदर लग रही हो, ब्यूटीफ़ुल लग रही हो।' पर ऐसे शब्द उसके मुँह से सुनने को नहीं मिले। वह मुझे घूर-घूर कर देखे, ऐसा भी देखने को नहीं मिला। मैं प्रशंसा के लिए इंतज़ार करके थक गई, आख़िरकार मुझे भिखारी बनकर प्रशंसा पाने के लिए पूछना पड़ा कि 'मैं कैसी लग रही हूँ? यह ड्रेस कैसी है?...' तब उसने सहज भाव से कहा, 'तुम सुंदर लग रही हो, ड्रेस भी अच्छी है...' मैंने गुस्से में कहा, 'तो अब तक बोल क्यों नहीं रहे थे? तुम मुझे रोबोट लगते हो, तुम खुद से कुछ बोलते-चालते नहीं। जब तुम्हें चाबी भरूँ, तभी तुम बोलते-चलते हो... मुझे लगता है कि मैंने एक रोबोट से सगाई कर ली है...' वह

गुस्सा नहीं होता, 'सॉरी' बोल देता... मेरे मन में इतनी चिढ़ होती थी कि उसे ख़ूब सुनाऊँ, पर वह लड़ता ही नहीं था, तो मैं अकेली कितना लड़ती?... यह सारा क्रोध अपेक्षाओं से जन्मा था।

(१८) शादी के बाद तो छोटे-छोटे ढेरों प्रसंग हुए, जिनमें मैंने उस पर गुस्सा किया। पर मुख्य-मुख्य प्रसंग याद करके लिख रही हूँ। एक बार रात में मैं बेडरूम में लेटी हुई थी, वह आया, बेड पर बैठा, और मोबाइल चालू करके देखने लगा। तब मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया। वह मुझे समय दे, मेरे साथ बातें करे, यह मेरी इच्छा थी, और इसके बजाय वह अभी भी यह क्या मोबाइल लेकर बैठ गया है... म.सा.! मैंने उस वक़्त बहुत बड़ा पाप किया, मेरा नियंत्रण नहीं रहा, मैंने ज़ोर से उसके हाथ पर लात मारी, मोबाइल दूर जा गिरा... मैं गुस्से में रोते-रोते बोली, 'तुमसे अभी भी मोबाइल नहीं छूटता... तुम्हें मोबाइल पसंद है या मैं?' वह घबरा गया, उसने तुरंत कहा, 'सॉरी! बिज़नेस के दो-तीन जवाब देने बाकी रह गए थे, ज़रूरी थे... इसलिए मुझे मोबाइल चालू करना पड़ा...' उसकी बात सही थी... वह बेडरूम में तो क्या, रात में घर आने के बाद भी मोबाइल शायद ही इस्तेमाल करता था। ऐसा नहीं था कि रोज़-रोज़ ऐसा होता था इसलिए मुझे गुस्सा आया हो। पर यह एक बार हुआ और मैंने पति के हाथ पर लात मार दी। अरे, वह बार-बार मोबाइल इस्तेमाल करता, तो भी मुझे लात तो नहीं मारनी चाहिए थी... यह तो गधी के जन्म के संस्कार कहे जाएँगे... बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(१९) मुझमें कामवासना बहुत थी, उसमें मेरी तुलना में कम... इसलिए वह अपनी ओर से संभोग के लिए कम उत्सुक होता था, ज़्यादातर शुरुआत मेरी तरफ़ से होती थी, मुझे बेशरम बनना पड़ता था। छेड़खानी और अश्लील हरकतें करनी पड़ती थीं, तब जाकर हम दोनों के बीच संबंध बनता था। एक बार वह आकर सो गया, और मुझे बहुत ज़्यादा इच्छा हो रही थी। मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने ज़ोर से उसके कंधे पर कुतिया की तरह दाँत गड़ा दिए। चमड़ी निकल गई, खून बहने लगा... वह चीख पड़ा, पर मुझ पर गुस्सा करने के बजाय मुझसे पूछने लगा, 'क्या हुआ?' 'तुम्हारा सिर, बेवकूफ़!

तुम्हें इतना भी समझ नहीं आता।' मैंने गुस्से में जवाब दिया। पर उसने मेरे अपशब्दों को पी लिया। उसकी क्षमा के कारण मुझे पश्चाताप हुआ, फिर मैंने ही उसके दाँत के घाव पर मरहम लगाया, 'सॉरी' कहा, उसे समझाया, 'मेरी फ़ीलिंग्स को समझने की कोशिश करो...' यह भी कहा। मेरे इस कुतिया जैसे व्यवहार के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(२०) मुझे सबके साथ संबंध बनाए रखने, और उन्हें बढ़ाने में बहुत रुचि थी! इसके लिए मैं दूसरों के घर जाने, उनसे मिलने का एक भी मौका नहीं छोड़ती थी... पर अब शादी के बाद मैं अकेले जाऊँ तो बुरा ही लगता। लोग तरह-तरह की कल्पनाएँ करते कि 'इन दोनों के बीच झगड़ा हुआ होगा...' इसलिए मैं हर बार उन्हें साथ ले जाना चाहती, पर उन्हें सबके घर आने में कोई रुचि नहीं थी। छुट्टियों के दिनों में वह क्रिकेट खेलता, मूवी देखता, गेम खेलता, न्यूज़ देखता, या मैगज़ीन पढ़ता... मैं कहती, तो एक ही बात... 'तुम हो आओ न, मेरा क्या काम है?' शादी के कुछ ही दिनों बाद एक प्रसंग हुआ। मेरे मायके में मेरे भाई के बेटे की, यानी मेरे सगे भतीजे की बर्थडे पार्टी थी, और मैंने उनसे वहाँ जाने की बात की, तो वह कहने लगा, 'तुम हो आओ न, मेरा क्या काम है?' और मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया। मैंने सास-ससुर की मौजूदगी में ही उसे खूब खरी-खोटी सुनाई, 'मेरे मायके में, मेरे भतीजे की पार्टी में मैं अकेली कैसे जाऊँ? कितना बुरा लगेगा? आप में कॉमनसेंस है या नहीं? क्या नॉनसेंस जैसी बातें कर रहे हो?' उसका वही स्वभाव, 'सॉरी! चलो मैं आता हूँ।' और मेरा क्रोध आगे नहीं बढ़ सका। पर वहाँ पार्टी में भी वह थोड़ी-थोड़ी देर में मुझसे पूछता, 'चलें, घर चलें?...' मुझे अपना गुस्सा दबाकर रखना पड़ा। मम्मी ने मुझसे अकेले में पूछा भी कि 'कोई प्रॉब्लम है?' मैंने कहा, 'मम्मी! कोई प्रॉब्लम नहीं है, आपके ये जमाई हर तरह से अच्छे हैं। पर वो गाना है न, 'मैं क्या करूँ राम, मुझे बुढ़ा मिल गया।' मैं उसमें 'बुढ़ा' की जगह 'मूर्ख' या 'ठंडा' शब्द रखती हूँ।' इसके बाद तो ऐसे छोटे-मोटे अनेक झगड़े हुए, मैंने कई सीमाएँ तोड़कर उन पर गुस्सा किया है, अपशब्द कहे हैं... इन सबके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(२१) मेरे जन्मदिन पर मूवी जाने का प्रोग्राम बना। शाम को ६ से ९ के शो में जाना था। उसके बाद होटल में खाना...! काम का दिन होने के कारण वह ऑफिस गए थे, शाम को घर जल्दी आने वाले थे। मैं तैयार हो गई थी, पर उन्हें आने में देर हो गई। मैंने कॉल किया, तो उन्होंने सिर्फ़ मैसेज भेजा, 'ज़रूरी काम आ गया है। मैं जितना जल्दी हो सके, आता हूँ।' ६ के बजाय वह ७: ३० बजे पहुँचे। अब मूवी जाने का कोई मतलब नहीं था, मेरा मूड ऑफ़ हो गया, मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया। जैसे ही डोरबेल बजी, मैंने ही दरवाज़ा खोला। उनका वही पुराना स्वभाव, 'सॉरी, लेट हो गया...' और मैंने तड़ाक से उन्हें एक तमाचा जड़ दिया, 'तुम्हारे हज़ारों 'सॉरी' आज तक सुन चुकी हूँ। अब यह तमाचा मारने के लिए मैं सॉरी बोलती हूँ।' मैं बहुत रोई, उन्होंने मुझे समझाने की बहुत कोशिश की, पर मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ... उसके बाद आठ-दस दिन तक मैंने उनसे बिल्कुल बात नहीं की।

(बीच में एक बात: वैसे तो आर्यदेश की स्त्रियाँ पति को 'आप' कहकर ही बुलाती हैं। पर मैं मॉडर्न हूँ! मैंने शुरू से ही उनके साथ 'तू' कहकर ही बात की है... इसलिए इस लेखन में भी पति के लिए एकवचन का ही प्रयोग किया है।)

म.सा.! मैंने अपने मायके में और सहेलियों के सामने अपने पति की कई बार निंदा की... 'आलसियों के पीर हैं, पानी में पड़ी भैंस की तरह इन्हें किसी भी काम के लिए उत्साहित करना मुश्किल है...' वगैरह।

म.सा.! मैं प्रेम का अर्थ यह समझती थी कि 'वह मेरे साथ प्यार की बातें करे, मुझे सरप्राइज़ दे, मुझे घुमाने ले जाए, मुझे मूवी दिखाने ले जाए, होटलों में खिलाए, महँगे कपड़े लाकर दे। मुझे मेरी इच्छा के अनुसार भोगसुख दे...' पर इन सबमें मेरे पति के कमज़ोर पड़ने से मुझे ऐसा लगता था कि 'उन्हें मुझसे प्रेम नहीं है।'

पर कुछ प्रसंग ऐसे हुए जिनसे मेरी आँखें खुल गईं।

एक बार मुझे चिकनगुनिया हुआ, मेरे जोड़ बहुत सख्त हो गए, मैं बिल्कुल चल नहीं पाती थी। उस समय मेरे पति ने ऑफिस जाना कम कर दिया, और लगातार मेरी सेवा में लगे रहे। मुझे उठाकर वॉशरूम-बाथरूम ले जाते... सुबह का नाश्ता वह बनाते, दोपहर का खाना और शाम का खाना भी वही बनाते। उन्हें बनाना नहीं आता था, तो मुझे उठाकर किचन में ले गए, कुर्सी पर बिठाकर मेरे निर्देशों के अनुसार सब कुछ करते। बिज़नेस के कारण ढेरों कॉल आते, वह सारे कॉल अटेंड करते। कई बार मैंने देखा कि उनका ऑफिस जाना ज़रूरी था, फिर भी उन्होंने टाल दिया। दोस्तों के फ़ोन आए, तो सबको मिठास से मना कर दिया... मैं यह सब देखती ही रहती थी। डॉक्टर के पास मुझे खुद ही ले जाते, खुद ही मुझे तीनों समय दवा देते... मुझे मायके जाने के लिए तो कहा ही नहीं। पर मैंने सामने से मायके जाने की बात की तो कहने लगे, 'अगर तुम्हें मेरी सेवा में कोई कमी लग रही हो, तो खुशी से जाओ...' मैं हँस पड़ी। मैंने कहा, 'आप कितना करेंगे?' वह बोले, 'तुमने इतने वर्षों तक सारे काम किए ही हैं न, और तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने देना, यह मेरी ज़िम्मेदारी है...'

म.सा.! हद तो तब हो गई जब मुझे कोरोना हुआ, उन्होंने अपनी तरफ़ से जितनी हो सके, उतनी सुरक्षा तो रखी, लेकिन मेरी देखभाल करने में बिल्कुल कोई कमी नहीं रखी। मैं घर में ही १४ दिन क्वारंटाइन थी, और उन १४-१४ दिनों तक उन्होंने मुझे तीनों समय भोजन पहुँचाया। मैं ऊब न जाऊँ, इसके लिए वह मुझसे बार-बार दूर से ही बातें करते रहते। मोबाइल पर बातें करते, मेरे पसंद की चीज़ें बनाते। घर में झाड़ू-पोंछा उन्होंने किया, बर्तन उन्होंने धोए, कपड़े उन्होंने धोए... १४ दिन बाद मेरी कोरोना रिपोर्ट नेगेटिव आई। म.सा.! उन चौदह दिनों में मुझे अपनी ग़लतियों के लिए बहुत गहरा पश्चात्ताप हुआ। मुझे सच्चे प्रेम का अर्थ समझ आया। मेरे दुःख में वह लगातार मेरे साथ खड़ा रहा, निरंतर मेरे लिए खटता रहा, और फिर भी उसमें कहीं कोई दिखावा नहीं था... उनकी वह सच्चाई मुझे इतनी गहराई से छू गई कि क्वारंटाइन से बाहर आने के बाद मैं उनके पैरों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी... उन्होंने पूछा, 'तुम रो क्यों रही

हो? अरे, अब तो कोरोना ठीक हो गया है, हँसने की जगह रो क्यों रही हो? मैंने अपनी गलतियों को स्वीकार किया, पर वह तो बस हँसते रहे। 'अरे, यह सब तो चलता ही रहता है, मेरी ही गलती थी, इसीलिए तुम्हें गुस्सा आना स्वाभाविक था, मैं तुम्हारी इच्छाएँ पूरी नहीं कर सका, यह मेरी ही गलती है न... चलो, मैं भी तुमसे माफ़ी माँगता हूँ।' ऐसा कहकर वह मेरे पैरों में पड़ने लगे। मुझे उन्हें बड़ी मुश्किल से रोकना पड़ा। म.सा.! मुझे इसका कठोर प्रायश्चित दीजिएगा, परमेश्वर जैसे पति पर मैंने इतना क्रोध किया, अपशब्द कहे, अपमान किया... उस दिन के बाद मैंने उन पर कभी भी क्रोध नहीं किया। आज तो ऐसी स्थिति है कि 'पति कैसा हो?' इस विषय पर अगर मुझे व्याख्यान देना हो, तो मैं अपने पति के बारे में तीन घंटे तक बोल सकती हूँ... पति के रूप में तो वही मुझे आदर्श लगते हैं।

(२२) सास का स्वभाव सख्त था, वे मुझे अपने दबाव में रखना चाहती थीं। लेकिन मेरा स्वभाव भी तेज़ था, मैं किसी के दबाव में रहूँ, यह तो संभव नहीं था। शुरुआत में तो मैं चुप रही, लेकिन फिर मुझे लगा कि 'यह सास मेरी शांति को मेरी कमज़ोरी न समझ बैठें।' और एक दिन ऐसा प्रसंग बन गया, जिसमें मैंने पहली बार सास पर अपना गुस्सा ज़ाहिर कर दिया। उस शाम वे अपने मंडल के किसी फंक्शन में गई हुई थीं, और सूर्यास्त से आधा घंटा पहले घर आईं। मैंने खाना नहीं बनाया था। वे भड़क उठीं, 'तुम्हें पता तो है कि मैं रात में नहीं खाती, तो तुमने खाना तैयार क्यों नहीं किया?' वह प्रश्न नहीं था, बल्कि सख्ती थी, अरुचि थी, गुस्सा था। मैंने फिर भी शांति से कहा, 'मम्मीजी! मुझे लगा कि वहाँ शाम का भोजन होगा ही। आपने मुझे बताया भी नहीं था...' मेरा जवाब सही था, स्पष्ट था। उसमें विनम्रता नहीं थी... मम्मीजी भड़क गईं, 'तुम्हारी ज़बान बहुत चलने लगी है...' अब मेरा पारा चढ़ गया, 'जो सच है, वही बताया है। इसमें ज़बान चलाने की बात कहाँ से आई?... 'चुप रह। तेरे माँ-बाप ने तुझे ऐसे ही संस्कार दिए हैं...' 'मेरे माता-पिता ने तो मुझे अच्छे संस्कार ही दिए हैं। लेकिन लगता है कि आपके माता-पिता ने आपको अच्छे संस्कार नहीं दिए। वरना आप मुझ पर बेवजह के आरोप

और दादागिरी न करतीं...' वे इतने गुस्से में आ गई कि उन्होंने मुझ पर हाथ उठा दिया... लेकिन उन्हें पता नहीं था कि मैं इन सब से अपनी सुरक्षा करना सीख चुकी थी, मैंने उनका हाथ पकड़ लिया। इतनी सख्ती से पकड़ा कि वे छुड़ा नहीं पाई। उनका अहंकार आहत हो रहा था, इसलिए क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने दूसरा हाथ उठाया, लेकिन मैं इतनी फुर्ती से एक तरफ़ हट गई कि वे अपना संतुलन नहीं बना पाई और मैंने जो हाथ पकड़ा हुआ था, उसे एक झटके में छोड़ देने के कारण वे सीधे ज़मीन पर गिर पड़ीं। मैंने उन्हें गिराया नहीं था, लेकिन फिर भी मेरे निमित्त से वे गिरीं। इसके बाद तो वे ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगीं। उन्हें समझ आ गया था कि 'शारीरिक रूप से तो वे मेरा मुक़ाबला नहीं कर सकती थीं। इसलिए उन्होंने रोने-चीखने का सहारा लिया...' मुझे अब ऐसा लगता है कि उनकी ग़लती ज़रूर होगी, लेकिन मुझे इस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिए था। उसमें मैंने उनके माता-पिता तक को गाली दे दी, यह तो बहुत ही ज़्यादा ग़लत किया... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(२३) अपने फ्रेंड सर्कल के कारण मुझे अक्सर बाहर जाना पड़ता था। दोपहर में दो-तीन बजे फ़्री होने के बाद मैं किसी-न-किसी काम से निकल जाती और शाम को घर आ जाती थी। मुझे शौक था कि 'घर से बाहर निकलूँ तो तैयार होकर निकलूँ।' म.सा.। चरित्र के मामले में मैं एकदम मज़बूत थी। मेरे पति के सिवा किसी और के लिए मेरे मन में वासना-विकार नहीं थे। लेकिन मेरी सास को मेरा यह बाहर जाना पसंद नहीं था। उन्होंने मुझे दो-चार बार टोका भी, 'रोज़-रोज़ क्या बाहर जाना...' मैंने कहा, 'घर के सारे काम करके ही जाती हूँ। और पूरा दिन घर में रहकर ऊब जाती हूँ। तो बाहर जाएँ, तो अच्छा लगता है।' वे अपनी दृष्टि से सही होंगी, पर मुझे अपनी दृष्टि से मैं सही लगती थी। उन्होंने मेरे पति और ससुर से भी शिकायत की। उन्होंने मुझे शांति से समझाया कि 'हमें तो तुम्हारे बाहर जाने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन तुम्हारी सास की प्रसन्नता के लिए तुम इसे कम कर दो। घर पर रहकर उनके साथ बातें करो...' मैंने कहा, 'सास के साथ क्या बातें करूँ? कितनी बातें करूँ? कोई विषय तो होना चाहिए न,

और जनरेशन गैप होने के कारण उनकी बातें मुझे पसंद नहीं आतीं और मेरी बातें उन्हें पसंद नहीं आतीं।' और एक दिन तो ग़ज़ब हो गया। आधुनिक ज़माने के कारण मेरे पुरुष मित्र भी थे ही। मैं उनके साथ भी बात करती थी, और मम्मीजी को इसका अंदाज़ा हो गया था। एक बार मैं शाम को घर देर से पहुँची। मम्मीजी गुस्से में थीं। मेरा मेकअप, ड्रेस वगैरह देखकर वे और भड़क गईं, 'कितने पुरुषों के साथ तुम्हारे संबंध हैं? मुझे पुत्रवधू चाहिए, वेश्या नहीं...' बस, इतना सुनते ही मैं अपना आपा खो बैठी। मैंने सास को धड़ाधड़ थप्पड़ जड़ दिए। 'शट अप! यू...' अंग्रेज़ी में गाली दी... तुरंत पति को फ़ोन किया, 'अभी के अभी घर आइए...' वह आए, पापाजी भी आए। मैंने कह दिया, 'मुझे सास के साथ रहना ही नहीं है।' काफ़ी कहा-सुनी हुई। अंत में सब कुछ शांत हुआ। सास ने मुझसे माफ़ी माँगी। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे अपनी मॉडर्न लाइफ़ बदलनी चाहिए थी, शादी के बाद भी मैं पर-पुरुषों से बातें करूँ, तो मम्मीजी कैसे सहन करतीं? मैं पवित्र थी, लेकिन मेरी जैसी कितनी ही स्त्रियाँ इन सब परिचयों में विवाह के बाद भी रिलेशनशिप में पड़ चुकी थीं। मेरी सास मेरे पर-पुरुषों से परिचय को देखकर ऐसा संदेह करें, यह स्वाभाविक ही है। उन्हें मुझे बुरे शब्द नहीं कहने चाहिए थे, यह बात सही है... लेकिन मुझे ऐसा बुरा व्यवहार ही नहीं करना चाहिए था। यह बात सबसे पहले आती है। और मैं सास को थप्पड़ मारूँ, उनकी चोटी खींचूँ... यह सब तो कितना निम्न कोटि का व्यवहार गिना जाएगा न...अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(२४) मेरी देवरानी का सात-आठ महीने का बच्चा था। एक बार दोपहर के समय हम दोनों के बीच कुछ हुआ, क्या हुआ? वह याद नहीं... लेकिन उसमें देवरानी ने मेरे गले पर हाथ रखकर उसे दबाया। बस, मुझे थोड़ा क्रोध आ गया... मैंने उसे दो-चार गालियाँ तो दीं और कह दिया कि 'आज के आज तेरे दोनों पैर दो दिशाओं में ज़ोर से खिंचवाकर तुझे खड़ी-की-खड़ी चीर डालूँगी।' और मैंने अपने दो-चार पुरुष मित्रों को फ़ोन कर दिया। देवरानी मेरा चेहरा और मेरे कठोर शब्द सुनकर बुरी तरह डर गई। वह अपने बच्चे को लेकर तुरंत अपने कमरे में चली गई... थोड़ी ही देर में वे पुरुष मित्र आ गए, धड़ाधड़ उसका दरवाज़ा खटखटाया। मैं ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ बकने लगी... वह बेचारी बहुत ज़्यादा डर गई। विवश

होकर उसने मेरे देवर को फ़ोन करके बुलाया। उस समय सास-ससुर बाहरगाँव गए हुए थे। देवर मेरे पति को लेकर वहाँ पहुँचा। उसने मुझसे माफ़ी माँगी, पर-पुरुष चले गए। देवरानी ने दरवाज़ा खोलकर मुझसे माफ़ी माँगी, तब कहीं जाकर मेरा गुस्सा शांत हुआ। ऐसे घोर कषाय-भाव के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(२५) मैंने अपने दोनों बच्चों को क्रोध के वश में होकर बहुत मारा है। उन्होंने पढ़ाई में मेहनत नहीं की, तो मारा...

- स्कूल से उनकी शिकायत आई, मुझे उनके लिए स्कूल जाना पड़ा, तो वहीं उनके क्लास टीचर के सामने ही उन्हें मारा।
- घर में ऊधम मचा रहे थे, तो मारा।
- खाने-पीने में नखरे किए, तो मारा।
- सास के साथ मेरा झगड़ा हुआ, तो वह गुस्सा बच्चों पर उतारकर उन्हें मारा।
- मैंने उन्हें कोई काम सौंपा और उन्होंने नहीं किया, तो मारा...

ऐसा तो अनेकों बार हुआ है। उन पर प्रेम भी उतना ही है, परंतु क्रोध के स्वभाव के कारण मैंने बच्चों को मारा है। वे बेचारे सहते रहे हैं, बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(२६) गुस्से में बच्चों को कभी कमरे में, कभी बाथरूम में, कभी वॉशरूम में बंद किया है। वे चीखते-चिल्लाते, माफ़ी माँगते... उसके बाद ही उन्हें बाहर निकाला है...

(२७) कभी फुट्रे (रूलर) से मारा है। कभी चिमटा गरम करके उन्हें दागा है... जब मैं उनकी शरारतों से तंग आ जाती, तब मैंने ऐसे पाप भी किए हैं।

(२८) अत्यधिक क्रोध में आकर कभी उन्हें पकड़कर गैलरी से बाहर लटकाया है, और 'बोल, फेंक दूँ नीचे' ऐसी धमकी दी है। उस समय तो वे बहुत ज़्यादा डर गए थे। बच्चों

पर क्रोध के तो ऐसे अनेकों प्रसंग हुए हैं। आज उन्हें याद करती हूँ तो रोना आ जाता है। उस समय उन बच्चों की भयभीत आँखें, उस समय उन बच्चों का भयभीत चेहरा, उनकी चीखें, उनकी पीड़ा, उनकी याचनाएँ... मुझे ऐसा लगता है कि वे नरक के जीव मुझ परमाधार्मिक से विनती कर रहे थे, और मैं परमाधार्मिक निष्ठुर बनकर उन्हें कष्ट दे रही थी। वे तो वह सब भूलकर आज भी मुझे बहुत चाहते हैं, लेकिन मेरे क्रोध के संस्कार तो कितने गहरे हो गए न! उन निर्दोष बच्चों को मुझे प्रेम से नहलाना था, उसके बजाय क्रोध की आग से मैंने उन्हें जलाया है... साहिबजी! बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(२९) साहिबजी! मैंने अपने पति को गुस्से में कई बार M.C., B.C. जैसी गालियाँ दीं। वे सामने कुछ नहीं बोलते थे, लेकिन मैंने देखा कि ऐसी गालियों के समय उनका चेहरा उदास ज़रूर हो जाता था, और ऐसा लगता था मानो अंदर बहुत पीड़ा हो रही हो... एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हें पता है कि तुम जो गाली बोलती हो, उसका अर्थ क्या होता है...? मैं अपनी सगी माँ के साथ मैथुन-सेवन करने वाला हूँ... यह है M.C. का अर्थ! और मैं अपनी सगी बहन के साथ मैथुन-सेवन करने वाला हूँ... यह है B.C. का अर्थ... तुम ऐसे शब्द न बोलो, तो अच्छा है।' तब मुझे बहुत पछतावा हुआ। स्कूल-कॉलेज में ये गालियाँ सुनकर बोलना सीख गई थी, लेकिन कभी उनका अर्थ तो सोचा ही नहीं था। ऐसी गाली तो किसी को भी गहरा आघात पहुँचाएगी ही... गधा-कुत्ता... इन सब गालियों से भी ज़्यादा ये दो गालियाँ तो किसी भी खानदानी पुरुष को आग में जलने जितना दुःख दे सकती हैं। मेरे पति ने आज तक ये दोनों गालियाँ अनेकों बार सुनने के बाद भी मुझ पर एक बार भी पलटकर गुस्सा क्यों नहीं किया? मुझे तो इसी बात का आश्चर्य होता है... ऐसी गंदी गालियाँ बोलने के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(३०) गुस्से में मैंने अपने बच्चों के अत्यधिक ठंड के दिनों में सारे कपड़े उतरवाकर उन्हें ठंड में काँपने के लिए छोड़ दिया है। वे छोटे थे, इसलिए कुछ कर नहीं सकते थे। बस, 'मम्मी...' ऐसी-ऐसी चीखें मारते, माफ़ी माँगते... मैं अपनी कोख से जन्मे बच्चों पर ऐसा

अत्याचार कैसे कर सकी? मुझे तो आज इसी बात का आश्चर्य होता है। मिछामी दुक्कड़।

(३१) एक बार मैंने अपने बेटे को चोरी करते हुए पकड़ा। मुझे बहुत गुस्सा आया, मैंने दराज़ खोलकर उस पर उसका हाथ रखवाया, और अचानक दराज़ बंद कर दी। उसकी उँगलियाँ दब गईं, खून निकलने लगा... वह भयानक चीखें मारने लगा... 'बोल, (गाली) तू चोरी करेगा?' उसने क्रसम खाई कि 'नहीं करूँगा' और मैं ही उसे डॉक्टर के पास उसकी दवा कराने ले गई। आज भी उसकी उँगलियों में थोड़ी विकृति रह गई है...

(३२) बच्चों को गरम इस्त्री से दागने की धमकी भी मैंने अचानक क्रोध में दी है, और उस समय यदि पति ने मुझे बड़ी मुश्किल से रोका न होता, तो मैं अपनी बेटी के हाथ पर गरम इस्त्री लगा ही देती... मेरा क्रोध इतना ज्यादा नियंत्रण से बाहर हो गया था। इन सभी क्रोध के पीछे कारण तो बहुत छोटे-छोटे होते थे... लेकिन मेरा स्वभाव ही अत्यंत बिगड़ा हुआ था। पति मुझे कई बार समझाते कि 'तुम शांत हो जाओ, क्रोध से तुम अपना बहुत नुकसान कर बैठती हो...' लेकिन मुझे तो उनकी सलाह सुनकर भी गुस्सा आता, 'तुम्हारे जैसा एकदम ठंडा इंसान मिला है, इसीलिए मुझे क्रोध करना पड़ता है।' बस, मुझे हुए चिकनगुनिया और कोरोना... इन दोनों के बाद मेरा क्रोध काफी शांत हुआ है।

(३३) म.सा.! लिखना चाहिए या नहीं... यह पता नहीं, परंतु एक म.सा. मुझ पर मोहित हो गए थे। उन्होंने मुझे बीमारी का बहाना बनाकर उपाश्रय में गोचरी लेने के लिए बुलाया। कुछ दिन तक तो मैं इसी तरह जाती रही। एक दिन उन्होंने मेरे साथ छेड़खानी करने की कोशिश की। मुझे रोज़ उनकी आँखों से शक तो हो ही गया था कि 'इनके अंदर केवल वासना भरी पड़ी है।' लेकिन उस दिन तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। तब मुझे पक्का विश्वास हो गया। म.सा.! मैंने अपनी ज़िंदगी का सबसे ज़ोरदार तमाचा उसी समय मारा। कराटे से मज़बूत बने हाथों के उस थप्पड़ के कारण उनके दो दाँत टूट गए, खून बहने लगा। 'साले बदमाश! मैं तुझे छोड़ूँगी नहीं।' नाक पर मुक्का मारकर नकसीर फोड़ दी। ट्रस्टियों को बुलाकर कह दिया कि 'अभी के अभी इस नीच को कपड़े

पहनाओ, नहीं तो पूरे संघ को इकट्ठा करूँगी...' ट्रस्टियों ने बड़ी मुश्किल से मुझे शांत किया कि 'यह निर्णय उनके ग.पति लेंगे...' मैं दूसरे शहर में उन साधु के ग.पति के पास जाकर आई। मेरी सख्त धमकियों के कारण आखिरकार ग.पति को मेरी बात माननी पड़ी। मेरे पति ने मुझे मना किया था कि 'इसमें तुम्हारी भी इज़्जत जाएगी।' पर मैंने स्पष्ट कह दिया कि 'मुझ पर बलात्कार भी हुआ होता न, तो भी भले ही समाज में मेरी इज़्जत चली जाती, लेकिन ऐसे बदमाशों को तो मैं जीते-जी नरक दिखाकर रहूँगी... हम स्त्रियाँ अपनी इज़्जत के डर से चुप होकर बैठ जाती हैं, इसीलिए ये साधुवेशधारी हवसखोर, शैतान बेधड़क होकर अत्याचार करते हैं... तुम इसमें बीच में मत आना, अगर सपोर्ट कर सकते हो, तो करो, मैं उसे छोड़ने वाली नहीं हूँ।' उन्होंने मेरा सपोर्ट ही किया। और म.सा.! मुझे यह थप्पड़-मुक्का मारने का आज भी लेशमात्र पश्चात्ताप नहीं है। उन्हें घर भिजवाने का लेशमात्र पश्चात्ताप नहीं है। बस! क्रोध का यह एक प्रसंग बना था, वह आपको बताया है। इसमें मेरी कोई भी ग़लती हो, तो मुझे ज़रूर बताइएगा, मैं आप पर १००% श्रद्धा रखती हूँ। आपके प्रवचनों और पुस्तकों के प्रभाव से मैं आपको अंतःकरण से अपना गुरु मानती हूँ... आपके प्रति पूर्ण समर्पण रखना ही है।

(३४) मेरी ननद को ससुराल में कोई समस्या हो गई। घर पर उसके लिए बैठकें हुईं, ननद को वापस घर लाने की बात चली। मैं उस समय बेडरूम में थी। यह सुनकर मुझे गुस्सा आया। बाहर जाकर सबके बीच कह दिया कि 'ननद कभी-कभी आए, उसमें कोई हर्ज नहीं। लेकिन अगर वह लंबे समय के लिए या हमेशा के लिए इस घर में आएगी, तो आपके घर में दो तलाक़ होंगे। एक आपकी बेटी का और दूसरा आपके बेटे का... यह घर है, कोई धर्मशाला नहीं कि सब यहाँ आराम करने आ जाएँ और मुफ्त का खाते रहें...' सास-ससुर ने मुझे शांति से समझाने की कोशिश की। पर मैंने उसका जवाब यह दिया कि बेडरूम में घुसकर धड़ाम से दरवाज़ा बंद कर लिया। उस रात पति ने मुझे प्रेमभरे शब्दों में समझाया कि 'एक सगे भाई के तौर पर मेरा क्या कर्तव्य है...' आदि। तब मुझे उनकी बात समझ में आई। मैंने दूसरे ही दिन सास-ससुर से माफ़ी

माँगी, 'ननद को बुला लीजिए, मैं उसे अपनी सगी बहन की तरह ही रखूँगी, अब आप चिंता छोड़ दीजिए...' उस समय वे दोनों रो पड़े। मुझे गले लगाकर मम्मीजी बोलीं, 'बेटी! आज तुमने मुझे नया जीवन दिया है। मैं अपनी सभी पुरानी गलतियों के लिए क्षमा माँगती हूँ।' घर में स्वर्ग जैसा वातावरण बन गया। मेरे इस तेज़ मिज़ाज के लिए बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग-

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-७ : मान-कषाय

पुरुष की आलोचना

पहले तो मुझे 'मान-कषाय एक पाप है' यही पता नहीं था। और 'मान क्या होता है?' यह भी पता नहीं था। लेकिन प्रवचनों और पुस्तकों के माध्यम से मुझे सच्चा ज्ञान हुआ। उसमें भी प्रशमरति की गाथा ने मुझे स्पष्ट बोध कराया कि (१) जाति, (२) कुल, (३) रूप, (४) बल, (५) लाभ, (६) बुद्धि, (७) वल्लभता (लोकप्रियता), (८) श्रुतज्ञान... इन आठ और ऐसी ही अन्य वस्तुओं का अहंकार हो सकता है, और उसका नुकसान यह है कि जिस वस्तु का हम मान करते हैं, वह वस्तु हमें आने वाले भवों में नहीं मिलती। और 'मुझे मान है' यह कैसे पता चले? अभिमान की निशानी क्या है? उसके लक्षण भी मुझे जानने को मिले। उसके आधार पर मुझे पता चला कि मुझमें मान बहुत है...

• जिस बात के लिए अपनी प्रशंसा सुनकर मुझे खुशी का अनुभव होता है, उस बात का मुझे अहंकार है।

• मैं स्वयं अपनी जिस बात की प्रशंसा करती हूँ, उस बात का मुझे मान है।

- जिन बातों के दूसरों के पास न होने पर मैं उनसे घृणा करती हूँ, उनकी अवहेलना करती हूँ, मज़ाक़ उड़ाती हूँ, उपेक्षा करती हूँ... उन बातों के लिए मुझे मान है।
- अपनी जिस बात की प्रशंसा सुनने के लिए मेरा मन तड़पता है, दूसरों से प्रशंसा सुनने के लिए मैं ज़ोर-ज़बरदस्ती करके प्रशंसा के शब्द कहलवाऊँ, तो उस बात में मुझे मान है...
- दूसरों की प्रशंसा मुझे अच्छी नहीं लगी, यह भी अहंकार है।
- मुझे दूसरों की सच्ची प्रशंसा करनी थी, जो मैंने नहीं की... यह भी अहंकार है।
- मुझे अब इस दोष से मुक्त होना है, तभी मेरी आत्मा को सच्चा सुख मिलेगा। और उस दोष के नाश के लिए मुझे दोषों के संस्कारों का नाश करना होगा, और उसके लिए जीवन में किए गए अहंकार की मुझे आलोचना करनी है।

ऊपर दिए गए ६ लक्षणों के आधार पर मैं अपने मान-कषाय को खोज-खोजकर उसकी आलोचना लिखने का प्रयास कर रही हूँ। प्रभु मुझे बहुत शक्ति दें, मोह का क्षयोपशम प्रदान करें।

(१) उस समय मेरी उम्र १३-१४ वर्ष की होगी। हमारी पाठशाला में ३०० बच्चे पढ़ते थे। उस वर्ष चार बच्चों को पर्युषण के चौथे दिन २७ भव का स्तवन २००० पुरुषों के समक्ष प्रतिक्रमण में बुलवाने का निर्णय हुआ। उसमें पहली ढाल विनय नाम का एक लड़का बोलने वाला था। दूसरी ढाल मनन, तीसरी ढाल सजीव बोलने वाला था। चौथी-पाँचवीं ढाल मुझे बोलनी थी। पाठशाला के बच्चे पहली बार यह स्तवन बोलने वाले थे, और इस स्तवन का उस समय बहुत महिमा था। उसमें पहली ढाल पूरी हुई, लेकिन उसमें दम नहीं आया। हर बार जो घड़े हुए गायक श्रावक होते थे, उनके सामने यह फीका पड़ गया। दूसरी ढाल की चार गाथाएँ हुई, वह बिल्कुल ढीली-ढाली थीं। इसलिए पाठशाला के साहेब ने बीच में ही राजीव को दूसरी ढाल गाने के लिए दे दी।

लेकिन कुदरत ने ऐसा बनाया कि वह केवल दो गाथाएँ ही बोल पाया, और उसकी आवाज़ बैठ गई। साहेब टेंशन में आ गए, पाठशाला की इज़्ज़त का सवाल था। फर्स्ट इम्प्रेशन अगर खराब पड़ जाए, तो सब कुछ बिगड़ जाता है। उन्होंने मुझे बोलने को कहा। हम चारों ने पाँचों ढालें पक्की तो कर ही ली थीं, लेकिन बोलने की ज़िम्मेदारी हर एक की अलग-अलग थी। मुझे तो चौथी-पाँचवीं ही बोलनी थी। उसके बदले पूरी तीसरी और दूसरी की भी पाँच-छह गाथाएँ मुझे बोलनी पड़ीं। मैंने थोड़ा डर के साथ शुरू किया, लेकिन दूसरी ढाल एकदम बढ़िया तरीके से बोली गई। तीसरी ढाल का राग सुंदर होने के कारण लोग झूमने लगे। चौथी में ऊँचा राग खींचना था, वह मैंने ठीक से खींचा। लोग आश्चर्यचकित हो गए। और पाँचवीं ढाल में तो सबको कड़ियाँ झेलनी थीं – 2000 लोग एक साथ झेलने लगे। स्तवन पूरा हुआ और चारों तरफ़ से प्रशंसाएँ घोषित होने लगीं। साहेब और मेरे दोस्त मेरी पीठ थपथपाने लगे। 2000 लोगों के बीच मैं इतनी छोटी उम्र में हीरो बन गया। मैं बहुत-बहुत-बहुत खुश हुआ। विनय वगैरह तीनों मेरे ही दोस्त थे। मैं उनसे बेहतर बोला, इसका गर्व मुझे पैदा हो ही गया। प्रभावना पाने के बाद मैं पद्मासन मुद्रा में ध्यान मुद्रा में बैठकर नवकार गिनने लगा। मैं पौषध में था।

कई लोग आ-आकर पूछने लगे, “कौन सा लड़का स्तवन बोला?” सब मुझे सेलिब्रिटी की तरह देखने आए। मेरे दोस्त उँगली दिखाकर सबको बताते थे। सब मुझे सम्मान से देखते थे। मैंने लोगों की जिज्ञासा देखी, बातें सुनीं, और उसमें मेरे लिए प्रशंसा के शब्द पकड़ लिए। जो आनंद हुआ... लेकिन उस समय मुझे यह भान नहीं था कि वह मानानंद था, आत्मानंद नहीं था। और यह मानानंद एक पाप ही है। यह मानानंद भविष्य में मेरी सिंगिंग शक्ति को खत्म कर देगा। मैंने अपने तीन असफल दोस्तों को सांत्वना भी नहीं दी। उनके मन को दुख लगा ही होगा। मुझे कम से कम मीठे शब्दों से उनके मानसिक घावों पर मरहम लगाना चाहिए था। लेकिन मेरे अंदर सिर्फ “मैं-मैं-मैं” भरा हुआ था। गुरुदेव! मेरे इस मान के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(2) स्कूल में मेरा नंबर टॉप फाइव में आता था। यह बात मैं कई लोगों को बार-बार बताया करता था। एक बार कड़ी मेहनत के कारण चार सब्जेक्ट में 98-99-100 मार्क आए। सभी सर-टीचर ने प्रशंसा की। स्कूल के स्टूडेंट मुझे बधाई देने आए। उस समय भी मेरा एटिट्यूड अजीब ही था। दो-तीन कमजोर स्टूडेंट्स ने मुझसे पूछा, “क्या तुम हमें पढ़ाओगे?” मैंने मना कर दिया। चलो, वह तो ठीक है। लेकिन मना करने की स्टाइल पूरी तरह अहंकार भरी थी। “देखो, मेरे पास बिल्कुल टाइम नहीं है। इस तरह सबको पढ़ाने बैठूंगा, तो मेरी पढ़ाई ही नहीं होगी। तुम किसी और से पूछो। हाँ, मेरी नोट्स रेफर करनी हों, तो दे दूंगा, उसमें कोई दिक्कत नहीं...” उन तीनों को मेरा जवाब बहुत दुखदायक लगा, लेकिन मेरा ध्यान उधर गया ही नहीं। मुझे कहना चाहिए था – “सॉरी यार, इच्छा तो है, लेकिन मुझे बहुत मेहनत करनी होती है, इसलिए टाइम निकालना मुश्किल है। फिर भी मेरी नोट्स ज़रूर ले जाना।” नम्रता से किया गया व्यवहार अमृत है, मरहम है, और अहंकार से किया गया व्यवहार ज़हर है, तीर है। मेरे उस व्यवहार के लिए बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(3) मैं अत्यंत रूपवान था – मैंजरी आँखें, गोरी त्वचा। सब लोग मेरी तारीफ़ करते थे। मुझे यह बहुत अच्छा लगता था। मैं कपड़ों से अपने रूप को और निखारता था। लेकिन इसका रिएक्शन यह हुआ कि कोई काले रंग वाला दिखे, कोई कुरूप दिखे, कोई ठिगना-मोटा दिखे – तो मैं मुँह बिगाड़ लेता। मेरा मन खराब हो जाता और कई बार उनकी मखौल भी करता। “साव काला मेघ है। भगवान भी ऐसे लोगों को क्यों बनाते होंगे। और यह तो हाथी है, बाप रे! कितना खाता होगा। इसके तो अठारहों ही टेढ़े हैं, इससे तो ऊँट बेहतर है, रेगिस्तान में काम तो आता है। इस ठिगने की शादी न जाने किससे होगी। जिसे बच्चा न होता हो, वह स्त्री इसे गोद ले ले तो चल जाएगा।” इस तरह की तरह-तरह की मखौलें कीं। मेरी मौजूदगी में बाकी सब दब जाते थे। मुझे लगता था कि मेरा रूप सूर्योदय है और बाकी सबके अच्छे रूप भी तारों जैसे हैं। मेरा रूप हर जगह छा जाता था। इस सबका मुझे घोर अहंकार था।

(4) युवावस्था में कुछ लड़कियों के रिश्ते आए। उनके फोटो मैंने देखे। कुछ को तो बिना मिले ही सिर्फ देखकर रिजेक्ट कर दिया। “इन लड़कियों को शर्म नहीं आती कि वे किसकी पत्नी बनने के सपने देख रही हैं? इनके माता-पिता में कॉमन सेंस नहीं है।” यह सब केवल रूप के अहंकार से था।

(5) कुछ लड़कियों से आमने-सामने मिला, लेकिन देखते ही दमहीन लगीं। मीटिंग में ही अहंकार से कह दिया – “मेरी वाइफ बनने के सपने मत देखना, देखे हों तो छोड़ देना।” मना ही करना था तो बाद में नम्रता से कह सकता था कि “मेरी इच्छा नहीं है।”

(6) कुछ के माता-पिता अपनी बेटी के साथ घर आए। वे थोड़े चिपकू थे, हाँ कहलवाने की ज़िद से आए थे। मैंने उनके मुँह पर कह दिया – “अपनी बेटी का चेहरा देखा है? आप क्या समझकर इसे मेरी वाइफ बनाने आए हैं?”

पेरेंट्स ने मुझे समझाया कि “मना करना हो तो करो, लेकिन किसी का अपमान मत करो। ऐसे कड़वे शब्द क्यों बोलते हो?” तब मैंने कह दिया – “अगर गोंद की तरह चिपक जाए, तो उखाड़ने के लिए ऐसी भाषा ही काम आती है – एक वार, दो टुकड़े!”

(7) कॉलेज में एक लड़की मेरे पीछे पड़ी थी। उसने मुझे आकर्षित करने के लिए बहुत मेहनत की, लेटर्स लिखे। मैंने उससे कह दिया – “तेरे जैसी को तो मैं अपने घर में कामवाली भी न रखूँ।” उस दिन उसे बहुत दुख हुआ, लेकिन मुझे किसी की परवाह नहीं थी।

(8) कॉलेज में कई लड़कियाँ मेरा परिचय करने को उत्सुक रहती थीं, मुझसे बात करने का मौका ढूँढती थीं। उनकी आँखों और व्यवहार से मुझे समझ आ जाता था कि वे सब मेरे पीछे पागल हैं। मुझे इसका गर्व होता था। दोस्तों और बहन से कहता – “मेरे पीछे इतनी लड़कियाँ पागल हैं, मैं जो कहूँ वह करने को तैयार रहती हैं। सबके साथ मैंने मज़े कर लिए हैं, और जब इच्छा होती है तब मज़ा करता हूँ।”

(9) ठुकराने-ठुकराने से यह हालत हो गई कि मैंने बहुत सी लड़कियों को रिजेक्ट किया। समाज में बात फैल गई – “यह युवक सोना है, लेकिन बहुत गरम है, छुओगे तो जल जाओगे।” मेरे पास आई सारी युवतियों की शादी हो गई। मेरे दोस्त भी शादीशुदा हो गए। कुछ लड़कियाँ तो मेरे ही दोस्तों की वाइफ बन गई और मस्ती से जीवन जीने लगीं। मेरी उम्र निकलती गई, मैं अभी भी कुंवारा था। अब मेरे लिए रिश्ते आने बंद हो गए। एक फंक्शन में मुझे एक लड़की बहुत पसंद आ गई। मैंने सामने से प्रपोज़ किया। मुझे लगा वह पागल हो जाएगी। लेकिन उसने साफ कह दिया – “सॉरी, मुझे आपमें बिल्कुल रुचि नहीं है।” पहली बार मेरा मान आहत हुआ। पेरेण्ट्स के ज़रिए दबाव डलवाया, लेकिन उसके पेरेण्ट्स का सीधा जवाब था – “आपका बेटा सुंदर होगा, लेकिन मेरी बेटी को पसंद नहीं है। उसकी पसंद ऊँची है, आप कहीं और कोशिश करें।” यह बात पूरे समाज में फैल गई। मैं टूट गया। मेरा रूपाभिमान मुझ पर भारी पड़ गया। दोस्तों से भी दूरी बनानी पड़ी। समाज के फंक्शन में जाना मुश्किल हो गया। अंत में एक साधारण रूप वाली लड़की को मैंने खुद प्रपोज़ किया। शादी हुई, लेकिन शादी में भी मेरी मखौल उड़ी। यह है मेरे रूपाभिमान का फल।

(10) कुछ लड़कियाँ मेरे जैसी सुंदर थीं, लेकिन उनका खानदान कमजोर था, इसलिए मैंने रिजेक्ट किया – “हम बड़े खानदान के हैं।”

(11) कुछ के पास रूप और खानदान दोनों थे, लेकिन संपत्ति कम थी। वहाँ पैसों का अहंकार आ गया – “हम अरबपति हैं।” यह सब घमंड ही था।

(12) दुकान पर एक जैन साधर्मिक भाई आए। उन्होंने पत्नी के रिपोर्ट दिखाए, मदद माँगी। मुझे उनके बाहरी रूप से ही अरुचि हो गई। पिताजी के कहने से सुना, फिर कह दिया – “धर्मादा ट्रस्ट में जाइए।” पैसा न दे पाया तो प्रेम तो दे सकता था, लेकिन मैंने नहीं दिया। यह सब अहंकार था।

(13) घर में 15 साल का एक नौकर रखा था। मैं उससे बहुत रुखा व्यवहार करता था।
“मैं शेट हूँ, वह नौकर है।”

उसे अलग बर्तन, अलग बाथरूम। कुत्ते को बिस्किट, नौकर को नहीं। कुत्ता बीमार तो डॉक्टर, नौकर बीमार तो परवाह नहीं।

मैंने उसे इंसान नहीं समझा। यह ऊँच-नीच का अहंकार था। इसके लिए विशेष मिच्छामी दुक्कड़।

(14) कॉलेज में शर्त लगाता था कि “यह लड़की 24 घंटे में मेरी बाइक पर बैठेगी।”
अक्सर जीतता था। मेरा अहंकार बढ़ता गया।

(15) कॉलेज की भाषण प्रतियोगिता में 2000 छात्रों के बीच बोला। मुझे ज़ोरदार तालियाँ मिलीं। मैं अहंकार में डूब गया। लेकिन आखिरी वक्ता – साधारण युवक – सब पर भारी पड़ गया। पूरा कॉलेज मंत्रमुग्ध हो गया। मेरा अहंकार चकनाचूर हो गया। जब शक्ति अहंकार बन जाती है, तब चोट अहंकार को नहीं, मुझे लगती है। और मेरे साथ वही हुआ।

(16) मैंने जिम, कराटे, रनिंग से शरीर बनाया। लोग तारीफ़ करते। मैं कमजोरों को नीचा दिखाता। अपने अच्छे काम की भी बार-बार प्रशंसा करता। सुकृत किया, लेकिन उसका ढिंढोरा पीटकर उसकी कीमत खुद ही घटा दी। मेरे इस बलाभिमान के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(17) मेरे पास तुरंत जवाब देने की शक्ति थी। लोग तारीफ़ करते। मैं फूल जाता। अपने जवाब याद करके खुश होता और दूसरों को सुनाता।

(18) पर्युषण में लक्ष्मी का चढ़ावा लिया, वह चढ़ावा ...उस समय सभी सतर्क हो गए थे, सब एक-दूसरे को बोली के लिए उकसा रहे थे। मुझे पता था कि ‘इसमें तो लोग बहुत

अनुमोदना करेंगे, मेरा नाम हो जाएगा।' इसलिए मैंने ६ लाख रु. में वह चढ़ावा ले लिया। सबने खूब अनुमोदना की, तालियाँ बजाई, मेरा पूरा परिवार म.सा. के पास गया और वासक्षेप करवाया। इस तरफ माइक पर मेरे गुणगान हो रहे थे... वह सब मुझे सुनाई दे रहा था, सबकी नज़र मुझ पर थी, म.सा. ने भी मुस्कान के साथ मेरी पीठ थपथपाई, मैं बहुत खुश था। यह सब मान का ही आनंद था... पर उस समय मुझमें यह बुद्धि कहाँ थी।

(19) उसी दिन जब प्रभुजी को पालने में विराजमान करने का चढ़ावा शुरू हुआ, तब म.सा. ने सभी को प्रेरित किया कि 'आज प्रभु का जन्मवाचन मुख्य है। इसलिए उससे जुड़ा यह चढ़ावा भी मुख्य है। हर जगह लक्ष्मी का चढ़ावा ही सबसे ज़्यादा में जाता है। यह प्रभु की अशातना है। मेरी भावना है कि लक्ष्मी का चढ़ावा जितने में गया है, उससे आगे से ही यह चढ़ावा शुरू होना चाहिए। लक्ष्मी जीते, प्रभु हारें... यह कैसे चलेगा?' म.सा. ने २० मिनट तक बुलंद आवाज़ में, आँखों में आँसू लिए ऐसा ज़ोरदार प्रवचन दिया कि मुझे लगा कि 'मैं ही यह चढ़ावा ले लूँ।' इसमें अच्छा भाव भी था, और साथ-साथ Ego भी था कि लक्ष्मी का चढ़ावा मैंने लिया है, और म.सा. ने लक्ष्मी-पुजारी से प्रभु-पुजारी को लाख गुना बेहतर बताया है, इसलिए अगर मैं यह चढ़ावा नहीं लूँगा, तो मैं तो बुरा ही दिखूँगा...' और जैसे ही म.सा. का प्रवचन रुका, मैंने तुरंत '६ लाख ११ हजार' कहा, पूरी सभा में तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी। एंकर ने ज़बरदस्त अनुमोदना की, पर मेरे सामने दूसरे लोग आगे बोले। अंततः ९ लाख रु. में मैंने वह चढ़ावा लिया। जब मैंने अपना नाम दिया, तब एंकर ने पाँच-दस मिनट तक मेरी बहुत अनुमोदना की कि 'जिस भाई ने लक्ष्मी का चढ़ावा लिया, उसी भाई ने आज लक्ष्मी को हराकर प्रभु का चढ़ावा लिया है...' दूसरी बार हमारा परिवार खड़ा हुआ, लोग खूब तालियाँ बजा रहे थे, म.सा. ने भी सबको शांत करके मेरी बहुत प्रशंसा की, मैंने भी हाथ में माइक लेकर घोषणा की कि 'हर वर्ष मैं लक्ष्मी से आगे चढ़ावा बोलूँगा...' फिर से तालियाँ... इसमें मानकषाय का खूब पोषण हुआ। यह मान ऐसा पाप है कि पकड़ा

नहीं जाता। यह मीठा ज़हर है, अंदर जाकर मार डालता है। मान लीजिए कि उसी समय किसी ने यह घोषणा की होती कि 'मैं लक्ष्मी से दुगुना चढ़ावा बोलाँगा।' तो उसकी प्रशंसा बहुत होती, और उस समय मैं दुःखी ही होता... क्योंकि उसमें मेरा मान घटना ही था... और अभिमानी को अपने अभिमान पर लगी चोट बहुत ज़ोर से लगती ही है... उसकी आत्मा चीखने ही वाली थी। धर्म के क्षेत्र में भी नाम के लिए ऐसे भिखारी जैसे काम करने वाली मेरी अहंकारी आत्मा को धिक्कार हो।

(20) हमारे संघ में उपाश्रय बन रहा था। उसमें गोचरीरूम आदि अनेक कमरे बनने थे, मैंने एक कमरे का लाभ लेने का विचार किया, पर उसमें मैंने ट्रस्टियों के साथ काफ़ी चिक-चिक की। 'यह तख्ती कितनी बड़ी लगोगी? क्या वह मार्बल में खोदी जाएगी? या यूँ ही लिखी जाएगी?...' ट्रस्टियों ने सभी जवाब दिए। मैंने तख्ती बड़ी करने को कहा, मुझे अपना नाम बड़े अक्षरों में चाहिए था। उन्होंने मना किया, तो मैंने भी मना कर दिया... कुछ दिनों बाद ट्रस्टियों का फ़ोन आया कि 'आपकी बात मंजूर है...' तब मैंने लाभ लिया। उन्हें मेरे बाद कोई लाभार्थी मिला नहीं था, इसलिए मज़बूरी में उन्होंने मेरी बात मान ली। पर उसके लिए उन्हें गोचरीरूम के अलावा स्वाध्यायरूम आदि सभी में तख्ती बड़ी बनवानी पड़ी। वरना दूसरे लाभार्थी आपत्ति उठाते। इस नाम के पीछे मान ही तो था, कि सब मेरा नाम पढ़ें... अरे, मेरे नाम के बदले प्रभु का नाम या गुरु का नाम लिखवाता, तो कितना अच्छा होता... पर ऐसी कोई सुबुद्धि मुझे नहीं आई।

(21) देरासर में स्तवन-स्तुति गाता, तो ऊँची आवाज़ में गाता, क्योंकि मेरा स्वर अच्छा है, इसलिए उसे सुनकर लोगों का मेरे प्रति बहुमान भाव बढ़ेगा। यानी बोलते समय भी मन में भाव तो लोगों को खुश करके प्रशंसा पाने का ही था। कोई न होता, तो संक्षेप में निपटा देता, और कोई होता, तो अच्छी से अच्छी तरह गाता। बहुत लोग होते, तो और भी अच्छी तरह से गाता। उसमें अगर कोई बाद में टोकता कि 'तुमने तो पूरा राग ही बिगाड़ दिया, तुम उस सिंगर का गाया हुआ एक बार सुनो, तो तुम्हें अंदाज़ा आएगा कि इस गीत का राग कौन-सा है', तब मुझे बहुत दुःख होता। उस टोकने वाले पर गुस्सा

आता, क्योंकि वह मेरे मान पर चोट कर रहा था। मैंने कह भी दिया कि 'मैंने वह सुना हुआ है, मुझे उसमें दम नहीं लगा, कई लोगों को वह पसंद नहीं आया, इसलिए मैंने अपना नया राग बिठा दिया। तुम्हें पसंद नहीं आया, यह तुम्हारी Choice है, बाकी मुझे तो यह बहुत पसंद है, कई लोगों को पसंद आया है।' अभिमान वाले अपने प्रति की गई टोका-टोकी सहन नहीं कर सकते, यह मैंने स्पष्ट अनुभव किया। मिच्छामी दुक्कंडं।

(22) मेरे घर में मेरी बहन से ज़्यादा मुझे ही सब चाहते थे, मेरी हर इच्छा पूरी होती... मैं सबका लाडला था... और ऐसा सिर्फ़ घर पर ही नहीं, स्कूल-कॉलेज आदि सभी जगह था... इसलिए मुझे उसका भी मान था कि 'मैं तो कृष्ण की तरह सबका प्रिय बनता हूँ...' पर इस कारण मेरा स्वभाव ज़िद्दी बन गया। और इसीलिए घर में कुछ वर्षों बाद मेरे बदले मेरी बहन प्रिय बन गई। क्योंकि उसका स्वभाव बहुत अच्छा था। रूपादि के कारण मैंने जो प्रियता पाई थी, वह प्रियता ज़्यादा नहीं टिकी, स्वभाव की विचित्रता ने उस प्रियता को तोड़-फोड़ दिया। अब माता-पिता का प्रेम बहन को ज़्यादा मिलता देखकर दुःख होने लगा... मेरी प्रियता का मान मुझे परेशान कर गया। मिच्छामी दुक्कंडं।

(23) मैंने व्यवसाय में प्रवेश किया, तब से ही मेरे पुण्योदय से कमाई अच्छी होने लगी थी, मैं जहाँ हाथ डालता, वहाँ पैसा ही पैसा! मेरे मित्र इस मामले में बहुत पीछे रह गए, मैंने उन्हें भी सुना दिया कि, 'तुम्हें धंधा करना आता ही नहीं।' इन सबसे भी बड़ा पाप तो यह किया कि मैंने अपने पापा को भी कह दिया कि 'पापा! अब आप घर बैठ जाँ, तो अच्छा है। ज़माना बदल गया है। आपके धंधा करने का तरीका अब नहीं चल सकता। मैं सब सँभाल लूँगा। आप खुद ही देख लीजिए, आप वर्षों से इस धंधे में हैं, आप साल में जितना कमाते थे, उतना अभी मैं सिर्फ़ तीन-चार महीनों में इसी धंधे में, आपकी ही दुकान से कमा लेता हूँ।' मैंने ऐसी बेरुखी से कहा कि पापा को बहुत बुरा लगा। मुझे तो कुछ नहीं कहा, पर घर जाकर मम्मी को अपनी पीड़ा बताई कि 'जिस लड़के की सभी इच्छाएँ पूरी कीं, जिसे मैंने हर तरह से काबिल बनाया, आज वही

लड़का मुझे घर बैठने को कह रहा है... गुस्सा तो ऐसा आया कि एक थप्पड़ लगा दूँ... पर उसे अपनी तीन-चार गुनी कमाई का नशा चढ़ा है। बिज़नेस के हर क्षेत्र में उसे सफलता मिल रही है, उसका नशा चढ़ा है...' यह बात जब मम्मी ने मुझे बताई, तब भी मुझे पश्चात्ताप नहीं हुआ, मैंने उल्टा मम्मी से कहा कि 'पापा ऐसा अहंकार क्यों रखते हैं? कि मैं उन्हें कुछ कह ही नहीं सकता। मैंने जो सच्ची बात है, वही उन्हें बताई है, तो उसमें उन्हें गुस्सा क्यों आता है? तुम उन्हें समझाओ कि सच्चाई को स्वीकार करके जिएँ...' मैंने अपने परमोपकारी पिता का अपमान कर दिया... अंतर्मन से मिच्छामी दुक्कड़।

(24) मेरे समाज में मेरा बड़ा दबदबा था... सब मेरी बात मानते थे। समाज के कार्यों में मैं पैसे भी उतने ही खर्च करता... इसलिए समाज वाले मुझे ज़्यादा पूजते, मुझसे ज़्यादा पूछते... समाज का प्रमुख भी मुझे बनाया गया, किसी भी फंक्शन में मेरी स्पीच होती ही थी... पर समय बलवान है। समाज में कुछ दूसरे लोग भी मुझसे ज़्यादा शक्तिशाली बन गए। वे मुझसे भी ज़्यादा पैसे देने लगे, इसलिए अब उनका नाम ऊपर आया और मेरा नीचे... समाज वाले उनके गुण गाने लगे, उनके पास जाने लगे, कुछ समय बाद मेरा प्रमुख पद चला गया और दूसरे को मिल गया, अब मेरी स्पीच भी गई, मेरा पद गया... मुझे यह सब सहना अत्यंत भारी पड़ गया। मैं उसके दोष निकालने की मेहनत करता, उसे नीचा दिखाने की मेहनत करता, परंतु मैं सफल न हो सका, उसका पुण्योदय बहुत प्रबल था। अहंकार इंसान को कितना नीच बना देता है, यह मुझे अब समझ में आता है।

(25) संघ में सिद्धितप के पारणे का लाभ मैंने लिया था, पत्रिका में मेरे परिवार की तस्वीर के साथ एक पूरा Page मेरे कहे अनुसार लेने का तय हुआ था। मैंने अपनी तरफ से सब कुछ व्यवस्थित लिखकर दिया... पर जब पत्रिका मेरे हाथ में आई, तब मैंने देखा कि मेरी सामग्री + फोटो आधे Page में ही लिए गए थे... और फोटो भी धुंधला आया था। मैंने संघ के ट्रस्ट मंडल को खूब खरी-खोटी सुनाई, और कह दिया कि 'पूरी

पत्रिका फिर से छपवाओ, नहीं तो मैं एक रुपया भी नहीं दूँगा। आप जब लाभार्थी लेने होते हैं, तब सारे वायदे करते हैं, और फिर ऐसी बदमाशी करते हैं... यह मैं नहीं चलाऊँगा...' उन बेचारों ने मुझे समझाने की बहुत कोशिश की, पर मैंने ज़िद नहीं छोड़ी, 'पत्रिका के पैसे मैं दूँगा, पर पत्रिका नई छपवाओ।' और ट्रस्टियों को अंततः पत्रिका फिर से छपवानी पड़ी, और उसे पूरी तरह सही देखने के बाद ही मुझे शांति हुई।

(26) लाभार्थियों के बहुमान का कार्यक्रम था। उसमें पहले तपस्वियों का बहुमान हुआ, फिर म.सा. का व्याख्यान हुआ... उसके बाद जब लाभार्थियों का बहुमान शुरू हुआ, तब बहुत देर हो चुकी थी। ५०% से भी ज़्यादा लोग जा चुके थे, ट्रस्टी भी फटाफट बहुमान कर रहे थे। ऐसा लग रहा था कि 'मानो सिर्फ़ काम निपटाया जा रहा है।' मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। इसमें मूल तो Ego ही था! लोग मुझे देखें, मैंने क्या लाभ लिया, यह जानें... यह सब मुझे चाहिए था, पर मुझे नहीं मिला।

(27) और साहबजी! अंत में इतना ही कहूँगा कि मैंने अपने दोष लिखे, छोटी-छोटी बातें लिखीं... उसका भी मुझे अहंकार उत्पन्न हुआ कि 'मेरे जैसी सूक्ष्म आलोचना तो कोई नहीं करता होगा, साहबजी भी मेरी आलोचना पढ़कर आश्चर्यचकित हो जाएँगे। मुझे शुद्ध-आलोचक की उपाधि देंगे। व्याख्यान में बोलेंगे कि इसके जैसी शुद्ध आलोचना तो कोई नहीं करता... मुझे खड़ा करके सबको दर्शन कराएँगे...' यह कैसा है न, साहबजी! मान-पापों की आलोचना करने में भी नया मान-पाप! मोहराज मुझ जैसों को कैसे फँसाता है, और पटकता है... उसका मुझे अंदाज़ा हो रहा है। मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे बचाइएगा। मेरे अहंकार को तोड़िएगा, पोषित मत कीजिएगा। आलोचना न करने वालों पर मुझे दुर्भाव हुआ है, मैंने कई लोगों को आलोचना लेने के लिए समझाया, वे नहीं माने, तो मुझे उनके प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ है, 'ये सब लंबे समय तक संसार में भटकेंगे...' ऐसे विचार आए हैं... बहुत बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

मानकषाय (एक स्त्री की आलोचना)

म.सा.! पहले तो मुझे पता ही नहीं चलता था कि मुझमें मान है भी या नहीं। फिर प्रवचन और पुस्तकों के माध्यम से मुझे पता चला कि:

- * मेरी किसी भी बात की कोई प्रशंसा करे, और मुझे वह अच्छा लगे... वह मान!
- * मैं दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनने को तरसूँ... वह मान!
- * मैं दूसरों से किसी न किसी बहाने अपनी प्रशंसा करवाऊँ... वह मान!
- * किसी भी मामले में कोई मुझसे आगे बढ़े, वह मुझे बुरा लगे... वह मान!
- * मैं अपना अपमान सहन न कर सकूँ... आर्तध्यान में फँस जाऊँ... वह मान!
- * मैं अपने से उस-उस मामले में नीचे वाले का मज़ाक-मसखरी-अवहेलना करूँ... वह मान!
- * मेरी उस-उस बात के लिए कोई प्रशंसा न करे, और मैं डिस्टर्ब हो जाऊँ... वह मान!
- * मेरी उस-उस बात के लिए कोई टोके, और मैं और ज़्यादा डिस्टर्ब हो जाऊँ... वह मान!

ऐसे अनेक लक्षणों द्वारा मुझे अपना मानकषाय पकड़ने में सुविधा हुई, और इसीलिए आज मैं अपने मानकषाय के पापों की आलोचना लिख रही हूँ।

(1) मेरी ट्रेसिंग सेन्स, अलग-अलग हेयरस्टाइल एकदम सुपर थी। बहुत से लोग मेरे पास मेरी इस कला की प्रशंसा करते थे। उस समय मैं खुश होती। फिर अपनी प्रशंसा करने बैठ जाती कि 'यह तो कुछ भी नहीं। मैं सच कहूँ तो ज़्यादा ध्यान देती ही नहीं, यह तो मेरी नार्मल ट्रेसिंग है। मैं जब एकदम उपयोग के साथ करती हूँ न, तो आप यह ट्रेसिंग- यह हेयरस्टाइल सब भूल जाएँगे।' और फिर भाषण देती कि 'इसमें इतनी- इतनी सावधानी रखनी पड़ती है...'

मुझे इसमें पहले तो ख्याल ही नहीं आया कि इसमें मेरा ईगो है... पर एक बार एक शादी के प्रसंग में मैं चार-पाँच स्त्रियों के साथ खड़ी थी। तब एक प्रतिभा संपन्न स्त्री ने पहले तो मेरी प्रशंसा की। मैं बहुत खुश हुई, मैं अपने बारे में कुछ कहने ही जा रही थी कि उसी समय उस स्त्री ने मुझसे कहा, 'पर अभी भी इसमें बहुत सुधार करने की ज़रूरत है। तुम्हारे पास टैलेंट है, तुम मेहनत करोगी, तो इसमें काफ़ी सफलता पा सकती हो।' तब मेरा मुँह उतर गया। बाहर से तो मैंने मुस्कान बनाए रखी, पर मन में पीड़ा शुरू हो गई। मेरा ईगो घायल हुआ था। चार-पाँच स्त्रियों के बीच मेरी इन्सल्ट हुई थी, मैंने कहा 'ज़रूर ज़रूर, आप मुझे इसमें मार्गदर्शन दीजिएगा।' उस स्त्री ने पहले तो मेरी ड्रेसिंग में और हेयरस्टाइल में पाँच-सात गलतियाँ बताईं, मुझे वे माननी ही पड़ीं। क्योंकि वे स्पष्ट गलतियाँ थीं और बोलने वाली वह स्त्री प्रतिभासंपन्न थी। बाकी की स्त्रियों ने भी उसकी बात में हाँ में हाँ मिलाई। और फिर मुझसे कहा, 'तुम्हारी देवरानी इस मामले में बाज़ी मार जाती है। तुम उससे ज़रूर सीख लेना।' उस समय तो मुझे ऐसी जलन हुई कि कोई और स्त्री बोली होती, तो उसे दो-चार सुना देती कि 'नॉनसेंस! तुममें अक्ल नहीं है। तुम्हें तुलना करनी आती ही नहीं, उस देवरानी को तो मैंने ही सिखाया है।' पर यहाँ ऐसा बोला नहीं जा सकता था। मैंने सिर्फ़ हाँ कहा, हकीकत यही थी कि शुरू के समय में मैंने देवरानी को सिखाया था, पर बाद में तो वह अपनी बुद्धि-प्रतिभा से स्वयं ही मुझसे इस क्षेत्र में आगे बढ़ गई थी। यह बात अभी तो स्वीकार करती हूँ, पर उस समय अभिमान के कारण यह बात स्वीकार करने को मन तैयार नहीं था, वह मुझसे बहुत आगे है, यह बात मानने को मन तैयार नहीं था... आज तो ऐसा लगता है कि यह ड्रेस + हेयर दोनों एकदम तुच्छ चीज़ें हैं। मात्र पुद्गल हैं। जैनदर्शन के अनुसार हकीकत में यह राख है राख! और मैं 'मेरे पास राख अच्छी है।' इसका अहंकार करती थी, कितनी बड़ी मूर्ख! म.सा.! अब तो सिंपल लाइफ अपना ली है... पर इस पुराने मानकषाय के लिए मिच्छामी दुक्कंड।

(2) जब मैं कॉलेज में पढ़ती थी, तब एक वक्तृत्व-स्पर्धा थी, मैंने तो उसमें भाग नहीं लिया। पर अपनी सहेली को मैंने ढेरों पॉइंट्स दिए। दो हजार स्टूडेंट्स के बीच उसने स्पीच दी। सारे मेरे ही पॉइंट्स उसने लिए थे, और उसकी स्पीच सुपरहिट गई। वह स्पीच सुनते समय मैं बहुत खुश हुई, क्योंकि 'मेरे पॉइंट्स थे ना।' बाकी सबकी स्पीच कमज़ोर पड़ी और मेरी सहेली का ही नंबर आया। जब उसे ट्रॉफी के लिए आगे बुलाया गया, तब २००० लोग तालियाँ बजा रहे थे। उसे अपना अनुभव बताने के लिए कहा गया... उसने माइक हाथ में लिया, उसने अपनी स्पीच के लिए बहुत बातें कहीं, उस समय मैं चाहती थी कि वह अभी बोलेली कि, 'इस स्पीच के सभी पॉइंट्स मेरी सहेली ने मुझे दिए हैं।' मैं उसके लिए Wait करती रही, पर मुझे ऐसा सुनने को नहीं मिला, 'Thank you so much.' कहकर उसने अपना वक्तव्य पूरा किया... तब तो मेरे मन में यही विचार आया कि 'अब तो भविष्य में उसे पॉइंट्स देने ही नहीं हैं। उसे मेरा उपकार याद करने में भी दिक्कत है। ज़रूरत थी तब मेरा सपोर्ट ले लिया, और २००० लोगों के सामने वह (मन में गाली) अपना यश मेरे साथ बाँटना नहीं चाहती।'

वह बोलकर अपनी जगह पर जा रही थी, कि अचानक वह वापस आई, 'Sorry! एक बहुत महत्वपूर्ण बात करनी रह गई...' वह बोली, और मेरे कान सतर्क हो गए, मेरी उम्मीद जाग उठी, 'शायद मेरे लिए कुछ बोलेली...' और मेरा अनुमान सही निकला। उसने कहा 'मुझे यह ट्रॉफी दी गई है, पर इसकी हक़दार मैं नहीं हूँ, मैं जो कुछ भी बोली हूँ, वे सभी पॉइंट्स मुझे मेरी सहेली ने दिए हैं, अगर उसने यह पॉइंट्स न दिए होते, तो मेरा नंबर नहीं आता। अरे, मैं स्पीच ही Ready नहीं कर पाती... मैं अपनी सहेली को अपने हाथों से यह ट्रॉफी देना चाहती हूँ। Please! वह स्टेज पर हाज़िर हो...' यह सब सुनते समय मैं बहुत-बहुत खुश हो रही थी, उसमें उसने मुझे स्टेज पर बुलाया, तो मेरी खुशी आसमान पर पहुँच गई। उसके लिए दो मिनट पहले के मेरे सारे नेगेटिव विचार एक सेकंड में गायब हो गए। उसने मुझे मान नहीं दिया, तब वह मुझे स्वार्थी, मक्कार लगी... और दो ही मिनट बाद उसने मुझे मान दिया, तो वह मुझे कृतज्ञ, महान, बेस्ट फ्रेंड

लगी... और दो ही मिनट बाद उसने मुझे मान दिया, तो वह मुझे कृतज्ञ, महान, बेस्ट फ्रेंड लगी। यह मन कितना नालायक है न! कोई मुझे मान न दे, तो उस पर उपकार नहीं करना... और कोई मुझे मान दे, तो उस पर उपकार करना... यह कितनी भयंकर है मान की भूख!

मैं स्टेज पर गई। वह मुझसे गले लग गई, मैंने ट्रॉफी लेकर माइक में कहा कि 'इस ट्रॉफी की हकदार तो यही है। डायरेक्टर कितनी भी सुपर स्टोरी बनाए, एक्टर की एक्टिंग ही मूवी को सुपरहिट बनाती है...' मेरे ये दो वाक्य सुनकर २००० कॉलेज के लड़के-लड़कियाँ तालियाँ बजाने लगे, मैंने ट्रॉफी उसे वापस दे दी। पर उसमें भी मुझे बहुत मान मिला। आज मुझे स्पष्ट समझ आता है कि परोपकार, मैत्री ये सब शब्द तो बहुत अच्छे हैं, पर मैं तो भ्रम में ही जी रही थी। कोई व्यापारी पैसे लेकर वस्तु दे, तो वह परोपकार या मैत्री नहीं कहलाता, वह बिज़नेस कहलाता है। मैं प्रशंसा-सम्मान लेकर पॉइंट्स देने वाली थी न... तो मैंने उस पर परोपकार किया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैंने उसके साथ मैत्री निभाई, ऐसा बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। आज ख्याल आता है कि प्रशंसा की, कद्र की, सम्मान की, रिस्पेक्ट की बिल्कुल इच्छा के बिना अगर मैं दूसरों के लिए कुछ करूँ, तो वह परोपकार है, मैत्री है... बाकी तो सिर्फ बिज़नेस है। आज तक ऐसे हज़ारों बिज़नेस मैंने किए, मानकषाय का पोषण किया, उसके गहरे संस्कार मुझमें पड़े... उसके लिए बहुत बहुत बहुत मि. दुक्कड़। मुझे मान-मुक्त बनना है। सम्मान की अभिलाषा मुझे रखनी ही नहीं है... तभी मैं सच्ची आराधक बन सकूँगी...

(३)

मैं घर में बहुत काम करती थी, माँ के प्रति मेरे मन में बहुत लगाव था, और काम करने का मेरा उत्साह भी बहुत था। रसोई-झाड़ू-पोछा-इस्त्री आदि कई कामों में मैं सहयोग करती थी। मेरी छोटी बहन काम में आलसी थी। उसे टी.वी. में, बाहर घूमने में, मोबाइल में ज्यादा रुचि थी। मुझे उसके प्रति तिरस्कार उत्पन्न होता था। जब मेरे फूआ दो-चार दिन रहने के लिए घर आए, तब मैंने उनके लिए विशेष ध्यान रखकर उन्हें खुश कर

दिया, और जब उन्होंने मेरी प्रशंसा की, तब मैंने कहा कि “वैसे तो छोटी बहन है, लेकिन उसे काम में रुचि नहीं है। और मुझे भी ऐसा लगता है कि वह भले ही मस्ती करे, वह खुश रहे बस इतना ही।”

हकीकत यह थी कि उसकी आलस्य मुझे बिल्कुल पसंद नहीं थी, लेकिन मैंने ऐसा दिखावा किया जैसे कि मैं उसे खुश रखने के लिए बलिदान दे रही हूँ।

घर पर मासी आई, तब मैंने उनसे कहा कि “मम्मी की तबियत ठीक-ठीक है, इसलिए घर की जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। छोटी बहन तो किसी काम की नहीं है। उल्टा उसका काम भी मुझे ही करना पड़ता है...”

मासी समझदार थीं, उन्होंने मेरी गलती पहचान ली। उन्होंने मुझे निजी तौर पर कहा कि “काम करना चाहिए, लेकिन कभी भी काम का ढिंढोरा नहीं पीटना चाहिए। यह अच्छा स्वभाव नहीं है। तू मम्मी को सपोर्ट करने के लिए काम करती है, हमें सबको दिखाने के लिए नहीं। और उसमें भी तू अपनी बहन को नीचा दिखाती है, यह बहुत गलत है। तू उसे सुधारने की कोशिश कर, लेकिन हमारे सामने उसे नीचा बोलना बिल्कुल नहीं चलेगा...”

उस समय मुझे उनकी बात कड़वी लगी, मैंने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन मन में विचार आया कि “मासी सलाह देने में मास्टर हैं, लेकिन वे खुद कैसे हैं, यह मुझे पता है। वही तो मम्मी से कहा करती थीं कि ‘सासू को मैं और मेरे पति ही संभालते हैं, देवर-देवरानी ने तो सासू को मरा हुआ ही मान लिया है। हम न होते तो सासू बेचारे वृद्धाश्रम में ही होती...’ तो वे खुद अपना गुणगान करती थीं और देवर-देवरानी की निंदा करती थीं, और अब मेरे सामने दर्शन झाड़ रही हैं...”

म.सा.! उनकी सलाह सही ही थी, वे जैसे भी हों, मुझे वह क्यों देखना चाहिए? मुझे तो बस यह देखना था कि “उनकी बात मेरे हित में है, तो मुझे माननी चाहिए।” लेकिन

उन्होंने मेरी गलती निकाली, मुझे सलाह दी... इसलिए मेरा ईगो आहत हो गया, मन खट्टा हो गया। उसके बाद मैं कभी मासी से ज्यादा बात नहीं करती थी। फूआ मेरी बातों को बढ़ावा देते थे, इसलिए वे मुझे बहुत प्रिय लगने लगे। मेरा अहंकार मेरे सच्चे हितैषी को मेरा दुश्मन और मेरे दुश्मन को मेरा हितैषी मानने लगा। मिच्छामी दुक्कड़।

(४) एक उद्योगपति के घर का युवक कॉलेज में मुझ पर मोहित हो गया। उसने फ्रेंडशिप-डे के दिन मुझसे फ्रेंडशिप करने को कहा। मैं बहुत खुश हुई। हम दोनों ने एक-दूसरे को फ्रेंडशिप-बेल्ट बाँधी। उस युवक की कॉलेज में बहुत अच्छी छवि थी—एकदम अनुशासित जीवन जीने वाला, पढ़ाई में होशियार, किसी लड़की से बात तक न करने वाला, और धन अपार। मर्सिडीज कार में कॉलेज आता था। ऐसे युवक ने जब मुझसे स्वयं फ्रेंडशिप के लिए कहा, तो कॉलेज के लोग हैरान रह गए। मैं अंदर से बहुत फूल गई। हमने मोबाइल नंबरों का आदान-प्रदान किया। जैसे ही हम अलग हुए, मेरी सहेलियाँ मेरे पास दौड़कर आ गईं। “यार! तेरा तो भाग्य खुल गया। ऐसा लड़का तेरा फ्रेंड खुद बना...” सब मुझे सम्मान की नजर से देखने लगे।

अगले दिन से मुझे हर तरफ से रिस्पेक्ट मिलने लगी। सबकी नजर में मैं एक महान हस्ती बन गई। उस युवक से मोबाइल पर बातें होने लगीं। मैं अपनी सहेलियों से कहती कि “वह खुद फोन करता है, बहुत रिस्पेक्ट से बात करता है। आधा-आधा घंटा बातें चलती हैं। कभी मैं फोन न उठा पाऊँ तो पाँच-सात-दस मिसकॉल आ जाती हैं...” यह सब बताते हुए मुझे अलग ही तरह की खुशी मिलती थी, और सहेलियाँ फटी आँखों से सुनती थीं। फिर रोज-डे पर हमने एक-दूसरे को गुलाब दिए, हम B.F., G.F. बन गए। हमारा साथ घूमना-फिरना शुरू हो गया। शारीरिक संबंध भी बने। पूरे कॉलेज में यह बात फैल गई कि “इन दोनों की शादी होगी।” लेकिन मुझे भयानक झटका एक दिन लगा। उस युवक ने मुझसे कह दिया कि “हमें अपना रिश्ता खत्म करना होगा, क्योंकि पापा तुम्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। तुम्हारे पापा अमीर हैं, लेकिन मेरे पापा बड़े उद्योगपति हैं। मेरे घर में तुम्हारा रिश्ता पापा के स्टेटस के लिए कलंक है।” मैं उस दिन

बहुत रोई। मैंने उसे समझाया। वह बोला, “मुझे तुमसे शादी करने की बहुत इच्छा है, लेकिन पापा की बात तोड़कर मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं फिर से उन्हें समझाने की कोशिश करूँगा, लेकिन मुझे सफलता की उम्मीद नहीं है। क्योंकि तुम्हारे लिए बात करते ही सबसे पहले मुझे थप्पड़ खाना पड़ा। फिर भी मैंने हार नहीं मानी, लेकिन पत्थर पर पानी!”

कुछ दिनों बाद उसने मुझे फिर कॉल किया। “सॉरी! मैं हार गया। पापा ने कहा है कि अगर तुझे उस लड़की से शादी करनी है तो कर, लेकिन पहने कपड़ों में ही घर से निकल जा। पापा की हाँ के बिना मेरी कोई ताकत नहीं है। मुझे भूल जाओ...” मैं बहुत रोई। और कुछ दिनों बाद मैंने उसे किसी और लड़की के साथ घूमते देखा। कॉलेज में सबको पता चल गया। सब मुझसे पूछते, “क्या हुआ?” मैं क्या जवाब देती? नई लड़की उद्योगपति परिवार की थी। दोनों की सगाई हो गई। वह लड़की उसी कॉलेज में पढ़ती थी। मेरी आँखों के सामने मेरा घोर अपमान हो रहा था। उस लड़के ने कोई गलत व्यवहार नहीं किया था, लेकिन हमारे रिश्ते से जलने वाली कुछ सहेलियाँ मुझे ताने मारती थीं। “तेरा राजकुमार तो दूसरी राजकुमारी को ले आया।” “तू तो फिर भिखारिन बन गई।” “न घर की न घाट की।” “हमारे सामने बहुत होशियारी मारती थी, अब भुगत।” ऐसे शब्दों ने मुझे तोड़ दिया। आखिरकार मैंने कॉलेज ही छोड़ दिया। मुझे आर्तध्यान से बाहर आने में कम से कम पाँच-छह महीने लग गए। अंतर से मिच्छामी दुक्कड़। “अरबपति लड़का मुझे चाहता है” ऐसा अहंकार करने के बजाय “तीन लोकों के नाथ जिनेश्वर देव मेरे प्रभु हैं” ऐसा गौरव करना चाहिए था। “वह मुझे खुद फोन करता है” इसका गर्व करने के बजाय “मुझे सुगुरु मिले हैं, उनके प्रवचन मिले हैं” ऐसा गौरव करना चाहिए था। वह लड़का चला गया, इसका पश्चाताप करने के बजाय “मेरा आत्मा चरित्र नहीं पा सका” इसका पश्चाताप करना चाहिए था। घोर अज्ञान के कारण मान में मोह पाया, अपमान में आर्तध्यान पाया। धिक्कार है मेरी इस अधमता को!

(५) मेरे सास-ससुर, पति और देवर को मेरे हाथ की बनाई हुई ही रसोई पसंद आती थी। देवर तो देवरानी की मौजूदगी में ही कह देते, “भाभी! आप पीहर गई हों या पीरियड में हों, तब मुझे खाना ही अच्छा नहीं लगता...” यह मुझे बहुत अच्छा लगता था। देवरानी का चेहरा उतर जाता। मैं कहती कि “देवरजी! ऐसा नहीं है। देवरानी भी अच्छा खाना बनाती है। मैं भी उनका बनाया खाना खाती हूँ।” लेकिन देवर तुरंत कहते, “आप कुछ भी कहें, सच वही रहेगा। आप मम्मी-पापा से पूछ लीजिए...” इस तरह देवरानी को नीचा दिखाया जाता और मुझे ऊँचा, यह मुझे अच्छा लगता। इस प्रशंसा के लिए मैंने स्पेशल कुकिंग क्लास की और कई नई आइटम्स सीखी। देवरानी उस मामले में ढीली थीं। हर दो-चार दिन में नई-नई डिश बनाकर सबको खुश करती। परिवार को खुश रखना मेरा कर्तव्य था, लेकिन उसमें प्रशंसा की भूख और देवरानी को नीचा दिखाने का सुख-यह सब मेरी नीचता थी। और पीहर-पड़ोस में मैं खुशी-खुशी कहती कि “मेरे घर में सबको मेरे हाथ का ही खाना चाहिए। देवरानी का बनाया किसी को नहीं चलता। अब हालत यह है कि सब्जी काटने जैसे काम उसके और असली मसालेदार बनाने का काम मेरा।” आत्मप्रशंसा और परनिंदा के पाप किए। मिच्छामी दुक्कड़।

(६) मेरी ननद के विवाह के लिए जिस लड़के की बात आई थी, उस पर मेरा मत पूछा गया। मैंने अपने अनुभव के अनुसार ना कह दी। इसमें मेरा ईगो था। जब उसी लड़के से शादी तय की गई, तब मेरे मन में आया कि “मेरी बात माननी ही नहीं थी तो मुझसे पूछा क्यों?” मैंने अपने पति से भी कह दिया कि “अब आगे से घर के किसी भी मामले में मुझसे मत पूछना। मेरी मानते तो हो नहीं।” यह पूरा अहंकार था। ननद के विवाह में भी मैंने ज्यादा सहयोग नहीं किया। किसी ने पूछा तो कह दिया, “मुझे तो यह जोड़ी ठीक नहीं लगती।” हकीकत में छह-बारह महीनों में ननद रोती हुई घर आ गई। अब परिवार की मीटिंग हुई। मुझे बुलाया गया। पहले मैंने मना किया, फिर गई और जो ऐसे मौके पर नहीं कहना चाहिए, वही कह दिया कि “मैंने तो पहले ही मना किया था,

लेकिन आपने नहीं माना। अब भुगतो।” पति ने कहा, “तू जले पर नमक मत छिड़क। अब क्या करना है, यह बता।” तब भी मैंने तुच्छता से जवाब दिया, “मेरी मानोगे तो बोलूंगी, वरना खुद निर्णय ले लो।” सबने आँखों से बात की और पति ने कहा, “तू जो कहे, वही मंजूर।” मैं खुश हो गई। मैंने एक युवक को सबके सामने स्पीकर पर फोन किया। उसने कहा कि वह तैयार है। सब खुश हो गए। ननद रो पड़ी। मेरा अहंकार आसमान पर पहुँच गया। मैंने तलाक करवाया, नए विवाह करवाए। इस घटना का गुणगान मैंने कई बार किया। म.सा.! पुण्योदय से सफलता मिली, उसमें ऐसा मानानंद क्यों? अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(७) मेरा स्वभाव ऐसा था कि “मुझे मान मिलना ही चाहिए।” मैं कई ग्रुप्स में थी। हर मीटिंग में जानबूझकर देर से जाती ताकि सबका ध्यान मुझ पर जाए। फिर ऐसी बातें बनाकर देर से आती कि लोग मुझे ऊँचा समझें।

मैं पहले चुप रहती, सब बोल लें, फिर मुझसे पूछा जाए—और फिर मैं ऐसे अंदाज़ में बोलती जैसे सिर्फ मैं ही सही निर्णय ले सकती हूँ। लेकिन हमारे ग्रुप में एक नई स्त्री आई। वह नम्र थी, सुंदर थी, समय पर आती थी। उसकी विनम्रता ने सबका दिल जीत लिया। अब मेरी कोई वैल्यू नहीं रही। मेरी बातें काटी जाने लगीं। किसी ने कहा, “जाने दो, अहंकार की पुतली है।” मैं अपमान सह नहीं सकी। अंत में सारे ग्रुप छोड़ दिए।

(८) संघ में सामूहिक सिद्धितप में मैं और देवरानी दोनों शामिल होना चाहते थे। सास ने मना किया, लेकिन मैंने ज़िद की। इसमें धर्मभावना कम और प्रसिद्धि की चाह ज्यादा थी। फोटो, पत्रिका, जुलूस, सम्मान—सब चाहिए था। देवरानी ढीली पड़ गई, मेरा तप अच्छा चलता रहा। मैंने उसे सबके सामने नीचा दिखाया। म.सा. ने व्यक्तिगत पत्रिका की मनाही की थी, फिर भी मैंने ज़िद की। बड़ा फोटो छपवाया, स्टूडियो जाकर फोटो खिंचवाए, मेक-अप, नए कपड़े, बड़े जश्र—सब किया। यह सब शुद्ध अहंकार था। इस तरफ म.सा. को जब यह बात पता चली तो उन्होंने प्रवचन में कड़ी फटकार लगा

दी, मेरे पति और ससुर घबरा गए...अब क्या करें?लेकिन फिर भी मेरी ज़िद के कारण यह सब करना पड़ा। और संघ में मेरी बहुत निंदा हुई। मैंने अपने कानों से सुना कि

‘भोज में अभक्ष्य की कोई सीमा नहीं थी... इससे तो

सिद्धितप न किया होता, तो अच्छा होता...’ सिर्फ़ मेरे

अहं के कारण मैंने कितने ही गलत काम किए, इसका अंदाज़ा अब हो रहा है...

मिच्छामि दुक्कडं...

(९) मेरे बेटे-बेटी पढ़ाई में होशियार थे, देवरानी के बच्चे कमज़ोर थे... तो इसका भी मैंने मान किया कि ‘मेरी संतानें तो समझदार हैं, शांत हैं, गंभीर हैं। मैंने उन्हें ट्रेनिंग ही ऐसी दी है। उसके सामने देवरानी के लड़के-लड़की तो तूफ़ानी, आलसी हैं... देवरानी ने ध्यान ही कहाँ दिया है...’

ऐसे विचार और बातें कीं... मिच्छामि दुक्कडं।

(१०) मैंने अपने पति के लिए अहंकार किया कि वे ही सारा बिज़नेस संभालते हैं। देवर में कोई काबिलियत नहीं है। पति अगर न हों, तो धंधा ठप हो जाए। यह तो सचमुच मेरे पति की उदारता है कि उन्होंने देवर को अलग नहीं किया। और मैंने भी उनसे यही कहा कि, ‘कुछ भी हो, हैं तो आपके भाई, मेरे देवर हैं... हमें उन्हें संभालना ही है...’

पुण्योदय से सिद्धि मिलती है, उसका मैंने अहंकार किया। दूसरों के सामने यह बोलूँ, तो मेरे देवर को तो नीचा ही दिखना था... मैं ही अपने स्वजन का सम्मान कम कर रही थी। कैसी तुच्छ मनोवृत्ति! साहेबजी! बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(११) मैं ज़्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी, कॉलेज के तीन साल पूरे किए थे, कोई एक्स्ट्रा डिग्री हासिल नहीं की थी। शादी के बाद कई बार ऐसा हुआ कि हमारे सर्कल में जब बात निकलती, तब लगभग सभी महिलाओं के पास C.A., M.B.A., इंजीनियर, C.S.... जैसी

एक्स्ट्रा डिग्रियाँ थीं... तब मुझे बहुत बुरा लगता। मन में खेद होता, वे आश्चर्य से पूछतीं कि 'तुमने बस इतनी ही पढ़ाई की है? कोई एक्स्ट्रा डिग्री नहीं ली?'

तब मुझे मुँह नीचा करना पड़ता। कभी-कभी वे मेरा मज़ाक भी उड़ातीं कि 'इस बात की इसे ख़बर नहीं होगी, इसने पढ़ाई ही कहाँ की है।' इस तरह बार-बार अपमान सहना पड़ता... उसमें मैं दुःखी हो जाती...

आज ऐसा लगता है कि इसमें दुःखी होने जैसी कोई बात थी ही नहीं। मुझे पाँच प्रतिक्रमण आते थे, वह उन्हें कहाँ आते थे? मुझे स्नात्र आता था, वह उन्हें कहाँ आता था?... लेकिन सही समझ न होने के कारण मैंने ग्लानि अनुभव की, अपमान महसूस किया... मिच्छामी दुक्कड़ं।

(१२) म.सा.! मैंने शराब भी पी। वह भी सिर्फ़ अहं के लिए! हम १०-१२ दंपत्ति गोवा घूमने गए थे। उसमें दूसरी महिलाएँ शराब पी रही थीं, मैं साथ थी... एक ने मुझे ऑफ़र की... मैंने मना किया, तो तुरंत दूसरी ने ताना मारा 'ये जो है न, दूध पी सकती है, आंबिल खाते में मूँग का पानी पी सकती है, तप के पारणे में राब पी सकती है... शराब पीने की हिम्मत इस बेचारी में नहीं है, यह एक घूँट भी नहीं पी सकेगी। वॉमिट ही हो जाएगी...' ऐसी सब बातों से मेरा मन भड़क गया। 'मैं नहीं पी सकती, ऐसा मत मानना... तुम लोग घूँट-घूँट कर पीती हो, मैं एक झटके में एक गिलास पी सकती हूँ... लाओ।' और मैंने सचमुच एक ही झटके में एक गिलास पी लिया। उन्होंने ताली बजाई, दूसरा गिलास पीने को कहा, पर मैंने नहीं पीया... कह दिया कि 'नहीं! यह तो सिर्फ़ तुम्हें दिखाना था कि हम धर्म करते हैं, इसलिए सत्त्वहीन हो गए हैं, ऐसा तुम मत मानना।'

म.सा.! मुझे अपनी मूर्खता पर घृणा होती है। सच्चा धार्मिक तो पाप करने में सत्त्वहीन-असमर्थ ही होता है! उसमें ग़लत क्या? अरे! सब शराब पीते हों, शराब पीने के लिए उकसाते हों, मज़ाक करते हों, सत्त्वहीन कहते हों... ऐसी स्थिति में भी शराब न पीना, एकदम strong रहना... यह तो सबसे बड़ा सत्त्व है। सत्त्व दिखाने के चक्कर में वास्तव में

तो मैंने अपना सत्त्व ही गँवा दिया। अच्छा हुआ कि एक गिलास से ज़्यादा नहीं पीया... अपनी इस मूर्खता के लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(१३) ऐसा ही पाप मैंने कॉलेज में सिगरेट पीने का सिर्फ़ अहंकार के कारण किया। मुझे सिगरेट पीना बिल्कुल पसंद नहीं था। पर मेरे सर्कल में सब पीते थे, और मेरा मज़ाक उड़ाते थे, तो उन्हें दिखा देने के लिए मैंने सिगरेट पी... पर एक-दो बार... फिर नहीं पी। मिच्छामी दुक्कड़।

(१४) मैं एक धावक थी, और कई बार मुझे दौड़ प्रतियोगिताओं में भाग लेना पड़ता था। मैं लगभग नंबर-१ रहती थी। और इसका मुझे बहुत अहंकार था। लेकिन एक धावक ने मुझे लगातार दो-तीन बार हराया, मेरा अहं आहत हुआ। मैंने तय किया कि 'किसी भी तरह उसे हराकर ही रहूँगी।' और एक बड़ी प्रतियोगिता में फिर से हमारे बीच टक्कर हुई। मुझे किसी और की चिंता नहीं थी, पर वही मेरे लिए सबसे बड़ी प्रतिस्पर्धी थी... मुझे डर था कि 'कहीं मैं हार न जाऊँ।' मेहनत तो मैंने बहुत की थी, उसकी उच्चतम गति जाँचकर उससे अधिक गति मैंने प्राप्त कर ली थी, पर मेरी तरह वह भी मेहनत तो कर ही रही होगी...

और हम दोनों के बीच दौड़ में कड़ा मुकाबला हुआ, अंत तक यह तय नहीं हो सका कि 'कौन जीतेगा...' मेरे सिर पर तनाव सवार हो चुका था। लेकिन अंत में मैं जीत गई... हम दोनों के बीच सिर्फ़ ०.३ सेकंड का फ़र्क रहा... पर मैं जैसे ही जीती, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी, उसकी तरफ़ देखकर जीभ दिखाने लगी, उसका अपमान हो, ऐसा व्यवहार करने लगी। पर मेरा यह व्यवहार मुझ पर ही भारी पड़ गया, मेरी जीत होने के बावजूद लोगों ने मेरी आलोचना की, मेरा व्यवहार स्पोर्ट्समैनशिप के बिल्कुल विपरीत था... लोग बोले 'यह एक जंगली जैसा व्यवहार था। ऐसे लोगों को तो स्पोर्ट्स में लेना ही नहीं चाहिए। यह खेल है। यह कोई युद्ध नहीं है...' मुझे बाद में एहसास हुआ कि 'मैंने ग़लत किया...' पर वह भी निंदा होने के कारण मुझे अपनी हरकत ग़लत

लगी। इसलिए उसे सच्चा पश्चात्ताप तो नहीं कहा जा सकता... अब एहसास हो रहा है, अब सच्चा पश्चात्ताप हो रहा है। मिच्छामी दुक्कड़ं।

(१५) मैं छुट्टियों में साध्वीजी के शिविर में गई थी, तब मैं कॉलेज में पढ़ती थी... मुझे शिविर में रुचि नहीं थी, मैं शिविर के दौरान मोबाइल देखती रहती थी, साध्वीजी ने देखा, उन्होंने मुझे टोका... मैं तुरंत रुक गई, पर दस मिनट बाद फिर से मोबाइल में देखने लगी, अब साध्वीजी ने मुझसे कड़ाई से कहा कि 'आप खड़ी हो जाइए, और बाहर चली जाइए।' २०० लड़कियों के बीच मुझे इस तरह कहा। इसलिए मुझे साध्वीजी के प्रति दुर्भाव हुआ। मैं घर चली गई, मम्मी के सामने साध्वीजी की निंदा की। 'उनके व्याख्यान में कोई दम नहीं है। बस, अपनी बड़ाई हाँकती रहती हैं।' ऐसे-ऐसे शब्द बोले। मैंने अपनी सहेलियों को भी शिविर में जाने से मना किया...

म.सा.! गलती मेरी थी, पहली बार तो उन्होंने प्रेम से सूचना दी थी, दूसरी बार भी गुस्सा नहीं था, पर भाषा स्पष्ट थी। मुझे क्यों बुरा मानना चाहिए? पर बस! उन्होंने मुझे सबके बीच नीचा क्यों दिखाया? बस एक ही भाव था, और मैंने यह भूल कर डाली... साध्वीजी की निंदा-आलोचना की, अपने अहंकार के पाप से! हृदय से मिच्छामी दुक्कड़ं।

(१६) मुझमें बचपन से ही इतना Ego था कि मुझे कोई कुछ भी कह दे तो तुरंत बुरा लग जाता था... गुस्सा आ जाता, मैं चुप हो जाती...' मेरी मम्मी तो मुझे कई बार डाँटती थीं। मैं रूठ जाती, तो मम्मी मनाती नहीं थीं... पर पापा मुझे मनाते, मम्मी को डाँटते, तो मम्मी उन्हें डाँटती कि 'आप ही उसे सिर पर चढ़ाते हैं। अरे, मैं उसके भले के लिए उसे कुछ कहती हूँ। तो इसमें मुँह फुलाने की क्या बात है? कल उसने कचरा निकाला, उसके बाद मैंने उसकी नज़रों के सामने फिर से कचरा निकाला, उसने जितना कचरा इकट्ठा किया था, उतना ही दूसरी बार में भी निकाला। मैंने उसे डाँटा नहीं, सिर्फ़ सिखाने की कोशिश की है। इसी बात पर वह रूठ गई। 'मम्मी! तुम कभी मेरे काम की वैल्यू ही नहीं करती। बस, गलतियाँ ही निकालती हो...' अरे! क्या मुझे उसे सिखाना भी नहीं चाहिए...

और यह आप ही देखिए, आज यह रोटी उसने बनाई है, गोल भी नहीं है, और ठीक से पकी भी नहीं है... इसमें भी मैंने उसे डाँटा नहीं। बस! सिर्फ़ उसे सिखाया है... सूचना दी है... तो भी उसका मुँह फूला है...' फिर भी पापा मेरा पक्ष लेते 'अभी तो अठारह साल की है। धीरे-धीरे सीखेगी।' तो मम्मी तुरंत कहतीं 'आप ठीक से समझिए। धीरे-धीरे सीखेगी, इससे कौन इनकार कर रहा है? पर जब मैं उसके काम में ग़लती बताकर सुधारने को कहती हूँ, तब उसका मुँह क्यों फूल जाता है? वह रुठकर क्यों बैठ जाती है? बस, मेरी बात इतनी ही है।' और म.सा.! मम्मी की बात सही थी। मेरा स्वभाव ऐसा था कि मैं जो काम करूँ, उसकी सब प्रशंसा ही करें, उसमें कोई छोटी-मोटी ग़लती न निकाले, मेरे काम में अगर कोई भी व्यक्ति कमी निकाले, तो मेरा मूड ख़राब हो ही जाता। फिर मैं उस व्यक्ति से बात नहीं करती थी, मैं उसकी ग़लती निकालती। अपनी ग़लती से ज़्यादा उसकी ग़लती साबित करने की कोशिश करती... ऐसी सब तुच्छ मनोवृत्तियाँ मुझमें थीं, यह सब मान का ही रिएक्शन था।

म.सा.! मैंने इतनी नीचता की थी कि एक बार मम्मी ने कचरा निकाला, और मैंने चुपके से वहाँ थोड़ा-बहुत कचरा फैला दिया... और फिर कमरे से पापा को बुलाकर कहा कि 'पापा! मम्मी मुझे कहती हैं कि मुझे कचरा निकालना नहीं आता... पर आज मम्मी ने कचरा निकाला है, अब आप ही देखना, कितना कचरा निकलता है...' फिर मैंने झाड़ू लगाई, और काफ़ी कचरा इकट्ठा किया, पापा को दिखाया... पापा ने मम्मी को दिखाया। 'बोलो, तुममें और तुम्हारी बेटी में क्या फ़र्क?' मम्मी अवाक् रह गईं। मैंने गर्व से कंधे उचकाए, 'मम्मी! ग़लती तो सबसे होती ही है...'

और फिर हम खाने बैठे तो सब्ज़ी जली हुई और खारी थी... पापा बोले 'यह सब्ज़ी ऐसी क्यों है?' मम्मी सोच में पड़ गईं। मैंने तुरंत कहा, 'मेरी रोटी कम पकी, मम्मी की सब्ज़ी ज़्यादा पक गई...' असल में मम्मी सब्ज़ी बनाकर नहाने गई थीं, तब मैंने ही उस सब्ज़ी को दोबारा गैस पर चढ़ाकर जला दिया था और उसमें दुगुना नमक डाल दिया था... फिर कड़ाही को उसी जगह पर रख दिया था। मम्मी को इस बात का पता नहीं

था...मम्मी तब तो कुछ नहीं बोलीं, पर उन्हें शक तो था ही। उन्होंने बाद में C.C. कैमरा चेक करवाए, उसमें मैं घर में कचरा फेंकती और सब्जी जलाती हुई दिखी... मम्मी ने अकेले में पापा को वह दिखाया। 'देखिए, आपकी यह बेटी किस हद तक नीच बन गई है...' पापा और मम्मी ने मुझे बुलाया, एक अक्षर भी नहीं बोले, सिर्फ C.C. कैमरे का वह हिस्सा दिखाया। मैं समझ गई, मैं पकड़ी गई हूँ और मेरी ग़लती बहुत ही निम्न स्तर की थी... मैंने मम्मी के सामने सिर झुकाकर माफ़ी माँगी... मम्मी सचमुच मम्मी ही थीं, उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर सिर्फ़ प्यार दिया, बस इतना ही बोलीं 'बेटी! तुमसे ग़लती हो गई, कोई बात नहीं। हम तो तुम्हारे भविष्य की चिंता करते हैं। अब फिर ऐसा नहीं करोगी न बेटी!' मैं मम्मी से लिपट गई, मुझे तब एहसास हुआ कि 'मैं कितनी नीच थी।' बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(१७) मेरे पति मेरे हर काम में कोई न कोई ग़लती निकालकर सुधार करने को कहते... मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं था। मैंने कितनी भी अच्छी रसोई बनाई हो, फिर भी कहते कि 'तुम एक बार उस होटल का खाकर आओ। स्वाद कैसा होता है, तुम्हें अंदाज़ा आएगा...' मन ही मन में तो मैं जल-भुन गई। मुझे एक प्लान सूझा, मैंने उनसे कहा कि 'दोपहर में उसी होटल से मँगवा लिया करेंगे... मैं एक बार सीख लूँ, फिर बंद!' ...और मैंने रोज़ दोपहर में घर पर ही नई-नई आइटम बनाना शुरू कर दिया। पर दिखावा ऐसा किया कि मानो वह भोजन होटल से आया है... वे खाते, और खुले दिल से तारीफ़ करते। कि 'ऐसा बनाना चाहिए।' मैं मन ही मन बहुत खुश होती... मैंने उन्हें अच्छी तरह बेवकूफ़ बनाया था। और रोज़ दोपहर के भोजन के लिए रु. १००० उनसे लेती थी... ऐसा करते-करते पंद्रह दिन बीत गए, अब उन्हें भी रोज़ के हज़ार रु. महँगे लगने लगे, तो मुझसे कहा कि 'तुम सीखी या नहीं? कब तक होटल का चलाना है? यह फ़ालतू खर्चा क्यों करना?' तब मैंने हँसकर उनके हाथ में रु. १५००० रख दिए। वे मेरी तरफ़ देखने लगे, मैंने गर्व से कहा, 'आपने १५ दिन मेरे हाथ का बना खाना ही खाया है। और उसकी भरपूर अनुमोदना की है। बस, आपके मन में घर के सदस्य की कीमत नहीं थी

और इसीलिए आप मेरी प्रशंसा नहीं कर सके, और उसे होटल का समझकर उसकी प्रशंसा कर सके...' बेचारे का मुँह उतर गया। उनके पास इसका कोई जवाब नहीं था। म.सा.! वे ग़लत थे, यह बात तो सच है। यह लगभग हर जगह होता है कि लोग अपने निजी व्यक्ति के गुणों को देख नहीं पाते, प्रशंसा नहीं कर सकते और पराए व्यक्ति के गुणों को देख सकते हैं, सराह सकते हैं... पर मुझे तो बस इतना ही कहना है कि जैसे यह स्वभाव ख़राब है, वैसे ही यह स्वभाव भी तो ख़राब ही है न कि मैं अपने कर्तव्य कार्यों के लिए दूसरों से प्रशंसा की अपेक्षा रखूँ... मुझे अपना कर्तव्य अपनी खुशी के लिए करना है... उसमें दूसरे उसकी क़द्र करें या न करें... मुझे क्या फ़र्क पड़ने वाला है? हाँ! पति को सही बात समझाने के लिए मैंने यह किया। यह मुझे ज़रूरी भी लगता है। पर उसके बाद मैंने जो अहंकार किया कि 'मैंने आपको ग़लत साबित कर दिया, आपकी बोलती बंद कर दी...' वह अहंकार तो ग़लत ही था। मुझे उन्हें सच्चाई दिखा देने के बाद मन में या चेहरे पर या वचनों में उन्हें कमज़ोर दिखाने की ज़रूरत नहीं थी... मैंने उन्हें कैसा झूठा साबित कर दिया...' ऐसा अनुभव करना तो १००% मेरा मानकषाय ही था।

(१८) ऐसा ही मैंने पापा के साथ भी किया था। मुझे संगीत का शौक... इसलिए मैंने अच्छे-अच्छे गाने चुनकर सोनी कंपनी की छह कैसेट तैयार करवाई थीं... एक कैसेट १० मिनट की थी। मैं कई बार घर पर बजाती, पापा ने कभी एक गाना भी शांति से नहीं सुना था, बस तुरंत मुझे कहते कि 'तुम्हें गानों की Choice करनी ही नहीं आती, कैसे थर्ड-क्लास गाने लिए हैं...' एक बार ऑफ़िस से घर आए, मैं खाना खा रही थी, उन्होंने मेरे हाथ में एक कैसेट दी, और कहा कि 'तुम इस कैसेट के गाने सुनो, तुम्हें पता चलेगा कि कैसे गाने लेने चाहिए...'

मैंने कैसेट हाथ में ली, पापा खाने बैठे और मैं 'चलिए, आज यह कैसेट बजाती हूँ।' कहकर बाहर के कमरे में गई। गाने चालू किए, अंदर गई तो पापा बोले कि 'देखो, कितना बढ़िया गाना है... मैं तुम्हें कहता था न कि ऐसे गाने लेने चाहिए...' दो-तीन गाने बजे, पापा का खाना पूरा हुआ, तो मैं पापा को बाहर ले गई, और उन्होंने मुझे जो कैसेट

दी थी, वह उनके हाथ में दे दी, पापा मुझे आँखें फाड़कर देख रहे थे... मैंने कहा 'आपने जिन गानों की प्रशंसा की, वे तो मेरी ही कैसेट के गाने थे, आपकी कैसेट तो मैंने बजाई ही नहीं... आपका स्वभाव ही ऐसा है कि मैं कितना भी अच्छा करूँ, पर आपको उसमें गलतियाँ ही दिखती हैं...' पापा के पास बोलने के लिए कोई शब्द नहीं थे, वे झूठे साबित हुए थे, और मेरी विजय हुई थी। पर इसमें भी मेरा घमंड ही पोषित हुआ था... 'मेरे गाने सुपर! दूसरों के गानों में कोई दम नहीं...' मैंने पापा की भी बोलती बंद कर दी।'

(१९) छुट्टियों में जब मैं मायके गई, तो सारी सहेलियाँ इकट्ठा हुईं। वे सभी बहुत अमीर घरों की बहुएँ थीं, तो हर साल एक-दो ट्रिप तो वे Out of India की कर ही लेती थीं, उस दिन सभी सखियाँ अपनी उन ट्रिप्स का वर्णन कर रही थीं, मेरे ससुराल में खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी! भारत में साल में एक-आध बार घूमने जाते थे, पर विदेश की महंगी ट्रिप करने की मेरे ससुराल में क्षमता नहीं थी... मेरी सहेलियों ने मुझसे पूछा कि 'तुम कितनी बार विदेश घूम आई? कहाँ-कहाँ जाकर आई?' यहाँ मेरी इज़्जत का सवाल था। अगर मैं यह कहूँ कि 'एक भी बार नहीं।' तो मेरा ससुराल मध्यमवर्गीय है, यह सबको पता चल जाता। और यह मुझे मंज़ूर नहीं था। इसमें मेरा Ego आहत होता था। इसलिए मैंने अभिमान के कारण डींग हाँकी 'मेरे पति तो मुझे कई बार कहते हैं पर मैंने साध्वीजी से समझा है कि विदेश जाने से बहुत पाप लगता है, इसलिए मैंने तो तभी तय कर लिया था कि मुझे विदेश नहीं जाना है। और वैसे भी हमारे देश में कहाँ कम जगहें हैं कि बाहर जाना पड़े...' संक्षेप में, मैंने किसी भी तरह यह ज़ाहिर नहीं होने दिया कि 'हमारा ससुराल एक मध्यमवर्गीय परिवार है।' आज तो ऐसा लगता है कि मैं जैसी थी, वैसा कहने में मुझे क्या हर्ज़ था? पैसे कम होना कोई पाप नहीं था। मैंने उन्हें कहा होता कि 'मेरे पति के पास इतने पैसे नहीं हैं कि वे विदेश की ट्रिप का खर्च उठा सकें।' तो क्या सखियाँ मुझे पापी मानने वाली थीं? शायद वे मेरा मज़ाक उड़ातीं... तो भले ही उड़ातीं। यह तो उनकी ग़ैर-खानदानी बात होती, उसमें मुझे क्या आपत्ति थी?

पर सिर्फ अहंकार के कारण मैं सच्चाई नहीं बोल सकी। मैंने अपनी शान बनाए रखने के लिए असत्य का उच्चारण किया, इसके लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(२०) मेरे पास लगभग सभी चीज़ें ब्रांडेड ही होती थीं। कपड़ों से लेकर चप्पल तक! इसका भी मुझे बहुत अहंकार था। पड़ोसियों को, मेहमानों को कहती 'मैं तो सभी चीज़ें ब्रांडेड ही इस्तेमाल करती हूँ, तुम सब कैसे अन-ब्रांडेड इस्तेमाल कर सकते हो? मुझे आश्चर्य होता है। पानी की बोतल भी अगर मैं अन-ब्रांडेड इस्तेमाल करूँ, तो मुझे तो उसमें से बदबू ही आती है। वॉमिट जैसा होने लगता है।' और म.सा.! कुछ महिलाओं को तो मैंने कई लोगों के बीच अपमानित भी कर दिया कि 'तुम यह क्या किसी भी कंपनी की चीज़ इस्तेमाल करती हो? तुम्हारे पास पैसे कहाँ कम हैं? इतनी कंजूसी क्यों करती हो?'

एक बार तो मेरी सखी ने मुझे जन्मदिन पर बड़े भाव से एक ड्रेस गिफ्ट में दी थी। मैंने उसे देखते ही मुँह बना लिया, और पार्टी में सबके बीच ही वह गिफ्ट उसे फेंककर वापस कर दिया... 'ऐसी अन-ब्रांडेड चीज़ क्या गिफ्ट देती हो? इससे तो कुछ न देती, तो अच्छा होता...' उस सखी को बहुत बुरा लगा। वह तुरंत ही पार्टी से निकल गई। उसके बाद हमारे बीच हमेशा के लिए बोलचाल बंद हो गई।

बाद में मुझे एहसास हुआ कि 'मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।' आज तो आँसू निकल रहे हैं, क्योंकि मैंने एक सखी के प्रेम को तोड़ा, उसके प्रेम की महानता देखने के बजाय उसने दी हुई चीज़ की तुच्छता पर नज़र की... म.सा.! जब मुझे अपनी यह ग़लती याद आई, तब मैंने यह लिखते-लिखते ही सखी को फ़ोन किया, रोते-रोते माफ़ी माँगी, उसे मेरे प्रति बहुत प्रेम तो था ही, बस! यह बोलचाल बंद होने की दीवार मैंने तोड़ी, उसने मुझे माफ़ कर दिया... वह आज ही मेरे घर आने वाली है... मैं यह लिखा हुआ उसे भी पढ़ाऊँगी... (लगभग तीन घंटे बाद फिर से लिख रही हूँ...) वह सखी घर आकर गई, मैंने उससे बहुत माफ़ी माँगी, वह मेरे लिए ब्रांडेड ड्रेस लेकर आई थी... मैंने उसे वापस भेज

दिया, और स्पष्ट कह दिया कि ३०० से ५०० की रेंज वाली साड़ी लेकर आओ, वही मैं आज पहनूँगी...

तुम्हारी दी हुई अनब्रांडेड साड़ी या ड्रेस... उसमें सबसे बड़ा ब्रांड होगा प्रेम का! क्षमा का!... मुझे एडिडास या ऐसा कोई ब्रांड नहीं चाहिए, मुझे तो प्रेम नाम का ब्रांड चाहिए। वह आधे घंटे में वापस आई, ५०० रु. के बिल के साथ मुझे साड़ी दी, मैंने वही पहनी और मुझे इतनी खुशी हुई कि अब मैं सबसे कहती हूँ कि मुझे प्रेम = स्नेह ब्रांड की चीज़ चाहिए। मैं सिर्फ़ उसी ब्रांड की चीज़ें इस्तेमाल करती हूँ। अगर मुझे कोई भी उपहार दो, तो प्रेम ब्रांड का ही देना... दूसरा कोई नहीं। आज तो अब मैं इस मामले में सुधर गई हूँ... पर इतने वर्षों तक जो मैंने ब्रांडेड चीज़ें इस्तेमाल करने का अहंकार किया, अनब्रांडेड पहनने वालों का मज़ाक उड़ाया, अनब्रांडेड वालों को नीचा समझा, उनके सामने अपनी बड़ाई की, अनब्रांडेड उपहारों को अनदेखा किया, उन्हें देने वालों का अपमान किया, मैंने दूसरों को ब्रांडेड उपहार ही दिए, और देते समय बाकायदा ऐसा दिखावा किया कि 'मैं तो अनब्रांडेड उपहार ही देती हूँ...' इन मेरे सभी पापों के लिए मिच्छामी दुक्कडं...

(२१) मैंने अपनी धर्माश्रयना का, अपनी आत्मा के गुणों का भी बहुत अहंकार किया। मैंने अपनी आराधना की प्रशंसा की और विरोध करने वालों का अपमान किया... इस मामले में मैंने ढेरों बार गलतियाँ की हैं... कई लोगों का अपमान किया है। पाठशाला में मैं बातें नहीं करती थी, लगातार पढ़ती थी... तो मुझे कई गाथाएँ याद हो जाती थीं। फिर मैं टीचर को और दूसरों को कहती कि 'मैं तो बिल्कुल बातें नहीं करती, टीचर! ये दूसरी लड़कियाँ तो बातें ही करती रहती हैं।' स्कूल में मेरा हमेशा १ से ३ में नंबर आता, ज़्यादातर तो पहला ही! टीचर मेरी बहुत प्रशंसा करते थे। सबसे कहते कि 'इसकी तरह गंभीर होकर पढ़ो, तो तुम्हारा भविष्य सुधरेगा, नहीं तो तुम खुद ही अपने भविष्य को कलंकित करोगे।' यह सब सुनकर मैं गर्व से फूल जाती, फिर तो मैं भी उन सबको सलाह देती, और आलसी-उधमी छात्रों की निंदा करती। मैं बुआ-मामी-मौसी-चाची...

सबसे कहती कि मैं तो मम्मी-पापा की हर बात मानती हूँ, घर के काम करती हूँ... पर छोटी बहन कुछ नहीं करती।'

• स्कूल या कॉलेज में मैं प्रेम-प्रसंग वगैरह में नहीं फँसी थी... मेरा ध्यान सिर्फ़ और सिर्फ़ पढ़ाई में ही था। मैं सबसे कहती कि, 'यह सब लफ़ड़ेबाज़ी मुझे तो बिल्कुल पसंद नहीं। मुझे तो ये प्रेम-व्रेम करने वालों को देखकर ही चिढ़ होती है। अभी ठीक से पढ़ लेना चाहिए, माँ-बाप के पैसे बर्बाद करते हैं सब... छी!...' (वही मैं अंत में उस उद्योगपति के लड़के के साथ प्रेम में पड़ गई, और वह प्रेम टूटा भी...)

मैं पैसे के मामले में बहुत किफ़ायत करती थी, पैसा बचाती थी। माता-पिता मेरी बहुत प्रशंसा करते, शादी के बाद भी मेरे ससुराल वाले मेरी इस काबिलियत से खुश थे। मैं पैसे की बर्बादी नहीं होने देती थी... पर इसका भी मुझे अहंकार था!

सहेलियों, पड़ोसियों से इस बात पर चर्चा करती कि 'तुम्हारा घर खर्च कितना है? इतना ज़्यादा? मेरा तो तुम्हारे ७०% में ही निपट जाता है। और फिर भी मैं जीवन तो एकदम बढ़िया जीती हूँ। तुम सबको पैसे बचाने नहीं आते। तुम कंजूसी मत करो, पर किफ़ायत तो करो। पैसे उड़ाने के तुम्हारे धंधे ही गलत हैं।'

• मैं मर्यादापूर्ण वस्त्र पहनती थी, मेरी ननद, देवरानी, भाभी के वस्त्र काफी उद्दंड किस्म के भी होते थे। वहाँ भी मैं लोगों से कहती कि 'इन सबको कोई मर्यादा ही नहीं है, बिल्कुल बेशरम हैं सब। कोई इन्हें रोक-टोक नहीं सकता, कोई कुछ कहने जाए, तो नागिन बनकर डसने दौड़ पड़ती हैं। सब कपड़े उतारने की होड़ में लगे हैं।'

महाराज साहेब! मुझे अपनी नम्रता का भी अहंकार था। मैं रोज़ सास-ससुर के पैर छूती, मायके में मम्मी-पापा के छूती। बचपन से ही मुझमें यह संस्कार थे... पर मैंने अपनी सहेलियों या किसी को भी इस तरह पैर छूते नहीं देखा था। तो उसमें भी बड़ाई की कि 'मैं तो सास-ससुर के पैर छुए बिना मुँह में पानी नहीं डालती। मेरी सास के साथ

कुछ अनबन हो जाए, तो भी मैं यह विनय कभी नहीं छोड़ती... मेरी सहेलियाँ तो उदंड हैं। वे तो उन्हें झुकेंगी नहीं, बल्कि झुकाएँगी। अपने पति को भी अपने इशारों पर नचाती हैं। यह सब पश्चिम का रंग चढ़ा है...'

मोबाइल में कुछ भी बुरा नहीं देखती, वेब-सीरीज़ वगैरह से मुझे सख्त चिढ़ है। मुझे अब्रहम में भी रुचि कम है...! मुझे ऐसी कोई वासना परेशान नहीं करती। पर मैंने इस मामले में निंदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 'आज तो सब वासना के कीड़े हैं। मोबाइल में पराई स्त्री-पराए पुरुषों की गंदी क्रियाएँ देखते हैं... विष्टा में सूअर की तरह वासना में लिप्त हैं। मैंने तो अपने पति से भी कह दिया है कि मुझे ऐसा गंदा देखने में बिल्कुल रुचि नहीं है।'

मेरी कितनी ही सहेलियाँ पति से, सास से झगड़ा कर-करके मायके आ जाती थीं। कुछ के तो तलाक भी हो गए। मैंने कईयों के मामले सुलझाए। फिर उसकी भी बड़ाई की कि 'मेरे पति-सास भी कोई दूध के धुले नहीं हैं। कौए तो हर जगह काले ही होते हैं। पर हमारे अंदर सहनशीलता होनी चाहिए, गुस्सा करना नहीं चलता। कुछ भी शब्द बोल दें, यह नहीं चलता। हमारा खुद पर ही नियंत्रण न रहे... वह कैसे चलेगा? मैंने आज तक सास या पति पर क्रोध नहीं किया, होशियारी से काम लिया है। आज वे सब मुझे देवी मानते हैं। यह क्या? सिर हमेशा उबलता ही रहे, यह कोई शोभा देता है?... पर किसी को जीवन जीना ही नहीं आता...' 'अरे, गंभीर बनो। यह क्या छोटी-छोटी बात पर दाँत निकालकर हँसते रहना? बस एक मुस्कान दो... बस! हम कोई टूथपेस्ट का विज्ञापन करने नहीं बैठे हैं... मुझे तो यह बिल्कुल पसंद नहीं। मैं कोई मुँह चढ़ाकर नहीं बैठती, पर सिर्फ़ एक मुस्कान ही मेरे चेहरे पर होती है।' इस तरह मैंने अपनी गंभीरता की बड़ाई की है और हँसने वालों का तिरस्कार किया है। आज किसी भी लड़की का पेट सागर जैसा गहरा नहीं है, बिल्कुल उथला है। शादी से पहले माता-पिता के साथ रहने वाली लड़कियाँ अपने माता-पिता की गलतियाँ सहेलियों और बॉयफ्रेंड को बता ही देती हैं। और शादी के बाद सास-ससुर-पति की गलतियाँ मायके में, सहेलियों में उजागर

करती रहती हैं। इतनी भी समझ नहीं है कि वे खुद अपने ही परिवार की इज़्ज़त कम कर रही हैं, पराए लोगों को बताने से क्या लाभ?... मैंने तो आज तक कभी मायके या ससुराल के लिए बाहर एक भी नकारात्मक शब्द नहीं बोला। माता-पिता ने मुझे मारा है, पक्षपात किया है, लड़की जात कहकर धिक्कारा है... फिर भी अकेले में रोई होऊँगी, पर अपनी सबसे अच्छी सहेली को भी एक शब्द नहीं कहा। मेरी सास ने मुझे परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, मेरे पति ने क्रोध में अनेकों बार मुझे मारा है... पर मैंने कभी अपने मायके में एक शब्द भी नकारात्मक नहीं बोला। मैं अपने घर की इज़्ज़त क्यों कम करूँ? पर मेरे पास जो गहरा पेट है, वैसा मुझे अभी तक किसी भी स्त्री में दिखाई नहीं दिया...'

ऐसी-ऐसी बातें कहकर मैंने अपनी गंभीरता की बहुत प्रशंसा की, और उथले पेट वालों को कमज़ोर दिखाया।

• 'कोई माया करे, धूर्तता करे... वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। मुझे इसी कारण किसी से बात करने का मन ही नहीं होता। लगभग सभी स्त्रियाँ दोहरे चरित्र वाली ही होती हैं। मन में कुछ और होता है और शब्दों में कुछ और... पता नहीं मुझमें कुदरती ही ऐसी शक्ति है कि मुझे तुरंत ऐसा स्वभाव पता चल जाता है। मैं हमेशा स्पष्टवादी रहने में मानती हूँ... जो मन में हो, वही बोलो... नहीं तो चुप रहो। पर दोहरा खेल मत खेलो। मैं पूरी ज़िंदगी इसी तरह जी हूँ। मेरा स्वभाव शीशे की तरह साफ़ है। किसी की माया देखती हूँ, तो मुझे उबकाई आने लगती है। मेरी सास कदम-कदम पर माया करती ही रहती हैं... इसीलिए मुझे उनसे बात करने का बिल्कुल मन नहीं होता। महाराज साहेब! मेरी सरलता का अहंकार और दूसरों के प्रति उनकी माया के कारण तिरस्कार! अरुचि-भाव!...'

प्रवचन में कई बहनें ऊँघती हैं, माला गिनती हैं, बातें करती हैं... मैं एकदम सतर्क होकर सुनती, सारे बिंदु लिखती, नोट्स बनाती... मुझे इस बात का भी अहंकार था, 'ये सब

बहनें प्रभु के वचन सुनने के लायक ही नहीं हैं। घर पर देर तक जागती हैं, और यहाँ सोती हैं। फ़िल्म देखने में तो कभी नहीं सोतीं, और यहाँ सोती हैं... इतनी भी समझ नहीं है कि प्रवचन के समय माला नहीं गिननी चाहिए! मेरा बस चले, तो इन सबको प्रवचन में आने ही न दूँ... जैन शासन में अनुशासन जैसी कोई चीज़ बची ही नहीं है।'

मेरा तो अनुशासन के लिए सख्त आग्रह है। व्याख्यान से पाँच मिनट पहले आ जाती हूँ, आगे ही बैठती हूँ, महाराज साहेब के आने से पहले मैं सामायिक लेकर तैयार ही रहती हूँ... यह है मेरा स्वभाव! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करना चाहती, पर यह सब सीखने जैसा है।' इस तरह बोल-बोलकर मैंने अपनी प्रशंसा की ही है। 'आजकल तो तपस्वियों के नखरे बहुत ज़्यादा हैं। सिद्धितप करते हैं, पर बेला में ५०-५० चीज़ें खाते हैं, पारणे के बाद तो रात्रिभोजन, अभक्ष्यभक्षण करते हैं... यह सब कितना बुरा कहलाता है। आयंबिल में डोसा-ढोकला... ऐसी चटपटी चीज़ें उन्हें चाहिए। और फिर खुद को तपस्वी कहलवाते हैं। इससे तो अच्छा है कि तप न करें, और तीन समय खाएँ। बेकार का अहंकार तो न पालें। मैंने तो बड़े-बड़े तप के बेला में सुबह-शाम ८-८ से ज़्यादा चीज़ें इस्तेमाल नहीं कीं, आयंबिल में तो सिर्फ़ चार ही चीज़ें! अनासक्ति पाने के लिए तप है। उसकी जगह आसक्ति बढ़े, तो उसका मतलब ही क्या?... 'महाराज साहेब! इस तरह बोल-बोलकर मैंने अपने तप-त्याग-अनासक्ति का अभिमान किया है, और दूसरों के कमज़ोर तप को नीचा दिखाया है...ऐसा तो मैंने कितना कुछ किया है... जैसे पानी से आग पैदा नहीं होती, वैसे ही गुणों से अवगुण पैदा नहीं होते। पर मेरे तो गुणों से अहंकार नाम की आग पैदा हुई है। जो मुझसे कमज़ोर हों, उनके प्रति मुझे करुणा-वात्सल्य-प्रेम रखना था। प्रेम से उन्हें आगे बढ़ाना था... यह सोचना था कि एक दिन तो मैं भी इनसे ज़्यादा कमज़ोर थी। आज मैं इतनी गुणी बनी हूँ, तो वे भी भविष्य में मुझसे ज़्यादा गुणी बन ही सकते हैं। मेरा जो वर्तमान स्वरूप है, उससे उनका वर्तमान स्वरूप कमज़ोर है। पर मेरा जो अतीत का स्वरूप था, उससे उनका वर्तमान स्वरूप ज़्यादा अच्छा है। तो मेरा जो वर्तमान स्वरूप है, उससे उनका भविष्य का स्वरूप ज़्यादा अच्छा

बन ही सकता है। क्यों नहीं बन सकता? गुणों का भोजन मुझे पचा नहीं, इसलिए उससे हुआ अहंकार नाम का अपच! और उस अपच के कारण आत्म-प्रशंसा और पर-निंदा नाम की दुर्गन्धयुक्त डकारें मुँह से निकलती हैं... जो सभी की आत्मा को बिगाड़ती हैं...आज मैं सच्चे मन से अपने इस पाप की निंदा करती हूँ, बहुत ही निंदा करती हूँ। अब मैं अपने गुणों का अहंकार नहीं करूँगी, नम्रता ही रखूँगी। अपने गुणों की तारीफ़ नहीं करूँगी, दूसरों के अल्प गुणों या दोषों की निंदा नहीं करूँगी...

(२२) मैं नाटक में बहुत अच्छी एक्टिंग करती थी, एंकरिंग भी अच्छी करती थी, सिंगिंग भी अच्छी करती थी, हमारे मंडल का एक बैंड भी था... हम संघ में कई गतिविधियाँ करते थे। डांस में भी मेरी महारत थी... एक बार हमारे संघ में एक महाराज साहेब आए, उनसे किसी ने हमारे विरुद्ध बात कर दी। उन महाराज साहेब ने सार्वजनिक रूप से कहा कि 'बहनें नाटक करें, एंकरिंग करें, सिंगिंग करें, बैंड बजाएँ, डांस करें... यह सब भाइयों की उपस्थिति में बिल्कुल नहीं चलता। आप अपनी मर्यादा में रहें...'

मंडल की प्रमुख मैं थी, मुझे बहुत बुरा लगा, यह मेरा घोर अपमान था, महाराज साहेब के सामने तो क्या बोलती? पर दूसरे दिन से मैंने व्याख्यान में जाना बंद कर दिया। मंडल की बैठक में १०० बहनों से कह दिया कि 'हमें व्याख्यान में नहीं जाना है। महाराज साहेब हमारा अपमान करते हैं...' और दूसरे दिन १०० बहनें व्याख्यान में नहीं गईं, महाराज साहेब को यह उल्लेखनीय कमी समझ में आ गई। उन्होंने मुझे बुलवाया। पर मैं गई ही नहीं। उन्होंने दो-तीन व्यक्तियों के द्वारा कहलवाया, पर मैं नहीं गई। अंत में मेरे पति पर दबाव आया। पर मैंने पति को भी समझा दिया... हकीकत यह थी कि महाराज साहेब ने गुस्से से नहीं कहा था, बल्कि जैन संघ की मर्यादाएँ बताई थीं, समझाई थीं... पर उसमें मैं, हमारा मंडल गलत साबित हो रहा था, वह मुझसे सहन नहीं हुआ, इसलिए मैंने पूरे चौमासे में उनका बहिष्कार किया। अपने मंडल से भी करवाया। पर्युषण में भी हम पास के एक संघ में ही गए।

महाराज साहेब! मुझे ऐसा सब नहीं करना चाहिए था, मुझे उनकी बात न भी माननी हो, तो भी व्याख्यान बंद करना, पूरे मंडल को बंद करवाना... यह तो बिल्कुल ही अनुचित था... और महाराज साहेब के मुझे अनेक बार बुलाने पर भी मैं नहीं गई, यह भी गंभीर भूल ही थी... उनके पास जाती, स्पष्टीकरण होता... तो समाधान भी होता। पर मैंने उन साधु भगवंत के प्रति हमेशा के लिए दुर्भाव पाल लिया... यह मेरी बड़ी भूल थी... सिर्फ और सिर्फ अहंकार के कारण मैंने यह पाप किया। मैं सिंगर-एंकर-बैंड बजाने वाली-एक्टर और बड़े मंडल की प्रमुख... मुझे कोई गलत कहे, गलत करने वाली कहे, यह कैसे चल सकता है? इस अहंकार ने मेरी आत्मा से ऐसा घोर पाप करवाया... हृदय से मिच्छामी दुक्कंड।

(२३) मैंने धार्मिक अध्ययन अच्छा किया था, 'मेरा ज्ञान बहुत है' यह दिखाने के लिए मैं साध्वीजी के व्याख्यान में बार-बार प्रश्न पूछती, मुझे उनके जवाब पता होते, फिर भी साध्वीजी पर एक ज्ञानी के रूप में अपनी छाप छोड़ने और सभा पर भी एक ज्ञानी के रूप में अपनी छाप छोड़ने के लिए मैंने बार-बार प्रश्न पूछे, लोग मेरी तरफ देखते, मेरी तरफ सम्मान की दृष्टि से देखते, मैं उसमें गर्व अनुभव करती, शुरू-शुरू में तो साध्वीजी ने भी मेरे प्रश्नों के उत्तर व्यवस्थित रूप से दिए। कुछ प्रश्न मैंने बहुत कठिन पूछे थे, अब तक सभी साध्वियाँ उनके उत्तर नहीं दे पाई थीं, इसलिए वे सब मुझसे प्रभावित थीं... परंतु यह साध्वीजी अत्यंत गहरे ज्ञान वाली थीं... इसलिए उन्होंने मेरे हर प्रश्न का फटाफट उत्तर दिया, इतना ही नहीं... वह उत्तर इतना स्पष्ट था कि उसके सामने मैं कोई और प्रश्न पूछकर उन्हें उलझा ही नहीं सकती थी... और तो और, उत्तर देते समय उन्होंने मुझसे ऐसे जवाबी प्रश्न किए कि उस विषय में मेरे पास कोई ज्ञान नहीं था। मेरा ज्ञान सिर्फ रटने वाला था, सीमित था... इसलिए मेरे पूछे गए प्रश्नों के सामने जब साध्वीजी ने उसी विषय में जवाबी सवाल पूछे, तब मुझे चुप होना पड़ा। महाराज साहेब! मेरे प्रश्नों का उत्तर मिलने से मुझे खुश होना चाहिए था, उन साध्वीजी के प्रति बहुमान होना चाहिए था... इसके बजाय मैं दुखी हुई, मुझे उनके प्रति अरुचि हो गई, मेरा चेहरा उतर

गया... मुझे आज स्पष्ट समझ आ रहा है कि मेरा अहंकार आहत होने से, कोई टक्कर का मिल जाने से मुझे यह भारी पड़ गया था। उसके बाद मैंने विचित्र प्रश्न पूछने शुरू कर दिए, अब सबको पता चल गया कि 'मैं सिर्फ सभा भंग करने का काम कर रही हूँ।' सबकी नज़रों में अब मेरे प्रति सम्मान के बजाय अरुचि छा गई थी। और एक विचित्र प्रश्न के सामने अंततः साध्वीजी ने मुझे कह दिया कि 'बहन! आपके अब के प्रश्न विषय से बाहर के हैं, और अनुपयोगी हैं, इसलिए अब आपके जो भी प्रश्न हों, उन्हें नोटबुक में लिख लीजिएगा, बाद में पूछिएगा... ताकि सबका व्याख्यान बाधित न हो।' उनका शांत उत्तर मेरी आत्मा में भारी अशांति उत्पन्न कर गया... मुझे वे साध्वीजी अपनी दुश्मन जैसी लगीं। उसके बाद मैंने उनके दोष देखने का, बोलने का एक भी अवसर नहीं छोड़ा... महाराज साहेब! सिर्फ अहंकार के कारण मैंने पंचमहाव्रतधारी, ज्ञानी, चुस्तसंयमी, तपस्वी साध्वीजी की विचारों द्वारा, निंदा द्वारा घोर आशातना की है, अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

मान संपूर्ण।

- X - X -

माय ब्लैक डायरी

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-९ : मायादोष

मैंने प्रवचन में शास्त्रपाठ और लक्ष्मणा की कहानी दोनों सुने, तब तो मैं बहुत डर गया। मैंने सुना कि 'जो सरल आत्मा हो, उसकी शुद्धि होती है... जो शुद्ध हो, उसे सच्चा धर्म मिलता है और जिसके पास धर्म हो, उसे मोक्ष मिलता है... इसलिए मोक्ष पाने के लिए सरलता ज़रूरी है...'

यह जब सुना, तब तो मेरी आत्मा पर इतना असर नहीं हुआ, क्योंकि मोक्ष की मुझे ऐसी कोई तीव्र इच्छा है ही नहीं। बस! वह पाने योग्य है, ऐसा सुन-सुनकर मन में यह पक्का हो गया है। पर जब लक्ष्मणा की कहानी सुनी, एक छोटी-सी माया का उसे कैसा भयानक फल मिला... यह जब सुना, दिल्ली में हुए निर्भया केस की तरह अति-अति-अति क्रूरता वाली मौत उसे खंडोठा नाम की दासी के भव में मिली। यह सुनकर तो मैं ऐसा डर गया कि तीन रात तक मुझे नींद ही नहीं आई, लगातार उसी विचार में रहा, और अंत में मैंने माया छोड़कर आलोचना करने का निर्णय किया। उसमें भी हिंसा आदि पापों की आलोचना तो मैंने कर दी, परंतु जिस माया के कारण लक्ष्मणा की ऐसी भयानक हालत हुई, वैसी माया मैंने भी अपनी ज़िंदगी में बहुत-बहुत की है, इसलिए अब उन छोटी या बड़ी सभी मायाओं को याद कर-करके लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। जो हिंसा आदि पाप हैं, वे क्रोध से भी होते हैं, मान से भी होते हैं, माया और लोभ से भी होते हैं... मैं यह बात भी बताऊँगा कि मैंने मायापूर्वक कैसे हिंसा-झूठ आदि पाप किए हैं। उसमें भले ही हिंसा आदि भी होंगे, पर मुख्य तो माया होगी। उसमें भी माया के कारण झूठ बोलना अनेक बार हुआ है...मुझे अब सरल बनना है, बच्चे से भी ज्यादा सरल! क्योंकि छोटे बच्चे में भी माया तो देखने को मिलती ही है।

(१) मेरी सबसे पहली माया तो यह कि मुझे साधु भगवंतों ने, मेरी कज़िन बहन म. ने, मेरे कल्याणमित्रों ने अनेक बार कहा कि 'तू आलोचना कर ले...' मैंने शिविर आदि में यह अनेक बार सुना... फिर भी मैंने अपने पाप गुरु को नहीं कहे, लिखकर नहीं आया। 'उन्हें कैसा लगेगा? मेरे बारे में वे अभी बहुत अच्छी छवि रखते हैं। पर मेरे पाप जानने के बाद वे मुझे कितना नीच मानेंगे, फिर मैं उनके सामने भी नहीं जा पाऊँगा...' ऐसे विचारों के कारण मैंने कोई न कोई बहाना बनाया... 'महाराज साहेब! मुझे तो लिखना ही नहीं आता, पाप कैसे लिखने हैं?' 'नहीं, नहीं! महाराज साहेब! शर्म नहीं आती, आपका डर भी नहीं लगता। पर ऐसा कोई उत्साह ही नहीं जागता...'

ये सब बहाने थे, मुख्य बात केवल एक ही थी कि मैंने माया की, अपने मन के भावों को छुपाया, और बाहर कुछ और ही बातें कीं। मेरी 17 वर्ष की उम्र तक मैंने बहुत धर्म किया, छह कर्मग्रंथ तक के सूत्र कंठस्थ कर लिए, लेकिन अपने पापों की आलोचना नहीं कर पाया। मेरा सारा धर्म 100% सच्चा धर्म नहीं था, क्योंकि मूल में तो माया ही पड़ी हुई थी... इस मेरी माया के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(2) स्कूल में मैं बहुत धमा-चाँकड़ी करता था, मैंने अपने सर-टीचर को बहुत परेशान किया है। टीचर जब बोर्ड पर लिख रहे होते, तब कागज़ के हवाई जहाज़ बनाकर टीचर पर फेंके हैं, सीटियाँ मारी हैं, कंकड़-पत्थर-चाँकपीस भी टीचर की ओर फेंके हैं...

टीचर जैसे ही पीछे मुड़कर देखते, तुरंत मैं बाकी लड़कों की तरह बिल्कुल शांत बैठ जाता। टीचर ने गुस्से में पूछा कि 'किसने ये शरारत की?' लेकिन मैं तो नहीं बोला, और कोई भी लड़का या लड़की नहीं बोली। सब मुझसे डरते थे, शरारती लड़कों का हमारा एक ग्रुप था, और उसका हेड मैं था, सब हमसे डरते थे...

(3) एक बार एक लड़की ने चालाकी करके मेरा नाम बता दिया। टीचर ने मुझे मारा... मैंने उस लड़की को मन में दुश्मन बना लिया। 10-15-20 दिन तक मैंने कुछ नहीं किया... क्योंकि तुरंत कुछ करता तो मेरा ही नाम आता... लेकिन बीस दिन बाद मैंने बीमार होने का बहाना बनाकर तीन दिन स्कूल की छुट्टी ली, और अपने बेस्ट फ्रेंड को काम सौंप दिया... रीसस में जब सब नाश्ता करने गए, तब उसने उस लड़की के स्कूल बैग की सारी किताबों और सारी नोट्स पर स्याही डालकर सब खराब कर दिया... वह बेचारी जब रीसस के बाद लौटी और स्कूल बैग से किताब-नोट निकालने लगी, तो उसके दोनों हाथ स्याही-स्याही वाले हो गए... वह रोने लगी, उसने टीचर से शिकायत की... पहली शंका मुझ पर ही जाती, लेकिन मैं तो गैरहाज़िर था, बीमार (?) था... इसलिए बात पकड़ी नहीं गई। मित्र ने घर आकर मुझे सब बताया, मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने ऐसी माया की कि कोई मुझे पकड़ न सका।

(4) मैंने टीचर से माफी माँगकर, रोने का नाटक करके अपनी छवि अच्छी बना ली थी, और पिछले 20 दिनों से एक भी शरारत नहीं की थी, और 3 दिन गैरहाज़िर रहा, उसी दौरान उस लड़की के स्कूल बैग को स्याही से खराब करवाया था। लेकिन मैं इससे पूरी तरह बच निकला। तीन दिन बाद स्कूल गया, मुझे अभी भी उस लड़की को सबक सिखाना था, इसलिए मैंने उससे भी माफी माँगकर उसे खुश कर दिया था...और फिर करीब पंद्रह दिन बाद मैंने रबर की बड़ी छिपकली उसकी बैग में रख दी। जब वह बैग से नोट निकालने लगी, तो तुरंत उसके हाथ में छिपकली आ गई। वह बिल्कुल असली लग रही थी और वह इतनी ज्यादा डर गई कि ज़ोर से चीखते हुए उछल पड़ी। उसका पैर खिंचकर टकराया, वहाँ से खून निकल आया और उसके चेहरे पर डर बहुत ज्यादा था, जो कम ही नहीं हो रहा था, उसके बोलने की सुध-बुध उड़ गई थी... करीब दस मिनट बाद वह जैसे-तैसे सामान्य हो पाई, लेकिन टीचर के पास बहुत रोई... उसने घर जाने की छुट्टी माँगी... टीचर बहुत गुस्सा हो गए... 'किसने इसके स्कूल बैग में छिपकली रखी? बोलो।' लेकिन कौन बोले? और इस बात की तो मेरे सिवा किसी को जानकारी ही नहीं थी। टीचर की नजर मेरी ओर गई, 'तूने तो ये नहीं किया न...' मैं तुरंत खड़ा हुआ, रोने-रोने का नाटक किया और कहा, 'टीचर! उस दिन के बाद मैंने सारी शरारतें बंद कर दी हैं। मैंने उससे भी माफी माँगी है। आप भी पिछले एक महीने से देख ही रहे होंगे। मैं भगवान की कसम खाता हूँ कि मैंने ये नहीं किया... आप जो कहें उसकी कसम खा लूँ... और क्या करूँ? और फिर भी अगर आपको लगता है कि मैंने ही ये किया है, तो टीचर! मुझे मारिए, लकड़ी की पट्टी से मारिए... मुझे थप्पड़ मारिए, मैं मान लूँगा कि एक महीने पहले आपको परेशान करने की सज़ा मुझे मिल रही है।'

यह कहकर मैं उनके पास गया, उनके हाथ में पट्टी थमा दी और मार खाने की मुद्रा में खड़ा हो गया। मेरी यह स्टाइल ऐसी थी कि टीचर को मुझ पर विश्वास करना ही पड़ा कि 'यह काम इसने नहीं किया...' सिर्फ नौवीं कक्षा में भी मेरे पास माया करने की ऐसी बुद्धि थी, लेकिन उसमें मैंने क्या किया? किसी को परेशान करने में बुद्धि का उपयोग

करना, यह तो बड़ा दुरुपयोग है। उसी दिन स्कूल से घर जाते समय उस लड़की के पास जाकर मैंने कह दिया कि 'मेरी चुगली करने का कितना कड़वा फल मिल सकता है, यह तूने देख लिया। अब दूसरी बार ऐसी गलती नहीं करेगी...' उसे समझ आ गया कि 'ये दोनों काम इसी के हैं।' लेकिन अब वह इतनी डर गई थी कि उसने मेरे खिलाफ चुगली करना ही बंद कर दिया...ऐसी तो सैकड़ों मायाएँ मैंने स्कूल-कॉलेज में की हैं... मिच्छामी दुक्कड़।

(5) उस समय मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। मेरी स्कूल सुबह की थी। मम्मी रोज मुझे बड़ी मुश्किल से उठातीं, तैयार करके स्कूल भेजतीं। एक दिन मुझे स्कूल जाने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी। तो मैंने सुबह पैर दर्द होने का बहाना निकाला, बिस्तर पर पड़े-पड़े पैर पटकता रहा, कहता रहा कि 'मुझे बहुत पैर दर्द है।' मम्मी ने मेरी माया पकड़ी या नहीं, यह तो मुझे नहीं पता, लेकिन उन्होंने स्कूल जाने का ज़ोर छोड़ दिया, और मुझे लगा कि 'अब तो स्कूल जाने का समय निकल गया है।' तब मैंने नाटक बंद कर दिया और अपने काम में लग गया। मम्मी ने ताने में पूछा, 'अब दर्द नहीं हो रहा?' ताना समझ में आ गया, मैंने जवाब दिया, 'हाँ, अब नहीं हो रहा।'

(6) कॉलेज में लड़कियों पर इम्प्रेसन पड़े कि 'मैं अमीर हूँ', इसके लिए मैंने महंगे कपड़े, परफ्यूम इस्तेमाल किए। पापा के पास पैसे थे, लेकिन मेरा दिखावा उनकी संपत्ति से दोगुना-चार गुना था। मैं अमीर नहीं था, फिर भी सबके सामने खुद को अमीर दिखाया, यह भी एक तरह की माया ही तो थी!

(7) मेरे दोस्त की बाइक को 'मेरी है' ऐसा दिखावा करके मैंने अपनी G.F. को खुश कर दिया। मेरा दोस्त अच्छा था, कॉलेज के लिए उसने मुझे अपनी बाइक इस्तेमाल करने दी थी... महंगी बाइक के कारण G.F. मुझ पर मोहित हो गई... एक बार मैं उसे घुमाने ले गया था, वहीं दोस्त का कॉल आया कि 'अर्जेंट बाइक चाहिए, तू जल्दी आ जा...' मैं उलझ गया। हमारा प्लान घूमना + मूवी + होटल का था। मैंने कोई बहाना बनाकर

प्लान कैंसिल किया, उसे शक तो हुआ, लेकिन उसने कुछ नहीं कहा, उसे उसके घर उतारकर दोस्त को बाइक दे दी।

लेकिन मेरी यह माया पकड़ में आ गई। अगले दिन किसी बहाने G.F. ने मेरा मोबाइल लिया और उसमें कल जिस समय दोस्त का कॉल आया था, उस समय के आधार पर नंबर निकाल लिया, और फिर मेरी गैरहाज़िरी में दोस्त से सब पूछ लिया। उसे कुछ पता नहीं था, वह तो उदारता से मुझे बाइक देता था... उसने सब बता दिया। G.F. को बहुत गुस्सा आया। उसने मुझसे कहा, 'बाइक तेरी न होती, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं थी... लेकिन सिर्फ मुझे खुश करने के लिए तूने मेरे साथ चीटिंग की, इस बात का मुझे बहुत गुस्सा है।' बस, उसके बाद हमारे बीच ब्रेक-अप हो गया।

(8) कॉलेज के तीसरे वर्ष में एक लड़की मुझे बहुत पसंद आ गई थी, लेकिन वह बहुत संस्कारी थी, किसी लड़के से जल्दी बात नहीं करती, कपड़े भी मर्यादित पहनती... उसे देखते ही समझ आ जाता था कि वह खानदानी परिवार से है और उसकी रग-रग में खानदानीपन है... मुझे अंदाज़ा हो गया कि 'उसे इसी तरह का लड़का पसंद आएगा, दूसरा नहीं...' मैंने केवल उसे आकर्षित करने के लिए कॉलेज में अपनी पूरी लाइफ बदल दी।

मैंने किसी भी लड़की से एक्स्ट्रा बातें करना बंद कर दिया, सिर्फ ज़रूरत भर की बातें करता, और वह भी इस तरह कि उसके ध्यान में आए। 'मुझे पढ़ाई में ही रुचि है, मैं कॉलेज में मस्ती करने नहीं आया।' ऐसा दिखावा मैंने खड़ा कर दिया। उसकी नज़र मुझ पर जाए, इस तरह बैठता और पढ़ता रहता... (ग्राउंड में, लाइब्रेरी में, कैंटीन में, कभी बस-स्टैंड पर...) कॉलेज के हँसी-मज़ाक, शरारत करने वाले किसी भी लड़के से मैंने संपर्क नहीं रखा... उसने यह सब नोटिस किया, स्वाभाविक रूप से उसे अच्छा लगा... एक बार मैंने कोई बहाना बनाकर उससे बात की... 'आपके संस्कार बहुत अच्छे हैं, आप सिर्फ पढ़ाई पर ध्यान देती हैं। आज के लड़के-लड़कियों को देखकर मुझे दुख

होता है। आपके जैसे तो मैंने पहली बार देखे हैं। आज के ज़माने में आप एक अजूबा हैं... 'किस लड़की को अपनी तारीफ़ अच्छी नहीं लगती? उसे भी लगी, और सबको लगती है। वह खुश हो गई। बस! उसके बाद हमारा परिचय बढ़ता ही गया। मैं जैसा नहीं था, वैसा बाहर दिखाया था, और वही माया थी। मुझे पढ़ने में रुचि नहीं थी, लेकिन मैंने दिखाई। मुझे लड़कियों से बात करने, हँसी-मज़ाक का शौक था... लेकिन मैंने ऐसा न होने का दिखावा किया... मेरा फ्रेंड-सर्कल शरारती लड़कों का ही था, लेकिन मैंने ऐसा कोई सर्कल न होने का दिखावा किया... हालाँकि पहले यह सब माया थी, इसलिए वह लड़की पकड़ नहीं पाई, लेकिन दबा हुआ स्प्रिंग वजन हटते ही बाहर उछलता ही है। धीरे-धीरे मेरा असली स्वभाव बाहर आने लगा, उसे धीरे-धीरे समझ में आ गया कि 'इसे पढ़ाई में रुचि नहीं है...' आदि। और एक झटके में उसने मुझसे संपर्क तोड़ दिया। उसका आखिरी जवाब था कि 'मेरे साथ धोखा करने वाले को मैं तो माफ़ कर दूँगी, लेकिन हमेशा मेरा साथ देने वाली प्रकृति कभी माफ़ नहीं करेगी।'

(9) स्कूल में जो होमवर्क मिलता, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। घर पर मेरा मन खेल-कूद, मोबाइल में ही रहता। मैं मीठी-मीठी बातें करके अपनी बहन को खुश कर देता, उसे मुझसे बहुत लगाव था... तो वह मेरा लेसन कर देती... कभी मम्मी से करवाता। हमारे घर की कामवाली का बेटा मेरे ही स्टैंडर्ड का था, पढ़ाई में होशियार और मेहनती था। मैंने कामवाली को तय पैसे दिए, बदले में उसका बेटा मेरा लेसन कर देता। टीचर के सामने तो यही बताया जाता कि 'यह लेसन मैंने किया है...' टीचर मेरे अक्षरों के फर्क पर ध्यान नहीं दे पाए, बहुत सारे बच्चे होने से उनका ध्यान उतना नहीं रहता था।

(10) पाठशाला में जब सर मेरी ओर देख रहे होते, तब मैं ठीक से रटता, तिरछी नज़र से उनकी ओर देख लेता, मुझे रटता देखकर वे खुश होते, इसके लिए यह माया करता। उनकी नज़र कहीं और होती, तो पढ़ाई में प्रमाद कर बैठता... वे जब मौजूद न होते, तब तो बातें-चीत में समय बिता देता... यह सब माया ही थी। उनके सामने अच्छा दिखना

और उनकी गैरहाज़िरी में प्रमाद-धमाल करना... बहुत मि. दुक्कड़। बचपन से ही ऐसे संस्कार घुस गए, तो आगे-आगे वे संस्कार कितने गहरे होते जाएँगे... लेकिन उस समय मुझे समझाने वाला कोई नहीं था कि 'गाथाएँ तो तू हज़ार रट लेगा, लेकिन अपने मन का निर्माण कैसे करेगा? तू वास्तव में जैसा है, वैसा ही लोगों के सामने प्रकट हो... या फिर जैसा प्रकट होना चाहता है, वैसा वास्तव में बन जा...' लेकिन नहीं! मुझे अपने दोष छोड़ने नहीं थे, और मुझे गुणवान दिखना था... इन दोनों का कॉम्बिनेशन कैसे हो? मैंने वर्षों तक अपनी माया के संस्कार ही और गहरे किए।

(11) देरासर में भी मैंने ऐसे कई नाटक किए हैं। जिन देरासरों में कोई नहीं होता, वहाँ तो झटपट पूजा करके निकल जाता, चैत्यवंदन भी फास्ट! स्तवन बहुत छोटा, वह भी बिना राग के! कभी तो सिर्फ उवसगगहरं ही बोलता... लेकिन बड़े दिनों में जब देरासर में बहुत लोग होते, तब भाव से पूजा का दिखावा करता... धीरे-धीरे पूजा करता, प्रभु को दोनों हाथों से स्पर्श करता... दोनों हाथों की एक्विंग करके भावविभोर बनता... मेरे पीछे खड़े लोग मुझे इस तरह देखकर मेरे बारे में कितना सम्मान करते होंगे कि 'यह कितनी सुंदर भक्ति करता है?' लेकिन यह सब केवल माया थी! प्रभु के प्रति सद्भाव था, लेकिन मात्रा कम, और दिखावे-माया की मात्रा बहुत अधिक!

उन दिनों साथिया + नैवेद्य + फल भी बड़े! और चैत्यवंदन पूरी विधि से करता... और स्तुति-स्तवन ज़ोर से और अच्छे राग में बोलता। मन में साफ भाव था कि 'मेरा राग मीठा है, स्तवन अद्भुत है, लोग सुनकर खुश होंगे...' और उसमें पूजा करने वाले कुछ लोग पीछे से मेरी ओर देखते, दर्शन करने वाली लड़कियों-स्त्रियों की नज़र मेरी ओर जाती... तो मुझे समझ आ जाता कि 'मेरा गान सबको आकर्षित कर रहा है।' म.सा.! प्रभु की द्रव्य और भाव-दोनों प्रकार की उत्कृष्ट भक्ति मैंने की, लेकिन माया के द्वारा उस भक्ति को मैला कर दिया... भीतर भक्ति नहीं थी, बहुत कम थी, और बाहर दिखावा बहुत ज्यादा था।

(12) परीक्षा में भी जबरदस्त माया की। शर्ट के कॉलर में, गुप्तांग के पास चिट्स छुपाकर ले गया, और सर-टीचर की नज़र बचाकर नकल की। टीचर का मुँह ज़रा दूसरी ओर मुड़ते ही चिट निकाल लेता... टीचर चलते-चलते ज़रा आगे बढ़ते तो उनकी पीठ मेरी ओर होती, उस पल का फायदा उठाकर चिट निकालकर लिख लेता... उस चिट को सप्लीमेंट्री में छुपा देता... दोस्तों को इशारों से जवाब देना-लेना... इशारे टीचर न देख लें, इसका ध्यान रखना... आलस मरोड़ने के बहाने दोनों हाथ उठाकर उँगलियों से 2-3-4 दिखाकर जवाब बताना-ऐसा बहुत किया। और इन मायाओं में सफल होने का अहंकार भी बहुत किया। एक तो कोई मुझे पकड़ नहीं पाया, उसका अहंकार, और दूसरा मैंने नई-नई मायाएँ खोजीं-ऐसी मायाएँ जिनकी कोई कल्पना भी न कर सके... इसके लिए मेरी बुद्धि का अहंकार!

आज स्पष्ट समझ में आता है कि अगर पढ़ाई की सख्त मेहनत की होती, तो ये मायाएँ करनी ही न पड़तीं। यह तो मैंने अपनी बुद्धि और शक्ति-दोनों का दुरुपयोग किया। आने वाले भवों में मैं मंदबुद्धि बनूँ, यह कोई बड़ी बात नहीं होगी। मेरे पास शक्ति ही न रहे-यह भी कोई आश्चर्य नहीं होगा... बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कंड।

(13) मोबाइल में वेब-सीरीज़ आदि बहुत गंदा-गंदा देखता था, लेकिन मम्मी-पापा को पता न चले, इसलिए कमरा बंद करके देखता। कभी वॉशरूम में जाकर मोबाइल में गंदा देखा। सर्दियों में कभी सबके साथ सोना पड़ता, तो ठंड का बहाना बनाकर रज़ाई-कंबल ओढ़कर अंदर वही गंदा देखता... और यह सब तुरंत डिलीट भी कर देता। मैंने ऐसा कुछ देखा है, इसका एक भी प्रूफ न रहने देता। ऐसी ढेर सारी मायाएँ कीं।

(१४) लड़कियों के साथ मेरे बहुत-से संबंध हुए। उनके साथ मैंने बहुत ही गलत चैटिंग की, उन्हें गंदे वीडियो भेजे, और उनके भी मुझे आए... यह सब अधिकतर तो मैं तुरंत डिलीट कर देता था। क्योंकि मम्मी-पापा देख लेंगे तो-इसका बहुत डर रहता था।

लेकिन कुछ चैटिंग और वीडियो मुझे बार-बार पढ़ना-देखना अच्छा लगता था, इसलिए उन्हें मैंने डिलीट नहीं किया।

लेकिन मैंने सब कुछ लॉक करके रखा था, इसलिए मम्मी-पापा मेरा फोन लें, चेक करें... तब भी उन्हें कुछ भी न मिले... इस तरह भयानक मायाएँ करके मैंने उन्हें धोखा दिया। लेकिन एक बार मेरे पाप का घड़ा फूट गया। मम्मी ने किसी भी तरह अनलॉक करके मेरी वे सारी गंदी बातें देख लीं, जान लीं। उनमें एक लड़की तो मेरे सगे काका की बेटी, मेरी बहन थी। मम्मी ने पापा को सब कुछ दिखाया, और पापा ने मुझे बहुत मारा। अंत में मम्मी बीच में पड़ीं और मुझे बचाया...मुझे ऐसा सब कुछ न करने के लिए समझाया। उस समय तो पापा के डर से मैंने बात मान ली, लेकिन मेरे संस्कार इतने गहरे थे कि वह पाप मैं छोड़ ही नहीं सका। अलग-अलग तरीकों से मायाएँ करके मैंने अपने पाप जारी ही रखे।

(१५) मैंने बहुत गंदे फोटो वाली मैगज़ीनें, किताबें छुपाकर रखी थीं... और जब-जब एकांत मिलता, तब उन्हें देखता था। परिवार को पता न चले, इसके लिए बहुत सख्त सावधानी रखता था।

(१६) घर पर यह कहकर कि कोई नॉर्मल मूवी देखने जा रहा हूँ, दोस्तों के साथ निकलता था, और एडल्ट मूवी देखने चला जाता था। ऐसा कई बार हुआ।

कुदरत से एक बार ऐसा बना कि मूवी देखने के बाद हम बाहर निकल रहे थे, वहीं मुझे मेरे पेरेंट्स मिल गए। उस समय पहले तो मैं बहुत डर गया। पापा ने मुझे डांटा भी कि “तू झूठ बोलता है।”

लेकिन फिर मैंने उल्टा जवाब दे दिया, “आप भी तो ऐसी मूवी देखने आए हैं न! तो अब मैं भी जवान हो गया हूँ।” उस समय पापा या मम्मी ने कुछ नहीं कहा।

म.सा.! उनकी भी गलती तो थी ही, इसमें कोई सवाल नहीं है। लेकिन मुझे अभी उनकी गलतियाँ नहीं देखनी हैं। मैंने माया की-यह मेरी गलती है!

पेरेंट्स किसी के अंडर में नहीं थे। उन्हें किसी से पूछकर कुछ करने की ज़रूरत नहीं थी। और वे विवाहित थे, वे यह देखें-यह उनके लिए उतना बड़ा पाप नहीं है, जितना मेरे लिए बड़ा पाप माना जाएगा।

मैं कुंवारा था, और माँ-बाप के अंडर में था... उन्हें झूठ बोलकर इस तरह की सारी मायाएँ करने का दोष मुझे तो 100% ज़्यादा ही लगेगा। अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(१७) मैंने 12 साल की उम्र में संवत्सरी के दिन उपवास किया था। मम्मी ने मना किया था, लेकिन सब कर रहे थे, इसलिए मैंने भी ज़िद करके उपवास कर लिया।

लेकिन दोपहर के बाद तो बहुत ज़ोर की भूख लगने लगी। पानी भी अच्छा नहीं लग रहा था... प्रतिक्रमण के बाद भूख और प्यास के कारण बहुत परेशान हो गया। यह जीवन का पहला उपवास था, सहन करने की शक्ति नहीं थी।

मम्मी ने गीले पानी के पट्टे रखे, मुझे बहुत आश्वासन दिया... मैं सो तो गया। लेकिन मेरी नींद ज़्यादा देर नहीं चली। रात को करीब बारह बजे उठ गया। तब सब सोए हुए थे, मुझसे रहा नहीं गया...

और बिना बिल्कुल आवाज़ किए मैं रसोई में गया। मुझे बहुत डर भी लग रहा था कि कोई जाग न जाए। मैंने लाइट भी नहीं जलाई... मैंने सुखड़ी का डब्बा खोला और दो-तीन टुकड़े सुखड़ी खा ली। प्रभावना में आए पेड़े का पैकेट खोलकर दो पेड़े खाए। केले की वेफर खाई। बीच-बीच में ज़रा-सी भी आहत होती, तो मैं डर जाता... रुक जाता... फिर से खाने लगता... आखिर में पानी पिया। डिब्बा और पैकेट उनकी जगह पर ठीक से रख दिए, और धीमे कदमों से वापस बिस्तर पर जाकर सो गया। शांति से नींद आ गई।

दूसरे दिन मम्मी रसोई में गई, तो उन्होंने देखा कि सुखड़ी के कण नीचे बिखरे हुए थे... मम्मी को थोड़ा शक हुआ, उसी में उनकी नज़र पेड़े के पैकेट पर पड़ी, उसे खुला हुआ देखा... गिलास मैंने बिना पोंछे रखा था, वह भी मम्मी की नज़र में आ गया। वे उस समय कुछ नहीं बोलीं। उस रात उन्होंने मुझसे प्यार से पूछा, मैंने सारी बात सच-सच बता दी... तब तो मम्मी के साथ जाकर मैंने प्रायश्चित्त ले लिया... पर इतने वर्षों बाद वह पाप याद आया, उसमें की गई माया याद आई, इसलिए विस्तार से और सच्चे मन से मैं प्रायश्चित्त स्वीकार करना चाहता हूँ। इस पाप के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(१८) हमारी पाठशाला में ३०० विद्यार्थी पढ़ते थे, और १० सर थे। मैं एक सर के पास नवकार से वंदित्तु तक सीखा। फिर मैंने सर बदल लिए... वहाँ भी नवकार से वंदित्तु सीखा... इस तरह करीब तीन बार किया। सर को लगता कि 'यह नया है।' पर मैं तो वह सीख ही चुका था। इसलिए दूसरे-तीसरे सर ज़्यादा खुश हुए। 'तुम तो बहुत तेज़ी से रटते हो।' पर मैंने तब जान-बूझकर खुलासा नहीं किया कि 'मैं तो दूसरी-तीसरी बार सीख रहा हूँ।' ऐसा बोलता, तो मुझे यश न मिलता... इसलिए मैं चुप ही रहा। यह स्पष्ट रूप से माया ही थी। मुझे पता ही है कि यह प्रशंसा गलत चीज़ की हो रही है, तो मुझे कहना चाहिए... पर मैंने वह नहीं कहा। इसमें ज़्यादा रटने के आलस-ऊब के कारण तीन सर बदलकर पुराने को ही नया कह-कहकर रटा, यह माया की... और प्रशंसा के समय चुप रहा, सच्ची बात नहीं कही... वह भी माया थी... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

(१९) मुझे नवरात्रि में खेलने का बहुत शौक था। पर हमारे इलाके में जाता, तो कोई-न-कोई परिचित मिल जाता, तो घर पर बात पहुँचती। घर में इस बात की साफ मनाही थी, और दूसरा यह भी कि मेरी छवि एक धार्मिक व्यक्ति की थी। रोज़ प्रतिक्रमण करना, पाठशाला जाना, पूजा करना... यह सब मेरे जीवन में था। इसलिए अगर सबको पता चलता, तो मेरी बहुत बदनामी होती। तो मैं दूर के इलाके में, एकदम अनजान लोगों के बीच नवरात्रि खेलने गया। वहाँ खूब मौज-मस्ती की... पर वहाँ वीडियो बनाया

गया था, जो वायरल हो गया। वह मेरे एक दोस्त ने देख लिया, उसमें उसने मुझे खेलते हुए देखा। पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ, तो दो-तीन बार देखा... और फिर उसे पक्का यकीन हो गया। उसने वह वीडियो मेरे सभी दोस्तों को दिखाया, मेरे मम्मी-पापा को भेजा, स्क्रीनशॉट लेकर साफ़-साफ़ दिखाया। मैं पकड़ा गया... मैंने भले ही कोई दूसरा बुरा काम नहीं किया, पर मेरी धार्मिकता की छवि पर कलंक लग गया, लोगों ने मेरी निंदा-मज़ाक-खिल्ली उड़ाई... इस सबमें मैंने जो कुछ भी माया आदि पाप किए, उसके लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(२०) मेरी मम्मी ७५ वर्ष की उम्र में घर में ही गुज़र गई, मुझे पता तो चल गया, पर अगर तुरंत किसी को भी कहता, तो फिर सबकी आवाजाही शुरू हो जाती। फिर घंटों तक भोजन मिले कि नहीं? यह एक प्रश्न था। इसलिए मैंने पत्नी, बेटे-बेटी को इकट्ठा करके चुप रहने को कहा। बाज़ार से जलेबी-फाफड़ा-चटनी वगैरह ले आकर पहले भरपेट नाश्ता कर लिया, एक कमरे में मेरी मम्मी की लाश पड़ी थी, और दूसरी तरफ हॉल में हम सबने मिठाई-फरसाण खाए। यह सब खत्म होने के बाद मैंने सबको फोन करके बताया कि 'मम्मी गुज़र गई हैं।'

म.सा.! ऐसी नीच हरकत मैंने की है। लोगों के सामने अच्छा दिखना है। पर वास्तव में अच्छा बनना नहीं है। एकाध घंटे में तो करीबी रिश्तेदार आ गए, और पत्नी ने रोना शुरू कर दिया। मैंने भी ज़बरदस्त शोक दिखाया। आने वालों को यही लगे कि मुझे और पत्नी को मम्मी की मौत का कितना दुःख है। रविवार को शोकसभा रखी, उसमें मैंने और पत्नी ने शोक प्रकट किया। 'मम्मी के बिना तो अब खाना भी अच्छा नहीं लगता। हम उन्हें खिलाकर ही खाते थे...' आखिर में मेरी बेटी खड़ी हुई। माइक हाथ में लेकर वह बोलने लगी... 'क्षमा कीजिएगा, आज अभी मैं जो बोलने वाली हूँ, वह किसी को पसंद नहीं आने वाला। पर आज आप सबको सुनना ही पड़ेगा। मैं सबसे पहले तो यह बात करती हूँ कि मेरे मम्मी-पापा भयंकर माया-कपट कर रहे हैं। (इतना सुनते ही मैं तनाव में आ गया, पर मेरी बेटी Strong थी। और उसे रोकने की ताकत उस समय

मुझमें बिलकुल नहीं थी...) जब दादी गुज़र गई, तब हम चारों ने सबसे पहले बाज़ार से जलेबी-गांठिया लाकर खाए हैं। और उसका वीडियो भी मेरे पास है। मैं हमारे समाज के ग्रुप में आज ही वायरल करने वाली हूँ। मैंने भी जलेबी-फाफड़ा खाए हैं। पर मैं माया करना नहीं चाहती। मुझे दादी से प्यार था, पर वे गुज़र गई, इसलिए मुझे खाना भी अच्छा न लगे, ऐसा प्यार नहीं था। मम्मी-पापा ने भले ही मज़े किए, वह तो गलत ही था। पर मुझे सबसे ज़्यादा दुःख तो उसके बाद हुआ कि जब लोग आए, उससे पहले मुझे कोई शोक दिखाई नहीं दिया था, लोगों के आने के बाद शोक फूट पड़ा। यह कैसी भयानक माया है! मुझसे यह सहा नहीं गया... फिर भी तब मैं चुप रही... पर अभी मम्मी-पापा जो बोले कि दादी के बिना खाना भी अच्छा नहीं लगता... तब मुझे गहरा आघात लगा, दादी की लाश घर पर ही पड़ी है, और जलेबी-फाफड़ा आँखों में एक बूंद आँसू के बिना खाए हैं, और बातें ऐसी करते हैं। यह कोरी माया है। (सभा में बैठे १००० लोग स्तब्ध होकर सुन रहे थे। हमारी स्थिति एकदम दयनीय हो गई। पर म.सा.! सच कह रहा हूँ कि मुझे उस समय अंदर से पश्चाताप होने लगा था। मेरी लाडली बेटी के सच्चे, आँसू भरे शब्द मेरी आत्मा को झकझोर रहे थे।)

बेटी उस दिन दुर्गामाता बनकर बोल रही थी। मेरी तो इस समाज से भी विनती है कि मेहरबानी करके दिखावा मत कीजिए। आपमें शोक-खेद हो, तो ही प्रकट करें। नहीं तो झूठा शोक जताकर माया न करें। इस बात को स्वीकार करें कि व्यवहार के लिए आए हैं, भीतर में शोक की ऐसी कोई भावना नहीं है। हमने इसी शोकसभा में एक-दूसरे से मिलकर धंधे की बातें भी की हैं, नई शादियाँ तय करने और बिज़नेस की बातें भी की हैं। एक-दूसरे को घर आने का निमंत्रण भी दिया है। छुट्टियों में बाहर घूमने जाने की योजनाएँ भी बनाई हैं। कार्यक्रम में हमारी रुचि कम ही रही है। औपचारिकता के लिए शोकसभा के कार्यक्रम में बैठे हैं। चेहरा उदास रखना पड़ता है, इसलिए रखकर बैठे हैं, पर मन में शोक की उतनी भावना नहीं है... कार्यक्रम के बाद के भोज में हमारी रुचि है। वहाँ मस्ती से भोजन करने वाले हैं... समाज अगर नहीं सुधरेगा, तो इस नाटकबाज़ी का

कभी अंत नहीं होगा। ऐसे नाटक करना बंद कीजिए, और अगर नाटकबाज़ी बंद नहीं कर सकते, तो कम-से-कम नाटक को नाटक के रूप में स्वीकार करना सीखिए...

Sorry..!’

दो मिनट तक कोई कुछ नहीं बोला... फिर हमारे समाज के एक अग्रणी व्यक्ति आगे आए। माइक हाथ में लेकर मेरी २० साल की बेटी को अपने पास खड़ा करके, उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोले। ‘आज इस छोटी-सी बेटी ने हमारे समाज की आँखें खोल दी हैं। हमारी मायावी दुनिया को उजागर कर दिया है। हम सबका चेहरा दुर्जन का है। शैतान का है... और हमने उस पर सज्जन का, महान का मुखौटा आज तक पहन रखा था... वह चेहरा इस बेटी ने हटा दिया है।’

म.सा.! उस समय उस अग्रणी व्यक्ति ने वहीं के वहीं कई महत्त्वपूर्ण निर्णय घोषित किए, पूरे समाज ने ताली बजाकर उन निर्णयों का स्वागत किया। वे निर्णय तो अभी नहीं लिख रहा हूँ, पर घर जाने के बाद मैं अपनी बेटी से लिपट गया, उसकी बहुत प्रशंसा की... वह तो मुझसे माफ़ी माँग रही थी... पर मैंने उससे स्पष्ट कहा कि ‘बुजुर्ग ही रास्ता दिखाते हैं,’ इस कहावत को बदलकर अब ‘संतानें रास्ता दिखाती हैं’ ऐसी कहावत बनानी पड़ेगी।’

मेरे इस माया के सभी पापों के लिए बहुत-बहुत मिछामी दुक्कड़।

(२१) म.सा.! पूरी ज़िंदगी में कम-से-कम पचास-एक शोकसभाओं में तो गया ही हूँ। और अब याद आता है कि इन सबमें कोरी माया ही की है। किसी के लिए बोला हूँ कि ‘चलो, मरा और जगह खाली कर दी। उसके परिवार को सहूलियत होगी...’ किसी के लिए बोला हूँ कि ‘वह तो मरने के ही लायक था।’ किसी के लिए बोला हूँ ‘पूरी ज़िंदगी उन्होंने कुछ उखाड़ा नहीं... बेकार जीकर क्या काम था? प्रभु ने अच्छा किया...’ और बाहर से उस मृत व्यक्ति के लिए शोक प्रकट किया, उनकी प्रशंसा की। ‘इनकी कमी कभी पूरी नहीं होगी...’ ऐसी बड़ी-बड़ी बातें कीं, बोलते-बोलते मानो रोने के कारण मेरा

गला रूँध गया हो, ऐसा दिखावा करके लोगों को यह दिखाने का प्रयास किया कि 'उनकी मृत्यु के कारण मुझे रोना आ रहा है।' ऐसी-ऐसी भयंकर मायाएँ कीं। म.सा.। ऐसा स्पष्ट लगता है कि आज का समाज ज़्यादातर माया नाम का काला कपड़ा पहनकर अपने मलिन विचारों, उच्चारों, आचारों रूपी जले हुए वीभत्स चेहरे को छुपाता है... उसमें मेरा नंबर तो है, है और है ही। छोटी-छोटी माया तो इतनी तेज़ी से हो जाती है कि वह माया हो रही है, यह भी पता नहीं चलता, उस माया को रोकने का मौका ही नहीं मिलता। आज दिन तक मैंने न्यूनतम हज़ारों मायाएँ की हैं। मिच्छामी दुक्कडं।

(२२) बहुत-सी जगहों पर मैंने अपने गुण लोगों के सामने प्रकट करने के लिए माया की है। मैं सीधे-सीधे अपने गुण बोलूँ, तो मैं बुरा दिखूँ। लोग मुझे अहंकारी मानें... इसलिए मैंने किसी बहाने से अपनी प्रशंसा की, या तो दूसरों के द्वारा अपनी प्रशंसा करवाई। या तो कोई मेरी प्रशंसा कर रहा था, तो 'मुझे यह पसंद नहीं है...' आदि दिखाने के रूप में मैंने माया की, जबकि हकीकत में तो मुझे वह पसंद ही थी... ऐसे प्रसंग इतने ज़्यादा हुए हैं कि उन सबका वर्णन करूँ, तो १०० पेज हो जाएँगे। फिर भी जितना याद आएगा, उतना स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा... मैंने साधु भ. से कहा, 'साहबजी! इस चौमासे में मुझे कौन-सा तप करना चाहिए?' उन्होंने पूछा 'क्यों? आपसे जो संभव हो, वह करें... अठाई, सिद्धितप आदि तप तो बहुत हैं...' तब मैंने कहा कि 'साहबजी! अठाई, सिद्धितप, मासखमण, श्रेणी तप, चत्तारि अठु... वे सब तप हो गए हैं...' वे बोले 'क्या बात कर रहे हैं? आप तो घोर तपस्वी हैं... तो वर्धमानतप की ओली की नींव डाल दीजिए।' मैंने कहा 'म.सा.। वह नींव भी डाल दी है, लगातार २७ ओली की, और फिर २८ से ३६ ओली लगातार की, अभी-अभी पारणा किया है...' इस सबमें 'कौन-सा तप करना है?' इसका मार्गदर्शन लेने का आशय कम था, पर उस बहाने मैंने अपनी तपस्या की सूची बता दी... और जब उन्होंने मेरी अनुमोदना की, तब कहा 'सब देवगुरु की कृपा है। उसके बिना यह सब कैसे होता?...' पर फिर उन म.सा. ने मेरी अच्छी-खासी खबर ले

ली... मुझसे पूछा, 'पूरी ज़िंदगी रात्रिभोजनत्याग है?... मैं उलझन में पड़ गया 'लगभग नहीं खाता। पर बाहरगाँव में छूट है, और परिवार के हिसाब से रविवार और छुट्टी के दिनों में छूट है...' उन्होंने फिर पूछा 'तो होटल का भोजन तो बंद ही होगा ना।' मेरे मुँह से निकल गया 'बाहरगाँव तो होटल में ही खाना पड़ता है... और यहाँ भी परिवार के साथ होटल जाना होता है।' इसके बाद म.सा. ने कहा 'आप धर्म नहीं करते, दिखावा करते हैं। आप आइसक्रीम भी खाते होंगे, कोल्डड्रिक्स भी पीते ही होंगे, शादियों के रिसेप्शन में टूट पड़ते होंगे... भाई! तप तो अनासक्ति के लिए है। और तप के अलावा के समय में वह अनासक्ति आपके पास तो है ही नहीं। दुनिया भले ही आपके तप से प्रभावित हो, पर मैं आपकी आत्मा के हित के लिए आपसे सच्ची बात कहूँगा ही... अगर आप पर सच्ची देवगुरु कृपा होती न, तो भले ही आपने सिर्फ नवकारशी ही की होती, उससे बड़ा पचक्खाण आज तक न किया होता, तो भी यह रात्रिभोजन, होटल, आइसक्रीम, कोल्डड्रिक्स... ये सब दुर्गुण आपके जीवन में न होते... इसलिए ऐसी कृपा मत मानिएगा, भ्रम में मत रहिएगा...' उस समय तो मुझे उनके शब्द बहुत कड़वे लगे... पर उसके बाद प्रवचनों और पुस्तकों के माध्यम से मेरे जीवन में सच्चा परिवर्तन आया, और मुझे अपनी माया पकड़ में आ गई... सच्चे मन से अपनी इस माया-मलिनता के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(२३) उस समय मेरी उम्र २० के आसपास होगी, संघ में एक विद्वान साधु का चातुर्मास था। मेरे मन में अपने ज्ञान का दिखावा करने की इच्छा हुई... मैंने अपने मित्र से कहा, मैंने जो अध्ययन किया है, वह तुम बोलना, मैं बोलूँगा तो वह उचित नहीं लगेगा। मेरा अध्ययन उन्हें पता चलेगा, तभी वे मुझे ऊँची कोटि के पदार्थ दे सकेंगे। नहीं तो मुझे सामान्य समझकर वे भी सामान्य पदार्थ ही देंगे...' इस तरह पहले तो मित्र के साथ माया की, उसे भनक भी नहीं लगने दी कि मैं म.सा. के पास अपनी विद्वत्ता प्रकट करना चाहता हूँ।'

म.सा. के पास जाकर मैंने नम्रता दिखाई कि 'आप बहुत ज्ञानी हैं, तो आपके पास अध्ययन करने की भावना है।' उन्होंने पूछा 'आपका धार्मिक अध्ययन कितना है?' और मेरे निर्देश के अनुसार मेरे मित्र ने मेरा सारा अध्ययन बताया... 'म.सा.!! इसने पाँच प्रतिक्रमण तो अर्थ के साथ किए ही हैं। इसके अलावा प्रकरण-भाष्य-कर्मग्रंथ के अर्थ भी किए हैं। संस्कृत की दो किताबें पूरी होने वाली हैं। १२५, १५०, ३५० गाथा का स्तवन, आनंदघनजी की चौवीसी... यह सब इसे कंठस्थ है। ज्ञानसार... आदि भी किया हुआ है। कुल ३५०० गाथाएँ कंठस्थ हैं।'

मैं मन-ही-मन बहुत खुश हो रहा था, पर फिर भी मित्र का मुँह बंद करने का प्रयास किया, 'बस, बस! अब...' यह भी कोरी माया ही थी। म.सा. मेरी ओर अहोभाव की दृष्टि से देखने लगे... और मैंने 'देवगुरु कृपा' शब्द का उपयोग करके अपनी नम्रता का दिखावा किया।

(२४) कई बार ऐसा हुआ कि रिसेप्शन आदि में मेरी तो रात में खाने और अभक्ष्य खाने की पूरी तैयारी थी। परंतु वहाँ कई लोग ऐसे थे जो मुझे धार्मिक मानते थे। तो उनमें से कोई बोल पड़ा कि 'आप तो रात में नहीं खाते होंगे... है न?' अब सबके सामने मैं क्या बोलूँ? 'मैं तो रात में खाता हूँ, मेरी कोई बाधा नहीं है।' ऐसा बोलूँ तो मेरी इज़्ज़त कम हो जाए। इसलिए बीच का रास्ता निकाला कि 'लगभग तो नहीं खाता, पर कई बार बहुत भूख लगे तो खा लेता हूँ। कभी-कभी दवा लेनी हो, तो उसके साथ भोजन लेना पड़ता है।' ऐसा कहकर कभी वहाँ रात में खाया, कभी शर्म के कारण छोड़ दिया। उसी तरह कभी आइसक्रीम आदि खाए, कभी छोड़ दिए।

(२५) मुझे बंगाली मिठाई बहुत पसंद है। इसलिए दावत में अगर बंगाली मिठाई हो, तो मेरी क्षमता तो २५-३० पीस खा लेने की है। पर इतने सारे लोगों के सामने शर्म आती। इसलिए मैं खुद तो ज़्यादा नहीं ले सकता था। सबके सामने दिखावा करता कि 'बस... मुझसे इतने पीस ही खाए जाते हैं।' पर फिर दोस्त आग्रह करता, मेज़बान आग्रह

करता, तो 'चलिए, आपका आग्रह है, तो उसे नहीं तोड़ूंगा...' ऐसा कह-कहकर और ज़्यादा पीस खा लेता। बड़े लोग सीमित मात्रा में ही खाते हैं, यह दिखावा करना था... पर खाना असीमित था, इसलिए ऐसी माया किए बिना दूसरा रास्ता ही क्या था?

साहबजी! मुझे अब समझ आता है कि मुझे अगर बड़े आदमी के रूप में दिखना ही है, तो मैं बड़ा आदमी ही क्यों नहीं बन जाता? पर वह तो बनना नहीं है। तुच्छता छोड़नी नहीं है, और अगर तुच्छता ही अपनानी है, तो बड़े आदमी के रूप में दिखने की वृत्ति ही क्यों रखता हूँ? जैसा हूँ, वैसा दिखने को क्यों तैयार नहीं हूँ? पर इसमें अभिमान आड़े आता है, और इसीलिए माया का सहारा लेता हूँ। इसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(२६) दुकान में ग्राहक खरीदारी करने के लिए उत्साहित हो, इसके लिए बहुत माया की। कोई भी ग्राहक आए, कि तुरंत चेहरे पर मुस्कान, 'आइए, आइए...' जैसे शब्द, आदर-सम्मान देना, सारा माल अच्छी तरह दिखाना, उसे जब तक पसंद न आए तब तक नया-नया माल दिखाना, बिलकुल मुँह न बनाना, बिलकुल गुस्सा न करना, मुस्कान ज़रा भी कम न होने देना... और इस तरह ग्राहक को खरीदारी करने के लिए मजबूर करना...

हालांकि बिज़नेस में यह सब आम बात है, पर यह बात तो स्पष्ट ही है कि वह माया ही है। क्योंकि मन में उस ग्राहक के लिए बिलकुल आदर-भाव नहीं है, प्रेम नहीं है... पर धन कमाने के लिए उसे खुश करने हेतु यह सारी बाहरी मायाजाल खड़ी करनी पड़ती है... और अगर लगे कि 'यह अच्छी खरीदारी करेगा,' तो चाय-कॉफ़ी-शरबत की भी विनती की है, आग्रह करके पिलाया है। और जिस ग्राहक के लिए यह खयाल आ गया कि 'इसमें कुछ दम नहीं है,' उस ग्राहक को बिलकुल भाव नहीं दिया। न मुस्कान, न 'आइए' शब्द...

यही दिखाता है कि वह सब माया ही थी। बेकार ग्राहकों के सामने मेरा असली रूप था। और अच्छे ग्राहकों के सामने सिर्फ माया से भरपूर रूप था। ऐसे दोहरे चरित्र का शिकार तो मैं कदम-कदम पर बना हूँ। बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(२७) सगाई तय करते समय जो मीटिंग हुई, उसमें मुझे वह लड़की पसंद आ गई थी। मुझे उसे किसी भी हालत में पाना था... इसलिए उसने जो-जो इच्छाएँ जताईं, उन सबमें मैंने हाँ कर दी। मेरे मन में यही भाव था कि 'अभी हाँ कर देनी है। शादी के बाद वह ठिकाने आ ही जाएगी...'

मैं वैसे तो धार्मिक था, और उस लड़की को भी धर्म पसंद था। इसीलिए वह मेरे साथ मीटिंग करने को तैयार हुई थी। मेरी मीठी बातों के जाल में वह फँस गई, और आखिर में मेरी शादी हो गई। शादी के बाद कुछ समय तक सब ठीक-ठाक चला। फिर उसके साथ जो-जो शर्तें की थीं, मैं उन्हें तोड़ता गया। मुझे वे शर्तें मंजूर ही नहीं थीं। सिर्फ उसे पाने के लिए हाँ-हाँ की थी। उसे धीरे-धीरे मेरी माया का अंदाज़ा हो गया, उसका दिल टूट गया, पर उसने शादी का रिश्ता नहीं तोड़ा... बस, उदास रहने लगी। मेरे साथ उसके रिश्ते में एकदम रूखापन आ गया। 'पति ने मुझे धोखा दिया है,' यह उसके लिए असहनीय बन गया था...

बात यह थी कि

• मुझे गाजर का हलवा, आलू की सब्ज़ी... यह सब बहुत पसंद था। उसने तो कल्पना भी नहीं की थी कि 'मैं यह सब खाता होऊँगा।' क्योंकि मेरी प्रसिद्धि एक धार्मिक व्यक्ति के रूप में थी। प्रभु पूजा आदि अनेक धर्म-कार्य तो मैं करता ही था। और सगाई से शादी के दौरान कभी कंदमूल नहीं खाया था, शादी के बाद भी कुछ दिनों-महीनों तक मैंने उसका त्याग ही रखा था। फिर मैंने मम्मी को कह दिया। मम्मी बनाने लगीं। रसोई में कंदमूल...

देखते ही वह तो चौंक गई। बहुत चर्चा हुई, मैंने कहा, 'मैंने कंदमूल के लिए तो मना किया ही नहीं था... और अगर तुम नहीं बनाओगी, तो मम्मी बना देंगी...' वह बेचारी क्या बोलती? मेरी छवि के अनुसार तो उसे कंदमूल की शर्त रखने का विचार भी नहीं आया था।

मैं उसे ज़बरदस्ती डांस-पार्टियों में ले गया।

मैंने उसे ब्लू फिल्म देखने पर विवश किया...

मैंने उसे अशोभनीय कपड़े पहनने पर भी विवश किया...

मैंने उसे होटल में अभक्ष्य खाने पर विवश किया...

हर बार संघर्ष होता था, अंत में वह मजबूर हो जाती... उसने बार-बार मुझसे कहा कि 'तुम धोखेबाज़ हो, तुमने मेरे साथ छल किया है। मैं डिवोर्स ले नहीं सकती, और तुम्हारी इस लाइफ को अपना भी नहीं सकती...'

महाराज साहेब! उसकी नीरसता के कारण धीरे-धीरे मेरी भी रुचि घट गई। मेरा मन दूसरी स्त्री की ओर आकर्षित हुआ। एक दूसरी विवाहित स्त्री के साथ मेरा संबंध शुरू हुआ, मोबाइल में उसका नंबर पुरुष के नाम से ही रखा था। उसका नाम राधिका था, पर मैंने उसका नाम रखा था 'विराध'! और उसे कह रखा था कि 'मेरे फोन से कॉल आए, तो तुम्हें पहले नहीं बोलना है। मेरी आवाज़ सुनने के बाद ही बोलना। कदाचित् बोल भी दो, तो किसी अनजान के सामने अपनी पहचान विराध की सेक्रेटरी के रूप में ही देना...' इस तरह माया करके मैंने उससे अपना परस्त्री-संबंध का पाप छिपाया। इस विषय में अलग-अलग अनेक मायाएँ कीं, बिजनेस के बहाने बाहरगाँव जाना और उस परस्त्री के साथ मौज-मस्ती करना... इत्यादि काफ़ी मायाएँ कीं। बस, अभी तो इतने ही माया-पाप याद आए हैं, सो आपको बताए हैं। बाकी जो ढेर सारे माया के पाप याद नहीं आए हैं, उन सभी के लिए भी अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं...

मायादोष (स्त्री की ओर से आलोचना)

मैंने सुना है कि माया के कारण आत्मा स्त्री बनती है। पूर्वभवों में बहुत सारी माया की होगी, उसी के कारण मुझे स्त्री-अवतार मिला है। स्त्रियाँ खराब नहीं होतीं, यह तो मुझे जैनधर्म के पदार्थों को जानने के बाद पता चल ही गया है। चंदनबालाजी आदि अतिपवित्र महासती साध्वीजी स्त्रियाँ ही थीं न, फिर भी जिनशासन में उनका कितना ज़बरदस्त महिमा है! पर स्त्रियों में शारीरिक शक्ति कम ही होती है... इत्यादि कई बातें ऐसी हैं जो प्राकृतिक रूप से उनके लिए भार-रूप हैं... मुझे इस भव में तो माया नहीं ही करनी है। नई मायाएँ करके नया स्त्री अवतार मुझे नहीं पाना है। मैं अपने छोटे-बड़े माया-पापों को याद करके उनकी आलोचना करने का कठोर पुरुषार्थ करूँगी।

(१) जब स्कूल में पढ़ती थी, तब मेरी कुछ सखियाँ पढ़ाई के मामले में मेरी प्रतिस्पर्धी थीं। वे मुझसे पढ़ाई में आगे न निकल जाएँ, इसके लिए मैंने मल्लिजिन जैसी माया की। मैं उनसे कहती थी कि 'यह सीरियल बहुत अच्छा आता है, मैं तो उसे देखती ही हूँ। पढ़ाई की बहुत मेहनत नहीं करती, वह तो अपने-आप हो जाएगी। मैं तो रात को १० बजे सो जाती हूँ, और सुबह ७ बजे से पहले तो उठती ही नहीं।'।

मेरा यह वर्णन ऐसा होता था कि 'सखियों का भी पढ़ाई में मेहनत करने का उत्साह कमजोर पड़ जाए।' इस तरह उनकी मेहनत कम करवाती और मैं तो कठोर परिश्रम करती ही थी, इसलिए सखियों से मेरा नंबर आगे ही आता था। मल्लिजिन ने तप में माया की, मैंने स्कूल में माया की। अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

(२) २७ वर्ष की आयु तक मेरी शादी नहीं हुई थी। मुझसे कोई भी पूछता कि 'तुम्हारी उम्र क्या हुई?' तो मैं सही उम्र नहीं बताती थी। क्योंकि तुरंत सवाल उठता कि 'अभी तक शादी नहीं हुई?' इसलिए मुझे जवाब देना भारी पड़ता था। इसलिए मैं तीन-चार वर्ष कम ही बताती कि 'मेरी उम्र २३-२४ है...' ताकि सामने से कोई और प्रश्न न आए। पर

यह भी तो माया ही थी न, कोई कुछ भी पूछे, मौन अथवा सत्य... मुझे इन दो ही बातों का पालन करना था। माया क्यों? झूठ क्यों?... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(३) अंतराय (= M.C.) के विषय में भी मैंने कई मायाएँ की हैं। विशेषकर जब बाहर घूमने गए, तब अंतराय में हुई। मम्मी सख्त थीं। M.C. का पालन ठीक से करवाती थीं। बाहरगाँव घूमना मेरा रह जाता, कमरे में पड़े रहना पड़ता, मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं आता था, इसलिए मैं यह बात बताती ही नहीं थी। घर आने के बाद अंतराय में बैठ जाती, हकीकत में उस समय तो M.C. के तीन दिन बीत भी चुके होते...

शादी के बाद जब हम कपल्स घूमने गए, तब भी ऐसी माया अनेक बार की... तब भले ही मम्मी नहीं थीं, पर कपल्स में कुछ स्त्रियाँ धार्मिक रूप से कट्टर थीं, तो उन्हें यदि पता चलता कि 'मैं अंतराय में हूँ' तो फिर मुक्त रूप से घूमना-फिरना भारी पड़ जाता। दूसरी बात यह कि मेरी एक धार्मिक महिला के रूप में छवि तो थी ही, इसलिए यदि मैं M.C. का पालन न करूँ, तो मेरी प्रतिष्ठा कम हो जाती... इसलिए उस समय भी मैंने अंतराय की बात छिपाई... इस माया के लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(४) ऊपर की गलतियाँ लगभग सात-आठ बार हुई होंगी। पर सबसे भयंकर भूल तो मैंने तब की जब हम पालिताणा-गिरनार की यात्रा के लिए गए। तब मेरी अपेक्षा से पाँच-सात दिन पहले ही अंतराय आ गया। हम ७-८ कपल्स यात्रा के लिए निकले थे। इस यात्रा में मेरा उत्साह बहुत अधिक था, मुझे दोनों तीर्थों की पहली बार यात्रा करनी थी। पूरी ज़िंदगी में पहली बार दो पवित्र तीर्थों में गई थी। मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं एकांत में जाकर रोने लगी, प्रभु को उलाहना दिया कि 'तुम ऐसा क्यों करते हो?...'

३५ वर्ष की आयु में पहली बार गई थी। यात्रा करने का अत्यधिक उल्लास था। हम दक्षिण भारत में रहते थे और घर की ज़िम्मेदारियाँ बहुत थीं, इसलिए बार-बार आना संभव ही नहीं था, और वहाँ रुक जाना भी संभव नहीं था। अंत में पालिताणा में तो मैंने

‘तबियत ठीक नहीं है, पेट-सिर दर्द कर रहा है’ जैसे बहाने बनाकर यात्रा नहीं की... और दूसरे दिन पहुँचे गिरनार!

वहाँ भी बहाना बनाकर यात्रा नहीं की... इस सब में यात्रा नहीं की, वह तो अच्छा ही किया। परंतु M.C. की सही बात नहीं बताई, वह माया की। और इसके कारण सबके साथ स्पर्श तो हुआ ही, और उन्हीं सबने यात्रा-पूजा की, इसलिए परोक्ष रूप से तो घोर आशातना भी हुई।

मेरी इस माया के लिए बहुत-बहुत मिच्छामि दुक्कडं।

(५) मेरी आयु अभी ५५ वर्ष है। पिछले दो वर्षों से मेरे हाथ पर कोढ़ के छोटे-छोटे धब्बे हो गए हैं। उनकी कोई पीड़ा तो नहीं है, परंतु कोई उन्हें देखे, यह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। उसकी दवा के पीछे लाखों रुपए खर्च किए, पर वे एक अंश मात्र भी ठीक नहीं हुए। महाराज साहेब! इसके कारण मैं पूजा करने में भी डरती हूँ, माया करती हूँ। प्रभु के मस्तक, कपाल पर तिलक करने के लिए यदि हाथ ऊपर उठाऊँ, तो पीछे खड़े किसी को भी वे दाग दिख जाने की संभावना रहती है। इसलिए मैं पीछे कोई भी खड़ा हो, तो ऊपर के अंगों पर पूजा नहीं करती, या तो एकदम फटाफट कर लेती हूँ... ताकि किसी की भी नज़र न पड़े। बहुत सारे लोग हों, तो मूलनायक की पूजा नहीं करती, और छोटी धातु की प्रभु-प्रतिमा की पूजा कर लेती हूँ... ऐसी बहुत माया मैंने की। कहीं भी विवाह आदि प्रसंगों में जाती हूँ, तो उन दागों को ढकने के लिए पूरी-पूरी मेहनत करती हूँ। इसमें उँगलियों पर दाग होने से उन्हें पूरी तरह ढकना संभव ही नहीं है। इसलिए सार्वजनिक समारोहों में मुझे बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, यह सब मुझे भार लगता है। समारोहों में जाने की तीव्र इच्छा होने के बावजूद अधिकतर तो सिर्फ़ इस कोढ़ के कारण कोई न कोई बहाना बनाकर प्रसंगों में जाना टालती हूँ।

पति ने बहुत समझाया कि ‘तुम्हारी उम्र ५५ हो गई है, अब इस उम्र में कोढ़ के दागों के लिए तुम इतनी क्यों परेशान होती हो। अरे, कितनों के तो पूरे के पूरे चेहरे पर ये दाग

होते हैं, वे कैसे दाग छिपाएँगे? तुम्हारे तो सिर्फ उँगली पर हैं, और मुझे खुद को, तुम्हारे पति को, तुम्हारे बच्चों को इससे कोई आपत्ति नहीं है, तो तुम इतनी क्यों डरती हो?...'

पर मैं अब तक तो उस बात को स्वीकार नहीं कर पाई थी। फिर जब श्रुतज्ञान में हमें आलोचना सिखाने वाली बहन के बारे में सुना कि वे तो ३५ वर्ष की उम्र से ही मेकअप, चप्पल, आईना... इन सब का संपूर्ण त्याग कर चुकी हैं, तब तो मुझे अत्यंत खुशी हुई... और मुझे लगा कि मुझे इन दागों से क्यों डरना चाहिए?... पुद्गल अपने रंग बदलता है, तो भले बदले। बस, उसके बाद मैंने निडर होकर सब जगह जाना, पूजा करना शुरू कर दिया है। अब वे दाग कोई देखे, तो भी कोई असर नहीं होता। कोई पूछे, तो कह देती हूँ कि 'शरीर ने अब नया खेल दिखाना शुरू किया है, तो वह खेल देख लेते हैं...' अब तक आर्तध्यान के साथ जो माया की, उसके लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(६) मेरी ड्रेस वैसे तो सस्ती थीं, पर मेरी सखियाँ महंगी ड्रेस पहनती थीं, तो जब ऐसी बात निकली कि 'तुम्हारी ड्रेस कितने की है?' तब मैंने उनकी जितनी ही कीमत अपनी ड्रेस की बताई, इस तरह माया-मृषा का सेवन किया। हालाँकि सखी ने पूछा कि 'किस ब्रांड की है? ब्रांड का नाम तो दिख नहीं रहा...' तो तब भी झूठा जवाब दिया कि 'नाम वाले कपड़े मैं लगभग नहीं पहनती। इसलिए कैंची से वे धागे काटकर दर्जी से नए धागे लगवा दिए हैं...' इस तरह माया की... हालाँकि मेरी सखियाँ समझ ही गई होंगी कि 'यह माया कर रही है' क्योंकि ब्रांड का नाम निकालकर नए धागे लगवाए हों, तो वह कुछ तो अलग दिखता ही है... वे कुछ बोलीं नहीं, पर मार्मिक रूप से हँसीं... उनकी हँसी से मुझे अंदाज़ा हो गया कि 'मेरी गलती पकड़ी गई है', पर मैं चुप ही रही।

शादी के बाद साड़ी आदि के लिए भी मैंने इसी प्रकार की कई मायाएँ की हैं। मेरी साड़ी-ड्रेस सस्ती हो, यह बताने में क्या हर्ज है? ऐसी माया की ज़रूरत ही नहीं थी। ऐसी तुच्छ बातों के लिए माया करने के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(७) मैं जैनमीडिया के माध्यम से जो 'श्रुतज्ञानम् ऑनलाइन बहनें बहनों को पढ़ाएँ...' योजना चलती है, उसमें एक टीचर हूँ। हमारे सभी टीचरों में एक भी टीचर पैसे नहीं लेते, सभी सुखी घर के हैं और सच्चे मन से पढ़ाते हैं। उसमें मुझे सुबह-सुबह का ५:३० से ६:३० का क्लास दिया गया था, अर्ली मॉर्निंग का समय होने के कारण उसमें मुश्किल से बीस बहनें ही जुड़ीं। मैंने देखा कि दूसरे सभी क्लासों में १०० जितनी बहनें भी जुड़ती थीं... इसलिए मैंने माया की, 'मेरी तबियत के कारण सुबह जल्दी उठना बिल्कुल संभव नहीं है... तो आप मुझे समय बदल दीजिए।' और मैनेजमेंट ने मुझे समय बदल भी दिया, उसके बाद मेरे क्लास में ८० बहनें आने लगीं... तो मैं खुश हो गई। बाद में पश्चाताप हुआ कि संख्या २० हो या ८०, पर मेरा माया नाम का दोष तो मुझे परेशान करेगा ही। बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(८) कुछ बहनों ने मुझसे विनती की कि 'हमें आपसे जीवविचार पढ़ना है।' श्रुतज्ञान में अब कोई भी समय खाली नहीं था, इसलिए मैंने अलग से उन बीस बहनों का जीवविचार क्लास शुरू किया। तीन-चार दिन में ही एक टीचर का फोन आया कि 'मेरा विषय पूरा हो गया है, मुझे अब उसी समय में जीवविचार लेने के लिए कहा गया है... तो आप तो २० बहनों को अलग से पढ़ा ही रही हैं, आप ही मेरे इस समय में पुराने + नए सभी को पढ़ाएँ...'

मैंने औपचारिकता के लिए माया की, 'देखिए, मेरा एक पाठ तो श्रुतज्ञान के समय में रात को चलता ही है, जीवविचार का पाठ तो मैं अलग से ले रही थी, आप जो दोपहर के ढाई से साढ़े तीन सड़सठ बोल की सज्झाय का पाठ लेती थीं न, उसी समय में अपना नया जीवविचार का पाठ ले लीजिए न, मैं अपने २० विद्यार्थियों को उसी में जोड़ दूँगी, वह आपका ही समय था। तो आप उस समय में पाठ करने की हकदार हैं...'

मुझे लगा कि वह टीचर मना कर देंगी, क्योंकि मेरा जीवविचार क्लास तो पहले से ही शुरू हो चुका था... पर उन्होंने मना नहीं किया। मेरी बात स्वीकार कर ली... अब उनका

जीवविचार क्लास चालू हो गया। देखा जाए तो यही उचित था, अब उनका दोपहर का एक क्लास, मेरा रात का एक क्लास... इस तरह दोनों का एक-एक क्लास हो गया। पर मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैंने मैनेजमेंट सँभालने वाली बहन को फोन करके कहा कि 'कुछ बहनें मुझे विशेष रूप से फोन करके कह रही हैं कि आप ही जीवविचार पढ़ाएँ। इन नई टीचर से हमें कम समझ में आता है।' मैंने तो उनसे स्पष्ट कह दिया है कि 'आपको नई टीचर से ही पढ़ना है, आपको धीरे-धीरे समझ में आ जाएगा... बस, आप उन नई टीचर से कह दीजिएगा कि 'वे ठीक से मेहनत करके पढ़ाएँ, तो सबको संतोष होगा, और किसी की भी शिकायत नहीं आएगी।'

मैंने यह माया ही की थी, मेरे मन में यही था कि मेरी बात सुनकर शायद मैनेजमेंट वापस मुझे ही पाठ दे दे...' पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरी अधमता तो ऐसी कि मेरे प्रति अंधानुराग रखने वाली बहनों के द्वारा मैनेजमेंट को कॉल करवाकर कहलवाया कि 'हमें इन बहन का जीवविचार का क्लास समझ नहीं आता।' पर मैनेजमेंट ने कोई फेरबदल नहीं किया। और एक दिन 'श्रुतज्ञानम्' (ऑनलाइन बहनें बहनों को पढ़ाएँ) के प्रेरक महात्मा का मेरे पास हितशिक्षा-पत्र आया। उन्होंने मेरी अनुमोदना तो की ही, पर साथ ही बड़े वात्सल्य से मेरा पूरा दोष बताया। उन्होंने किस तरह मेरे मन की माया को पकड़ लिया, यह मुझे पता ही नहीं चला। सिर्फ़ प्रसिद्धि पाने के लिए, सिर्फ़ ८०-१०० बहनें मेरे साथ जुड़ें... ऐसी लालसा से, 'मुझे गुरु मानें...' ऐसी लालसा से मैंने यह सब मायाएँ कीं।

साहेबजी! मुझे यह तो समझ आ गया कि आत्मा जिन मामलों में अच्छी नहीं है, पर अच्छी दिखना चाहती है... उन मामलों में माया करती है।

और जिन मामलों में खराब है, पर खराब दिखना नहीं चाहती... उन मामलों में माया करती है।

जिस मामले में वह अच्छी ही है, पर किसी को वह 'अच्छी' के रूप में नहीं दिखती... उस मामले में भी वह माया करती है। ('मैं अच्छी हूँ' यह दिखाने की मेहनत...)

• जिस मामले में वह खराब नहीं ही है, पर किसी को वह 'खराब नहीं है' के रूप में नहीं दिखती, उस मामले में भी वह माया करती है। ('मैं खराब नहीं हूँ' यह दिखाने की मेहनत...)

माया के ये चार स्वरूप तो मुझे भली-भाँति समझ में आ गए हैं...

मेरे इन सभी पापों के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

(९) मैं कॉलेज के समय में एकदम मॉडर्न थी। ड्रेस अशोभनीय, हेयर स्टाइल ज़बरदस्त, सैंडल ही ज़्यादातर पहनना... आदि कई विचित्रताएँ थीं। कॉलेज के बाद जब मेरी शादी के लिए एक युवक की बात आई, तो मम्मी ने कहा कि 'अरबपति, खानदानी, धार्मिक, संस्कारी परिवार है। पर तुम यदि यह मॉडर्न लाइफ नहीं छोड़ोगी, तो वे तुम्हें पसंद नहीं करेंगे।'

मुझे लड़का और पैसा... दोनों पसंद आ गए थे। मेरे सभी शौक वहाँ बहुत आसानी से पूरे हो सकते थे। इसलिए तत्काल तो ससुराल पक्ष और युवक को खुश करने के लिए जिनपूजा शुरू कर दी, मर्यादापूर्ण वस्त्र पहनने शुरू कर दिए। खाना बनाना भी सीखा, सैंडल भी छोड़े, मेकअप में काफ़ी मर्यादा लाई... मन में एक ही भाव था कि 'वह युवक मुझे पसंद कर ले।' और मेरी योजना सफल हुई, मेरी शादी उसी लड़के के साथ हुई। मुझे यह समझ आ गया था कि वह स्वभाव से शांत था... झगड़ा उसे पसंद नहीं था, उसे दबाया जा सकता था... इसलिए धीरे-धीरे मैंने अपना असली रंग दिखाया, और अपना मूल स्वभाव बाहर ले आई। पूजा छोड़ी, अशोभनीय वस्त्र पहनने शुरू किए, बाहर से ऑर्डर देकर होटल की चीजें मँगवानी शुरू कर दीं... थोड़ी कहासुनी हुई, खटपट हुई... अंत में उन्हें मेरा स्वभाव-शौक स्वीकार करना पड़ा... इस तरह मैंने अपने पति और

ससुराल पक्ष के साथ माया की... आज मुझे उसका फल भी मिल गया है, मेरी बेटी मेरा बिल्कुल नहीं मानती, मेरे सामने जैसा-तैसा बोलती है। हर बात में धमकियाँ देकर अपना मनचाहा करवा लेती है... अब मुझे समझ आता है कि किसी को दबाने, किसी के सामने कुछ भी बोलने, किसी की मजबूरी का लाभ उठाने... इन सब में सामने वाले जीव को कितना दुःख होता है। मैंने अपनी सास, ससुर, पति को खून के आँसू रुलाए हैं। उन्होंने मेरी माया में फँसकर मुझे स्वीकार किया था, पर जैसे ही माया का नकाब हटा, मेरा राक्षसी स्वभाव उन्हें परेशान कर गया... मेरी इस भूल के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(१०) मेरे पति के ठंडे, नीरस होने के कारण शादी के बाद मेरी अतृप्त वासनाएँ परपुरुष का शिकार करने लगीं। इस मामले में मैंने अपने पति के साथ बहुत माया की है। उन्हें लेशमात्र भी शंका न हो, इसके लिए उन्हें बहुत प्रेम दिखाया है... और दूसरी तरफ परपुरुषों के साथ आनंद लिया है। उनमें से एक तो उनका मित्र ही था।

उनका बाहरगाँव जाना अनेक बार होता था, बिजनेस ही ऐसा था। उस वक्त मैं ऐसा कहती थी कि 'आप घर पर नहीं होते, तो बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। रात को डर भी लगता है, और अकेलापन भी महसूस होता है। बाहरगाँव न जाएँ तो अच्छा...' पर दूसरी तरफ जब-जब वे बाहरगाँव गए, तब एक भी रात पाप किए बिना नहीं बीती।

जब वे शहर में ही होते, तब भी शाम को उन्हें फोन करके पूछती 'कितने बजे आएँगे?' कई बार वे कहते '१०-११ बज जाएँगे।' तब मैं दिखावा तो ऐसा करती कि मुझे यह अच्छा नहीं लगा। तो मैं बोलती... 'इतनी देर? आप जल्दी आइए न...' फिर वे कारण बताकर मुझे समझाते। मुझे तो वह अच्छा ही लगता था। मैं कह देती 'तो मैं अपनी सखी के यहाँ हो आती हूँ...' वे हाँ कह देते, और मेरी पापलीला इस तरह तय हो जाती। उनसे कह देती कि 'कुछ भी काम पड़े, तो मुझे तुरंत कॉल कर दीजिएगा... मैं आ जाऊँगी।'

उन्हें यही लगता था कि मैं उनकी बहुत परवाह (Care) करती हूँ, परंतु वह परवाह थी ही नहीं, केवल माया थी, और माया के नीचे भयानक पापाचार था।

मुझे बहुत समय बाद ऐसा अहसास हुआ कि परपुरुष मेरा सिर्फ और सिर्फ इस्तेमाल करते हैं। उन्होंने मेरे जैसी कितनी ही स्त्रियों को फँसाया है... इसमें सच्चा स्नेह नहीं है... और उसके बाद मैंने वह पाप छोड़ दिया। पति को तो यह सब बताने की हिम्मत नहीं है, परंतु आपको अपने पापाचारों और उन्हें छिपाने के लिए की गई माया बता दी है... मिच्छामी दुक्कडं।

(११) सास बनने के बाद मैंने अपनी बहू के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया है। उसे पाइल्स की समस्या थी, फिर भी ढेरों कपड़े उसे इस्त्री करने के लिए दे देती, झाड़ू-पोंछा-रसोई... आदि सभी काम उस पर डाल दिए थे। पर घर पर कोई मेहमान आता, तो मैं काम करने लगती, सबको ऐसा दिखाती कि 'मैं घर का काम करती हूँ।' फिर मेहमानों से कहती, 'मुझे तो बहू मेरी बेटी ही है।'

है न, वह शांति से मज़े करे... हम तो काम करने के आदी हैं। धीरे-धीरे वह भी आदत डाल लेगी। और अगर आदत न भी डाले तो क्या? हम कोई हराम की हड्डी वाले तो बनने ही नहीं हैं।'

म.सा.! बहू को यह बात साफ़ समझ में आ जाती थी कि जब कोई नहीं होता, तब मैं उसे नौकरानी की तरह ट्रीट करती थी, और जब मेहमान आते, तब रानी की तरह ट्रीट करती थी।

मेहमान मेरी प्रशंसा करते, बहू को आलसी, कामचोर मानते... ऐसी-ऐसी सारी मायाएँ मैंने की हैं। शुरुआती वर्षों में तो बहू ने सहन किया, लेकिन धीरे-धीरे वह स्पष्टवक्ता बन गई, तब यह मेरे लिए भारी पड़ने लगा।

मैं मेहमानों के सामने कुछ बोलती, तो वह सबके सामने ही पिछले दो-चार दिनों के अपने काम का हिसाब दिखा देती... बड़ों को भी दिखा देती... मुझे चुप होना पड़ा। मेहमानों के सामने मेरा झूठ उजागर होने लगा।

इसके बाद मैंने वह माया तो छोड़ दी, लेकिन उस समय मुझे मेरी माया पाप नहीं लगी थी। अब धर्म को समझने के बाद ऐसा लगता है कि यह सब मैंने गलत किया।

सबके सामने बहू घर की रानी... और सबकी गैरहाज़िरी में बहू घर की नौकरानी... ऐसा मायाभाव मैंने क्यों खेला?

मेरे आत्मा को उसमें क्या मिला? लोगों के दो मीठे शब्दों के सिवा कुछ भी नहीं। उसके बदले बहू का प्रेम गँवाया, आत्मा में गलत संस्कार डाले, बेकार के पापकर्म बाँधे...

अंतर से मिच्छामी दुक्कड़ं।

(२) मैं अपने बच्चों को छुप-छुपकर अच्छा-अच्छा खाने को दे देती थी। और देवरानी के बच्चों को, ननद के बच्चों को नहीं देती थी। बाहर से सबके साथ एक-सा व्यवहार करके सबको खुश रखती थी।

मेरी देवरानी सीधी है। वह मुझे बड़ी बहन ही मानती है। ननद तो साल में एक-आध महीना रहने आती है... और मेरे बच्चों से मेरा लगाव ज़्यादा हो, यह तो ठीक है... लेकिन यह तो मैंने अन्याय ही किया न!

देवरानी के, ननद के छोटे-छोटे बच्चों को बिस्किट वगैरह न देना और अपने बच्चों को छुप-छुपकर देना... इसमें अन्याय तो है ही, और साथ-साथ माया भी है ही... ऐसे निर्दोष बच्चों के साथ ऐसा अन्याय और माया करने के लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़ं।

मेरे बच्चे जब मुझसे कहने आए कि 'मम्मी! मामी अपने बच्चों को चुपके से बिस्किट-ड्रायफ्रूट्स देती हैं, हमें नहीं देतीं। यह तो हमने देख लिया, इसलिए पता चला। मामी ऐसा क्यों करती हैं?'

उस समय मैं पीहर में थी। तब मुझे होश आया कि मैंने दूसरों के बच्चों के साथ मायापूर्वक अन्याय किया, तो वही मेरे बच्चों के साथ भी हुआ... प्रकृति किसी को नहीं छोड़ती।

मुझे अपने बच्चों के साथ हुआ अन्याय अच्छा नहीं लगता, तो ननद को, देवरानी को कैसे अच्छा लगेगा? यह बिल्कुल साफ़ बात है।

अगर उनके बच्चों को भी पता चला होगा, तो मेरे प्रति उनके मन में कितना दुर्भाव आया होगा! और सबसे बड़ी बात यह है कि प्रकृति तो देखती ही है न...

मेरी इस माया के बदले, निर्दोष बच्चों के साथ किए गए अन्याय के बदले अंतर से मिछामी दुक्कड़।

जो दूसरों के बच्चों को दुखी कर सके, वह माँ नहीं, डाकन है...

(१३) मेरी सखी ने मुझसे मार्गदर्शन माँगा कि 'मैं भविष्य में किस फील्ड में जाऊँ? तुझे क्या लगता है?' उसकी क्षमता अच्छी थी। मैं फ़ैशन डिज़ाइनर का कोर्स कर रही थी। उसकी इच्छा भी वही थी।

और मुझे पता था कि 'अगर वह इस फील्ड में आएगी, तो मेरे जैसी तो उसकी सर्वेंट बनकर रहूँगी... इतनी ज़बरदस्त उसकी क्षमता है। वह मेरी कॉम्पिटिटर बनेगी, तो मैं 100% पीछे ही रहूँगी...'

इसलिए मैंने उसे गलत मार्गदर्शन दिया। कहा कि 'तू तो C.A. बन सकती है। तू इसमें टाइम क्यों बर्बाद करती है? हमारे जैसे लोगों में तो C.A. बनने की ताक़त ही नहीं थी, इसलिए हमने इस फ़ील्ड में एंट्री ली। लेकिन तेरे लिए यह फ़ील्ड बेकार है...'

मेरी बात शायद सही भी हो, लेकिन मैंने यह बात उसे अपने फ़ील्ड में आने से रोकने के इरादे से ही कही थी।

इसलिए मैंने अपने अशुभ भाव छुपाकर बाहर से उसका सच्चा हितैषी होने का ही दिखावा किया। यह मेरी माया ही थी—'बाहर कुछ और, अंदर कुछ और...' मिच्छामी दुक्कड़ें।

(१४) मैंने 18 साल की उम्र में सिद्धितप किया, लेकिन वह तप पूरी तरह गलत था, क्योंकि उपवास के दिनों में मैंने छुप-छुपकर ड्रायफ़्रूट्स खाए थे।

एक बार पाँचमी बारी के चौथे उपवास पर मेरी प्रिय सखी मुझे शाता पूछने आई। मैं चादर ओढ़कर लेटी हुई थी। चादर ओढ़ने का कारण यही था कि 'मैं अंदर रहकर ड्रायफ़्रूट्स खा सकूँ।'

उसने मज़ाक में एक झटके से चादर खींच ली। उस समय मैं मुँह में काजू चबा रही थी, और कुछ ड्रायफ़्रूट्स खिंची हुई चादर के साथ बिखर गए...

वह चौंक गई, और मुझे समझ आ गया कि 'मैं पकड़ी गई हूँ।' मैं शर्मिदा हो गई। मैंने उससे कहा—'तुझे मेरी कसम है, प्लीज़! तू किसी को मत कहना...'

उसने कहा—'मैं किसी को कहूँ या न कहूँ, वह बाद की बात है, लेकिन तू ऐसा तप करती ही क्यों है? क्या ज़रूरत है? तू किसे दिखाना चाहती है? पाप क्यों बाँधती है?'

उसने मुझे बहुत समझाया, लेकिन मैंने उसकी बात नहीं मानी। और इस तरह खाने के साथ वाला सिद्धितप पूरा किया...

वह मेरे पारणे में नहीं आई, मुझे शांता भी नहीं पृथ्वी-मैं उसका कारण समझती थी।

सालों बाद अब मुझे एहसास होता है कि 'मैंने ऐसा तप क्यों किया।' उसके प्रायश्चित्त रूप में मैंने एक सच्चा सिद्धितप गुप्त रूप से कर लिया है।

लेकिन वह पाप तो पाप ही था... अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(१५) मेरी बेटी बचपन में मेरे बिना सोती ही नहीं थी। इसके कारण पति के साथ भोगसुख में बाधा आती थी।

उस समय मैंने अलग-अलग मायाएँ करके उसे दूर किया। कभी शिविर के बहाने तीन-चार दिन भेज दिया, कभी मामा-मामी के घर भेज दिया। छुट्टी के दिन कहीं खेलने भेज दिया...

इस तरह एकांत पाकर भोगसुख भोगे। शरीर के तुच्छ सुखों के लिए इस तरह अपनी बेटी के साथ माया-कपट खेले।

कई बार तो उसे जाना नहीं होता था, फिर भी ज़बरदस्ती भेजा... अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

शायद वह इस माया को समझ पाई होगी या नहीं-यह पता नहीं। लेकिन मैंने तो पाप किया ही है।

इतना याद है कि 12-13 साल की उम्र के बाद एक बार उसने कहा-‘मम्मी! तुम्हें माया करने की ज़रूरत नहीं है। मैं सब समझती हूँ। मुझे अकेले सोने में डर लगता है, लेकिन मैं उसमें सेट हो जाऊँगी। तुम्हारी ज़िंदगी में मैं बाधा नहीं बनूँगी।’

उसने यह बात सहज भाषा में कही थी, लेकिन मुझे लगता है कि वह बहुत पहले से मेरी माया समझ चुकी थी... उसके मन में मेरी कैसी छवि बनी होगी? यह प्रश्न ही रह जाता है।

बस, उसके बाद वह जाने-अनजाने कभी मेरे पास सोने नहीं आई। भोगसुख की लालच में मैंने अपनी प्यारी बेटी का प्रेम खो दिया।

(१६) हम तीन-चार कपल घूमने गए थे। उनमें एक पुरुष की ओर मेरा मन खिंच गया। सूमो में यात्रा कर रहे थे, तो मैंने जानबूझकर अपने पैर से उसका पैर छुआ... लेकिन ऐसा दिखाया जैसे 'मुझे तो कुछ पता ही नहीं।'

उसकी पत्नी ने यह देखा, वह बहुत भड़क गई, लेकिन तत्काल कुछ नहीं बोली।

फिर होटल में खाने बैठे। तो मैंने जानबूझकर उसके पास बैठकर उसका स्पर्श किया, लेकिन दिखावा वही-कि मुझे कुछ पता नहीं।

बाउल-चम्मच-प्लेट देते-लेते समय हाथ का स्पर्श किया। और अंत में जब बोट में घूमने निकले, तब मैंने बैलेंस बिगड़ने की एक्टिंग की और उसके ऊपर गिर पड़ी...

बस, तब उसकी पत्नी मुझ पर बुरी तरह बोलने लगी। मैंने भी उसे उलटे-सीधे जवाब दिए। हमारे दोनों पति हमें झगड़ा करने से रोक रहे थे... लेकिन झगड़ा बहुत बढ़ गया, और अंत में वह कपल वहीं से हमसे अलग होकर शहर चला गया।

इस सब में मेरी स्पष्ट माया थी। पति साथ होते हुए भी कामवासना के वश होकर ऐसी मायाएँ कीं।

आज सोचती हूँ तो आश्चर्य होता है कि पैर छूने से, हाथ छूने से या उसके ऊपर गिरने से मुझे कौन-सा सुख मिलने वाला था? वैसे भी संसारसुख तुच्छ है, और यह तो और भी अल्पमात्रा का सुख...

उसके लिए मैंने इतनी मायाएँ क्यों कीं? फूड-कपट मेरा स्वभाव बन गया था।

मिच्छामी दुक्कड़।

(१७) पालिताणा-शंखेश्वर में ज़्यादा पैसे देकर मैंने सफ़ेद पास लिया, और इस तरह जल्दी पूजा की... यह भी एक तरह की माया ही थी।

कई बार चालाकी से लाइन के बीच में घुसकर भी पूजा की है।

(१८) लाइसेंस न होते हुए भी एक्टिवा वगैरह चलाए। पुलिस दिखे तो रास्ता बदल लेती। दूसरा रास्ता न हो तो ट्रैफ़िक के बीच पहुँचकर पुलिस की नज़र बचाकर भाग जाती।

मैंने हमेशा एक दवा का प्रिस्क्रिप्शन साथ रखा। गलती से पुलिस पकड़ ले तो तुरंत वह दिखा देती और रोने का नाटक करती-‘मेरी मम्मी बीमार हैं, यह दवा लानी है। घर में कोई नहीं है... इसलिए मुझे जाना पड़ता है। अंकल प्लीज़!’

इस तरह मीठी बातें करके पुलिस मुझे छोड़ देती। इस तरह तीन-चार बार पुलिस को भी मूर्ख बनाया है।

मैंने कहाँ-कहाँ और किस-किस तरह माया नहीं की? यही सवाल है।

मिच्छामी दुक्कड़।

(१९) 45 साल की उम्र से मेरे बाल सफ़ेद होने लगे थे। मुझे शर्म लगती थी कि ‘मैं खराब दिखूंगी।’ इसलिए तभी से बालों में कलर करवाना शुरू कर दिया।

किसी को अंदाज़ भी न आए कि यह कलर किया हुआ है। बिगड़ते, सफ़ेद होते बालों को काला दिखाना-यह भी एक माया ही थी... अंतर से मि. दुक्कड़।

साध्वीजियों को देखती हूँ तो ख्याल आता है कि वे जवान उम्र में भी लोच करवा देती हैं-बालों का कोई मोह ही नहीं।

मेरे तो विवाह हो चुके, वैवाहिक जीवन भी लगभग पूरा होने आया है। पति के भी सफ़ेद बाल आने लगे हैं। मैं किसके लिए अपने बाल काले दिखाने की मेहनत कर रही हूँ?

मैं किससे अपने सफ़ेद बाल छुपाने की कोशिश कर रही हूँ? और उसकी ज़रूरत ही क्या है?

पुद्गल का राग मुझे कितने-कितने पाप करवा रहा है...

(२०) एक पुरुष की उम्र लगभग 45 के आसपास होगी। वे प्रवचन में कुर्सी पर बैठते थे... (कोई कारण रहा होगा)। वे बहुत हैंडसम थे। बॉडी भी शानदार थी।

प्रवचन में भी मैंने तिरछी नज़र से कई बार उनकी ओर देखा। मुझे उनके प्रति आकर्षण हो रहा था। मैं उस समय स्वयं 40 साल की थी-किसी की पत्नी थी, किसी की माँ थी...

फिर भी मेरी नज़रें उन्हीं की ओर खिंचती थीं। सीधे तो देख नहीं सकती थी, लेकिन किसी न किसी बहाने देखती।

फिर वे मुझे देखते हैं या नहीं-यह तिरछी नज़र से नोट करती। कई बार ज़ोर से खाँसकर उनका ध्यान अपनी ओर खींचा।

प्रवचन के बाद भी जब वे बाहर निकलते, तभी मैं भी निकलती। दरवाज़े पर या सीढ़ियाँ उतरते समय उनके साथ हो जाऊँ-ऐसे प्रयास करती।

लेकिन ऐसा दिखावा करती कि 'मैं बहुत अच्छी स्त्री हूँ।' बाहर से सती और अंदर से असती...

इच्छा बहुत थी कि किसी न किसी बहाने उनसे बातचीत हो जाए।

एक दिन मुझे पता चल गया कि उनकी पत्नी कौन है। प्रवचन के बाद दोनों स्कूटर पर जाते थे।

मैंने उनकी पत्नी से परिचय बढ़ाया, उसकी मित्र बन गई। फिर सखी होने के बहाने उसके घर जाने लगी।

धीरे-धीरे उस पुरुष से भी बातें होने लगीं। फिर जब उनकी पत्नी बीच में नहीं होती, तब तीन दिन तक मैं ही उनके घर खाना बनाने जाती... वे मेरी प्रशंसा करते, और वह मुझे अच्छा लगता।

मोह-राजा ने मुझे फँसा लिया और मैं धीरे-धीरे पतन की खाई में गिरती चली गई... मैंने सखी का ही द्रोह किया।

काफी समय तक मैंने अपने पति को और उसकी पत्नी को धोखा दिया—सच कहूँ तो मैंने स्वयं को ही धोखा दिया।

मेरी 17 साल की बेटी भी मुझे पहचान गई थी, फिर भी मैं उसे भी ठगने की कोशिश करती रही...

अंत में उसकी पत्नी को सब पता चल गया। वह बौखलाई हुई शेरनी बनकर मेरे घर आई, मेरे पति के सामने मुझे थप्पड़ पर थप्पड़ मारे, सबूतों के साथ मेरी पाप-लीला पति को दिखाई...

पति ने भी मुझे मारा, समझाया, और अंततः छोटी माया से शुरू हुआ पापाचार बंद हुआ।

बहुत-बहुत पछतावा है—अंतर से मिच्छामी दुक्कड़ं। मुझे सख्त प्रायश्चित्त दीजिए।

(२१) कॉलेज लाइफ़ में शराब, सिगरेट, हुक्का कई बार पिया। लेकिन घर में किसी को पता न चले, इसलिए ऐसी चीज़ें इस्तेमाल कीं जिनकी स्मेल बिल्कुल न आए।

सिर्फ एक बार चरस-गाँजे का पाउडर घर ले आई थी। मम्मी की नज़र पड़ गई। उन्होंने सँघा, शक हुआ।

मैंने माया करके कहा-‘सर्दी में यह स्पेशल दवा है।’

बाद में मुझे बहुत पछतावा हुआ। मैं अपनी अनंत उपकारी माँ के साथ धोखा कैसे कर सकती हूँ?

मैं साधु के पास गई, सब सच बताया। उनके कहने से वह पाउडर मिट्टी में मिला दिया।

लगभग 4000 रुपये का, चने जितना पाउडर था...

उसके बाद कभी नशा नहीं किया, न उसके लिए माया की। इस पाप के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(२२) संघ में जो भी साध्वीजियाँ आतीं, उनसे बहुत अपनापन दिखाना मुझे अच्छा लगता था। मुझे पता चल गया था कि अगर उनकी प्रशंसा की जाए, तो वे खुश हो जाती हैं। पिछले बीस सालों से मैंने यह पाप किया। जो भी साध्वी आती, उनकी मौजूदगी में उनकी प्रशंसा करती, और पीठ पीछे उनके दोष गिनाती।

उन्हें कल्पना भी नहीं होती थी कि मैं ऐसा करती हूँ। इतनी ज़्यादा प्रशंसा करती थी। मैं उनके कार्यक्रमों में न जाती, लेकिन पत्र ज़रूर लिखती-‘आपकी बहुत याद आती है, आपका चातुर्मास मेरे जीवन का सबसे बेस्ट चातुर्मास था...’ सबको यही लिखती। सिर्फ चापलूसी ही करती रही। इन सारी मायाओं के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(२३) किसी की शोकसभा, शादी या पारणा के लिए दूसरे शहर जाना होता, तो पहले पता कर लेती कि वहाँ कौन-सी साध्वीजियाँ हैं।

अगर हमारे संघ में आ चुकी कोई परिचित साध्वी होती, तो उनसे मिलने जाती और कहती-‘आपका पत्र आया था, तब से मिलने की बहुत इच्छा थी। इस बार किसी भी तरह प्लान बनाया, सिर्फ आपसे मिलने आई हूँ।’

हकीकत नहीं बताती कि ‘सांसारिक कार्यक्रम में आई हूँ।’

अगर कपड़ों से अंदाज़ा लग जाए, तो दूसरी माया तैयार रहती-‘म.सा.! आपको वंदन करने ही आना था, अब शादी का बहाना मिल गया।’

इस तरह की मायाओं से मुझे कुछ भी नहीं मिला-सिवाय गंदे संस्कारों के। एक बार पापा को स्टेशन छोड़ने गई थी, वहाँ मेरा कज़िन मुमुक्षु भाई भी मिला। मैंने कहा-‘दीक्षा के बाद कब मिलेंगे? इसलिए आज स्टेशन तक छोड़ने आई हूँ।’ असल में पापा को छोड़ने आई थी... उलटी ही बात कह दी। ऐसी हज़ारों मायाओं के लिए बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - 6

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक - : मिथ्यात्व शल्य

अठारह पापस्थानों में यह पाप अंत में बताया गया है, लेकिन जब बारह व्रत, उपधान, दीक्षा आदि कोई भी विधि करनी होती है, तब उन सभी में सम्यक्त्व सबसे पहले उच्चारित किया जाता है।

और सम्यक्त्व का अर्थ है-

मिथ्यात्व त्याग!

श्री अतिचारसूत्र में भी 'सम्यक्त्वमूल' यह शब्द लिखा गया है। उसका अर्थ यह है कि बारह व्रत रूपी श्रावक-धर्म यदि कल्पवृक्ष है, तो उसका मूल सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व के बिना बारह व्रत सच्चे अर्थ में हो ही नहीं सकते। जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं, वैसे ही सम्यक्त्व के बिना बारह व्रत नहीं... इसलिए सम्यक्त्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अर्थात् मिथ्यात्व-त्याग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

अभव्य सभी हिंसादि पापों का त्याग करते हैं, लेकिन मिथ्यात्व का त्याग नहीं करते, इसलिए वे मोक्ष प्राप्त नहीं करते। और श्रेणिक-कृष्ण ने हिंसादि सभी पापों को चालू ही रखा है, लेकिन उन्होंने मिथ्यात्व का त्याग कर दिया है, इसलिए वे तीसरे भव में ही मोक्ष को जाने वाले हैं।

मिथ्यात्व के साथ किए गए धर्मकार्य भी व्यर्थ हैं, अल्पफल वाले हैं। और सम्यक्त्व के साथ किए गए अधर्मकार्य भी व्यर्थ हैं, अल्पफल वाले हैं...

ऐसी बहुत-सी बातें मैंने प्रवचनों और पुस्तकों के माध्यम से जानी हैं। सम्यक्त्व क्या है? उसकी परिभाषा भी मैंने जानी है।

(१) जो राग-द्वेष आदि आत्मा के अशुभ भाव नुकसानकारक हैं, वे बुरे लगें, छोड़ने योग्य लगें-इसे सम्यक्त्व कहते हैं।

(२) जो क्षमा, नम्रता आदि आत्मा के शुभ भाव हितकारी हैं, वे अच्छे लगें, प्राप्त करने योग्य लगें-इसे सम्यक्त्व कहते हैं।

(३) विकार, वासना, ईर्ष्या, क्रोध आदि अशुभ भावों को उत्पन्न करने वाले जो मोबाइल आदि द्रव्य हैं,

ऐसे जो होटल-थियेटर आदि क्षेत्र हैं,

ऐसे जो नवरात्रि आदि काल हैं,

ऐसे जो कटाक्ष आदि भाव हैं...

यह सब भी छोड़ने योग्य लगें-यह सम्यक्त्व है!

(४) क्षमा, नम्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य आदि शुभ भावों को उत्पन्न करने वाले जो प्रतिमा-पुस्तक आदि द्रव्य हैं,

ऐसे जो देरासर-उपाश्रय-तीर्थस्थल आदि क्षेत्र हैं,

ऐसे जो पर्षण-ओळी आदि काल हैं,

ऐसे जो गुरु आदि की संवेग्रता आदि भाव हैं-

यह सब भी प्राप्त करने योग्य लगें-यह सम्यक्त्व है!

मेरी सामान्य बुद्धि के अनुसार मुझे इतनी समझ तो है।

सुदेव: दुनिया में लाखों वस्तुएँ हेय हैं, और लाखों वस्तुएँ उपादेय हैं...

हमें क्या पता चले? कि कौन-सी वस्तु हेय है? या कौन-सी वस्तु उपादेय है?...

इसलिए, यह सब कुछ जो जानते हैं, उन सर्वज्ञ भगवंत पर मुझे पूरी श्रद्धा रखनी है। उन्होंने जो कहा है, उसी के अनुसार मुझे मानना है, तभी मैं हेय (छोड़ने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) वस्तुओं को समझ सकूँगा, मान सकूँगा, और उसी के अनुसार प्रवृत्ति कर सकूँगा।

इसलिए सर्वज्ञ भगवंत पर पूरी श्रद्धा ही सम्यक्त्व है।

सुगुरु: सुदेव हर समय उपस्थित नहीं होते, उस समय उनके असिस्टेंट डॉक्टर जैसे सुगुरु पर मुझे श्रद्धा रखनी ही चाहिए। असिस्टेंट डॉक्टर रूपी सुगुरु तो प्रभु के कहे

अनुसार ही हमें मार्गदर्शन देंगे, और इसलिए वह सही ही होगा... इसमें शंका को कोई स्थान नहीं है।

इसलिए गीतार्थ-संविग्र सुगुरु पर पूरी श्रद्धा ही सम्यक्त्व है।

सुधर्म: मैं उन दोनों को मानूँ, पर उन दोनों की बात न मानूँ तो यह कैसे चलेगा? माँ से प्रेम करूँ, पर माँ की बात न मानूँ, तो वह प्रेम किस काम का? उन देव-गुरु ने जो शास्त्र बताए हैं, वह श्रुतधर्म है। और उन दोनों ने जो आचार बताया है, वह चारित्रधर्म है। इन दोनों धर्मों पर पूरी श्रद्धा रखना भी सम्यक्त्व है।

इस प्रकार मेरी समझ इतनी स्पष्ट है कि:

(१) आत्मा के दोष और दोषों को उत्पन्न करने वाले द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मुझे बुरे लगने ही चाहिए।

(२) आत्मा के गुण और गुणों को उत्पन्न करने वाले द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मुझे अच्छे लगने ही चाहिए।

(३) यह सब कुछ बताने वाले सर्वज्ञ-वीतराग भगवंत पर मुझे अगाध श्रद्धा होनी ही चाहिए।

(४) सर्वज्ञ वीतराग के ही मार्ग पर चलने वाले और चलाने वाले गीतार्थ-संविग्र सुगुरु भगवंत पर मुझे अगाध श्रद्धा होनी ही चाहिए।

(५) देव और गुरु ने जो वचन कहे, उन पर मुझे संपूर्ण श्रद्धा होनी ही चाहिए कि 'ये सत्य ही हैं... और यही सत्य हैं।'

(६) देव और गुरु ने जो आचार बताए, उन पर मुझे संपूर्ण श्रद्धा होनी ही चाहिए कि 'यही करने योग्य है, और यह करने योग्य ही है।'

हे गुरुदेव! अभी तो यह श्रद्धा मुझमें दृढ़ है... परंतु जब तक मैंने यह सब समझा नहीं था, तब तक मैंने अपने जीवन में बहुत भूलें की हैं... उन भूलों की मुझे आलोचना करनी है... इस आलोचना करने के कारण मेरे संस्कार कमजोर पड़ेंगे, और आने वाले भवों में वे दोष फिर कभी भी जाग्रत नहीं होंगे...

सुदेव = देवाधिदेव = सर्वज्ञ-वीतराग के विषय में मेरी भूलें:

(१) मुझे व्यापार में कोई तकलीफ नहीं थी, वैसे भी मेरा परिवार सुखी-संपन्न था, पिताजी ने बहुत अच्छा व्यापार जमाया था, और मैं उसी में जुड़ गया था, पर करोड़ों कमा लेने की लालसा मुझमें जाग गई थी। किसी ने कहा कि 'शंखेश्वर में हर पूनम के दिन जाना, तो तुम्हारा व्यापार बहुत बढ़ेगा।'

और हम पाँच-एक मित्रों ने एक ग्रुप बनाया, पूनम भरना शुरू किया। लगभग तीन वर्ष तक पूनम भरी, पर व्यापार बढ़ने के बजाय थोड़ा घट गया। इससे प्रभु पर से मेरी श्रद्धा डगमगा गई। 'इतना खर्चा करके पूनम भरी, फिर भी उसका कोई फल तो मिला ही नहीं। प्रभु कुछ नहीं करते।' ऐसे-ऐसे विचार आए... मिच्छामी दुक्कड़।

(२) उसके बाद किसी ने नाकोड़ा भैरवजी के लिए कहा, तो मैं वहाँ जाने लगा। वहाँ पार्श्वप्रभु के सामने मात्र पाँच ही मिनट दर्शन-पूजन-वंदन करता, और भैरवजी के सामने लंबे समय तक माला जपता। उनके होम-हवन में उपस्थित रहता। मुझे इतना भी भान न रहा कि भैरवजी जिनके दास हैं, वैसे इंद्र महाराजा भी प्रभु के दास हैं। करोड़ों भैरवजी भी इकट्ठे हो जाएँ, तो भी प्रभुजी के सामने उनकी कीमत १ करोड़ रुपये के सामने एक पैसे जितनी भी नहीं है। और फिर भी मैं उनके पीछे पागल बना रहा... अरे! पैसे चाहिए हों, घर की समस्याएँ दूर करनी हों, तो भी मुझे प्रभु की शरण में ही जाना चाहिए। देवाधिदेव की शरण में जाऊँगा, तो उनके परमभक्त मेरी सहायता करने ही वाले हैं। मुझे उन परमभक्त देवों की भक्ति करने की क्या आवश्यकता? पर ऐसा कोई विवेक मेरे पास था ही नहीं... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(३) महुडी तीर्थ में घंटाकर्ण महावीर का भी मैं भक्त बन गया। सुखड़ी के थाल चढ़ाए, एक पैर पर खड़े होकर उनकी मालाएँ गिनीं... उनका भंडार भरा, सोने-चांदी के गहने चढ़ाए... और उसी परिसर में प्रभुजी के मंदिर में शायद ही कभी गया, जब गया तब भी मुश्किल से दो-पाँच मिनट के लिए ही गया, अब तक पूजा तो मुश्किल से दो-तीन बार ही की होगी... मैं समझता हूँ कि पू. आ. बुद्धिसागरजी ने तो उस मिथ्यात्वी देव को समकित्ती बनाया। मांस की जगह सुखड़ी शुरू करवाई। पर मुझ जैसे मूर्खों ने प्रभु की आशातना हो, उस प्रकार से उस देव के प्रति श्रद्धा रखी, मन्त्रें मानीं, आराधना की... यह सब अब मुझे एकदम गलत लगता है। पर उन दिनों तो मैंने बड़े चाव से यह सारी प्रवृत्तियाँ की हैं।

(४) ऐसी ही भूल मैंने माणिभद्रजी के लिए की! वे तो शासन के अधिष्ठायक देव हैं। परंतु मुझे उन्हें प्रभु से अधिक सम्मान तो देना ही नहीं चाहिए था। पर वहाँ भी मैंने वही काम किया... उनकी आरती की बोली में मुझे बहुत उल्लास होता, पर प्रभु की आरती की बोली में बिल्कुल नहीं। आगलोद जा-जाकर माणिभद्रजी को पूजा है, पर वहाँ जाकर प्रभु की तो उपेक्षा ही की है। भैरवजी, घंटाकर्णजी और माणिभद्रजी... इन तीनों देवों के विषय में मैंने ये भूलें की हैं। उन जगहों पर प्रभु के मंदिर खाली-खाली दिखते, फिर भी मन में लेश मात्र भी दुःख नहीं हुआ कि 'यह तो ठीक नहीं है... यह आशातना है।' और इन देवों के यहाँ भयंकर भीड़ देखकर खुश हुआ। प्रभुजी की पूजा, आरती की बोलियाँ तो बहुत ही कम में जातीं, फिर भी मुझे पश्चात्ताप नहीं हुआ। दुःख नहीं हुआ कि 'ऐसा कैसे चलता है?' और तीनों देवों की बड़ी-बड़ी बोलियों में ताली बजाई, प्रशंसा की... दूसरों को भी वहाँ बड़ी बोलियाँ बोलने के लिए प्रेरित किया...

मेरे इन सभी पापों के लिए विशेष-विशेष रूप से मिच्छामी दुक्कड़।

मालिक के बदले नौकर को ज़्यादा मान-सम्मान नहीं दिया जा सकता।

राजा के बदले चौकीदार को ज़्यादा मान-सम्मान नहीं दिया जा सकता।

उसी प्रकार, प्रभु के बदले देवों को ज़्यादा मान-सम्मान नहीं दिया जा सकता।

परंतु विवेक चूककर मैंने यह काम किया है।

मेरे घर में सोफे पर दादाजी और पिताजी बैठे हैं। नीचे जमीन पर कोने में रामू बैठा है, जो घर का नौकर है। मैं घर में प्रवेश करता हूँ... और पिताजी-दादाजी को छोड़कर सीधे रामू के पास जाकर उसके पैरों में गिरता हूँ, उसके पैर दबाता हूँ... उसके गुण गाता हूँ... या पिताजी-दादाजी को केवल हाथ जोड़कर फिर रामू के चरणों में गिरता हूँ... पिताजी-दादाजी को कुछ नहीं देता और रामू को मिठाई देता हूँ... रामू को अच्छे-से-अच्छे कपड़े देता हूँ। पिताजी-दादाजी को १०० रुपये देता हूँ और रामू को १ लाख रुपये देता हूँ। यह सब कितना बेतुका लगता है, है न? मेरे भगवान मेरे पिताजी-दादाजी हैं, और ये देव रामू के स्थान पर हैं... और मैंने भयंकर मूर्खता की है, आशातना की है। अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(५) जैन देवी-देवताओं से थक-हारकर और अजैन देवी-देवताओं की ज़बरदस्त प्रसिद्धि और चमत्कार सुनकर मैं उस ओर मुड़ गया। संसार के दुःखों को दूर भगाने और संसार के सुखों को पास खींचने के लिए मैं अजैन देवी-देवताओं के पीछे भागता ही रहा।

मैंने शिरडी के साईबाबा को माना-पूजा है, मैंने अजमेर की दरगाह पर चादर चढ़ाई है, मैंने हनुमानजी के चरणों में मस्तक झुकाया है, मैंने तिरुपति बालाजी के यहाँ अपने बाल उतरवाए हैं, मैंने कृष्ण भगवान की बहुत भक्ति की है, मैंने शंकर-महादेव की अनगिनत पूजाएँ की हैं... वहाँ कभी सफलता मिली, तो श्रद्धा बढ़ी है और मेरी नीचता ऐसी कि हमारे प्रभु की भक्ति में असफलता मिली, तो प्रभु के लिए जैसा-तैसा सोचा, जैसा-तैसा बोला... पर अजैन देवताओं में असफलता मिली, तो भी वहाँ तो मेरी आशा अमर ही रही। 'मेरी भक्ति में कमी होगी' ऐसे विचार किए, यह सब मेरा घोर मिथ्यात्व था। मेरे इन सभी अपराधों के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(६) लक्ष्मीदेवी मुझ पर प्रसन्न रहें, इसके लिए मैं १४ सपनों की बोली के समय लक्ष्मी की बोली ही लेने का प्रयत्न करता, और अधिकतर मुझे मिल भी जाती थी। मन में घोर मिथ्यात्व बैठा हुआ था कि लक्ष्मी की बोली लूँगा, तभी मेरी लक्ष्मी टिकेगी और बढ़ेगी...

एक पर्युषण में म.सा. ने अंत में प्रभुजी को पधराने की बोली के समय समझाया कि 'आज हम सब प्रभु के जन्मवाचन के लिए एकत्र हुए हैं, जब वाचन होगा, तब प्रभुजी को पधराया जाएगा, और फिर भी यह बोली बहुत सस्ते में जाए और प्रभुजी की दासी ऐसी लक्ष्मी की बोली सबसे ज़्यादा हो... यह प्रभु की आशातना है। आपके मन में प्रभु से भी ज़्यादा लक्ष्मी के प्रति प्रेम दिखाई देता है, और यह मिथ्यात्व है...'

म.सा. ने बहुत समझाया, मैंने सामने दलील दी कि 'लक्ष्मी तो प्रभु की माता का स्वप्न है, इसलिए भक्ति से लेते हैं...' तब म.सा. ने मुझे प्रेम से कहा 'स्वप्न तो १४ हैं, आप केवल लक्ष्मी की ही बोली क्यों लेते हैं? यही बताता है कि स्वप्न से भी ज़्यादा लक्ष्मी प्यारी है। और दूसरी बात... यदि प्रभु की माता के स्वप्न प्यारे हैं, तो प्रभु तो सबसे अधिक प्यारे होने चाहिए न... तो प्रभु को पधराने की बोली ही लेनी चाहिए न, यानी जितने रुपयों में आप लक्ष्मी की बोली लेते हैं, उतने ही रुपयों में प्रभु को पधराने की क्यों नहीं लेते? यह मिथ्यात्व नहीं कहलाएगा?'

उसके बाद म.सा. जैसे मेरे मन का भाव समझ गए हों, वैसे बोले, 'आपको शायद ऐसा डर होगा कि लक्ष्मी की बोली नहीं लूँगा, तो मेरी लक्ष्मी चली जाएगी...' परंतु देखिए, आपको एक बात बताता हूँ। आज चेन्नई में जैन इंटरनेशनल वाले दिनेशभाई पिछले दस वर्षों से आराधनाभवन, साहुकारपेट में प्रभुजी को पधराने की ही बोली लेते हैं, हर बार ५-७-१० लाख रुपये की बोली होती है, सन् २०२५ में उनकी प्रेरणा से चेन्नई में कुल ७ संघों में लक्ष्मी से बड़ी प्रभुजी की बोली गई है। अहमदाबाद लक्ष्मीवर्धक जैन संघ में गौरवभाई पिछले १४ वर्षों से एक काम करते हैं। लक्ष्मी की जितनी बोली गई हो,

उससे आगे से ही वे प्रभुजी की बोली शुरू करते हैं... और इतने वर्षों से उनकी लक्ष्मी घटने के बजाय बढ़ी ही है, आप क्यों व्यर्थ डरते हैं?

और हर दिवाली पर लक्ष्मीपूजन करने वाले हज़ारों लोगों ने अपनी लक्ष्मी बड़ी संख्या में गँवाई भी तो है... तो वहाँ लक्ष्मीदेवी ने क्या किया?...

कर्मों का खेल समझिए, यदि निकाचित पापकर्म का उदय होगा, तो लक्ष्मी की बोली लेने के बाद भी लक्ष्मी जाएगी, नहीं लेंगे तो भी जाएगी। लक्ष्मीपूजन करने के बाद भी लक्ष्मी जाएगी, नहीं करेंगे, तो भी लक्ष्मी जाएगी...

म.सा.! वह बात मेरे मन में बैठ गई, उसके बाद तो मैंने लक्ष्मी की बोली ली हो या न ली हो, फिर भी लक्ष्मी से ज़्यादा प्रभुजी की बोली आगे से ही शुरू करवाई है... मेरी लक्ष्मी बढ़ी ही है, घटी नहीं... पर पहले मैंने जो कुछ भी भूल की, उसके लिए विशेष रूप से मिच्छामि दुक्कडं। अब तो मेरी श्रद्धा ऐसी दृढ़ हो गई है कि लक्ष्मी चली भी जाए, तो भी लक्ष्मी की बोली प्रभुजी से बढ़ी तो नहीं ही लूँगा, उसकी अनुमोदना भी नहीं करूँगा...

(७) हर दिवाली पर मैं लक्ष्मीपूजन करता था, उसमें लालच लक्ष्मी का ही था। उस दिन मेरे प्यारे प्रभु वीर निर्वाण को प्राप्त हुए, मुझे तो उसी की आराधना करनी थी। पर तब ऐसी कोई सद्बुद्धि नहीं थी। जिन प्रभु ने मुझे जिनशासन दिया, उन्हीं प्रभु के मृत्यु के दिन मैं प्रभु को गौण करके लक्ष्मी के पीछे दौड़ता था। यह मेरी बड़ी मूर्खता थी। यह तो हमारे संघ में आए एक साधु ने हमें समझाया कि 'क्यों लक्ष्मी के पीछे भागते हो? लक्ष्मी ऐसी है कि तुम उसके पीछे भागोगे, तो वह अभिमानी बनकर तुम्हें 'हट् हट्' करेगी। और तुम उसकी उपेक्षा करोगे, तो वह तुम्हारे पीछे पड़ेगी... और तुम्हें पूजन करना ही है, तो गौतमस्वामीपूजन करो, वे तो अनंतलब्धि के भंडार हैं, उनकी पूजा-भक्ति से जो फलेगा, वह लक्ष्मीपूजन से तो अनंतगुणा होगा। लक्ष्मी तो मिलेगी ही। उसके साथ-साथ प्रभुसमर्पण, स्वाध्याय, श्रद्धा आदि अनेक गुण मिलेंगे।'

उनके समझाने के बाद मैंने लक्ष्मीपूजन छोड़कर गौतमस्वामीपूजन का प्रारंभ कर दिया है। पर वर्षों तक जो लक्ष्मी को पूजने की भूल की, उसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(८) मुझमें इतना अज्ञान था कि म.सा. के पास थाली में पुस्तक आगम-शास्त्र हो, तो मैं वहाँ ५०-१००-५०० रुपये तो रखता, पर फिर वासक्षेप लेकर उस ज्ञान की पूजा करने के बजाय मैंने जो नोट चढ़ाए थे, उनकी पूजा करता था। एक बार म.सा. ने समझाया कि 'अरे, भाग्यशाली! तुम ज्ञान की पूजा कर रहे हो? या लक्ष्मी की? ज्ञान पूजनीय है, लक्ष्मी पूजनीय नहीं है। ज्ञान के लिए लक्ष्मी छोड़कर ज्ञान पर वासक्षेप करना चाहिए।'

बस, उसके बाद मैं हमेशा के लिए ज्ञान पर ही वासक्षेप करने लगा। पर अब तक ज्ञान के बदले लक्ष्मी को पूजा, उसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(९) पहले कोई समझ नहीं थी, तो मैंने तीर्थस्थानों में जाकर भयानक पाप किए हैं।

- चॉकलेट-बिस्कुट-वेफर आदि खाते-खाते शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा की है।
- यात्रा करते-करते या धर्मशाला में मूवी के गाने सुने, मोबाइल में मूवी-सीरियल आदि देखे हैं, उसमें गंदे दृश्य भी अनेक बार देखे हैं।
- धर्मशाला में पत्नी के साथ मैथुन सेवन करके तीर्थ को अपवित्र किया है।
- पर्वत पर एकांत में जाकर पत्नी के साथ अनुचित चेष्टाएँ की हैं।
- तीर्थभूमियों में जाकर बाहर होटल में, ठेले पर अभक्ष्य खाया है, आइसक्रीम आदि खाई है। भोजनालय होने के बावजूद केवल जीभ के चटखारे के लिए मैंने ऐसे काम किए हैं। पावभाजी, चाइनीज, साउथ इंडियन, पंजाबी... सब कुछ खाया है। उसमें जमीनकंद भी आ गया। और चीज़-बासी आदि सब कुछ आ गया।
- तीर्थभूमियों में रात्रिभोजन किया है।

- तीर्थभूमियों में पत्ते खेले हैं, मोबाइल पर तरह-तरह के गेम खेले हैं।
- तीर्थभूमियों में गालियाँ भी दी हैं, और अपशब्द भी बोले हैं...
- तीर्थभूमियों में गुस्सा होकर मैनेजर, नौकर, वेटर आदि से झगड़े भी किए हैं...
- तीर्थभूमियों में संतानों को मारा है...
- तीर्थभूमियों में परस्त्रियों को तिरछी नज़र से देखा है, उनके अंग-प्रत्यंग देखे हैं...

ऐसी तो घोरातिघोर आशातनाएँ मैंने तीर्थभूमियों में की हैं... हमारे संघ में पधारे म.सा. ने हमें बहुत अच्छी तरह समझाया था कि प्राचीन या नूतन तीर्थों में प्रभु की ऊर्जा अपरंपार होती है। उसका असर सभी जीवों पर होता है। इसलिए तीर्थ की पवित्रता की रक्षा अत्यंत आवश्यक है। जैन पवित्र तीर्थभूमियों में जाकर वहाँ आशातना, विराधना करके उसकी ऊर्जा को घटा देते हैं... हम तीर्थरक्षा के लिए दूसरों से बाद में लड़ेंगे, पर सबसे पहले तो हम अपने आप से ही लड़ लें... यह अधिक उचित है..'

म.सा.! उस प्रवचन का मेरे मन पर गहरा असर हुआ। मैंने तब से प्रतिज्ञा ली है कि पूर्व में बताए गए कोई भी पाप तीर्थभूमि में तो नहीं ही करूँगा। कम से कम उस तीर्थ के तीन किलोमीटर का क्षेत्र छोड़ने के बाद मुझे कुछ करना हो, खाना-पीना हो... तो छूट! उसे भी संभव हो, तो टालने की कोशिश की।

मेरी प्रतिज्ञा इस प्रकार है:

- तीर्थभूमियों में रात्रिभोजन नहीं करूँगा।
- तीर्थभूमियों में अभक्ष्य-होटल-ठेला... यह सब नहीं खाऊँगा...
- तीर्थभूमियों में ब्रह्मचर्य का कड़ाई से पालन करूँगा।
- तीर्थभूमियों में कोई भी मूवी, सीरियल, क्रिकेट आदि नहीं देखूँगा...

- तीर्थभूमियों में कोई भी गेम नहीं खेलूंगा।
- तीर्थभूमियों में मोबाइल आदि में कोई भी बुरे दृश्य नहीं देखूंगा...
- तीर्थभूमियों में चाहे जो हो जाए, पर किसी के साथ झगड़ा नहीं करूंगा...
- तीर्थभूमियों में गुस्से में या मज़ाक में गाली या अपशब्द नहीं बोलूंगा...
- तीर्थभूमियों में संतानों पर या किसी पर भी हाथ नहीं उठाऊंगा...
- तीर्थभूमियों में स्वस्त्री या परस्त्री को गंदी नज़र से नहीं देखूंगा...

इतनी प्रतिज्ञा का एकदम कड़ाई से पालन करता हूँ... और उसका परम आनंद है।

(१०) मैं वैसे भी प्रमादवश जिनपूजा नहीं करता था, उसमें भी मैंने अपने एक धार्मिक मित्र से सुना कि 'जिनपूजा में तो पानी के-फूलों के-अग्नि के-वायु के ऐसे ढेरों जीवों की हिंसा होती है, तो ऐसी पूजा कैसे की जाए?' इसलिए मैंने हमेशा के लिए पूजा बंद कर दी। मुझे किसी साधु ने नियम भी दिया कि 'पूजा न करना।' कुछ समय बाद संघ में एक महात्मा पधारे, उन्होंने प्रवचन में बहुत ही सुंदर तरीके से समझाया कि 'यदि जिनपूजा में हिंसा होने के कारण उसे न किया जाए, तो प्रवचन सुनने के लिए कार-स्कूटर पर जाने में भी हिंसा है... तो उस तरह नहीं जाना चाहिए। पैदल चलकर ही प्रवचन सुनने जाना चाहिए। साधर्मिक भक्ति - साधर्मिक वात्सल्य भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसमें भी हिंसा है। इसलिए यह बात ठीक नहीं है। काँटे से काँटा निकलता है, जिनपूजा संबंधी हिंसा होती है, तो भी जीव बड़ी हिंसाओं से बचता है, जिनपूजा करते-करते भाव बढ़ते हैं। जिन की तरह सर्वहिंसा-त्यागी बनने का मन होता है, दीक्षा प्राप्त होती है, हमेशा के लिए सर्वहिंसा दूर होती है।'

उन्होंने विस्तार से सारी बातें समझाई, उससे मेरी शंकाएँ दूर हुई, और प्रभु के गुण सुनकर मुझमें पूजा करने का भाव भी बहुत बढ़ गया। उसके बाद तो मैंने रोज़ पूजा की

है। बाहरगाँव जाता हूँ, तो भी जिनपूजा अवश्य करता हूँ... प्रायः आज तक पिछले दस वर्षों में बीस दिन ही जिनपूजा छूटी होगी। मैंने पहले जिनपूजा को बुरा माना, पाप माना... उन सब पापों के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

(११) शुरुआत में मैं ज्ञानियों के संपर्क में नहीं था, मानवतावादी अज्ञानी लोगों के संपर्क के कारण मैं स्वयं ऐसा मानने और बोलने लगा था कि 'यह देरासर बनाने की क्या ज़रूरत है? इंसान भूखे मर रहे हैं, तब पत्थरों में पैसे क्यों डालने... भगवान को कहाँ बड़े मंदिरों की, मिठाई की, फलों की ज़रूरत है?...’ इस तरह मैंने कई लोगों के सामने देरासर की निंदा की थी। पर ज्ञानी गुरु मिले, उन्होंने मुझे समझाया कि 'गरीबों को पैसे की जितनी ज़रूरत है, उससे ज़्यादा तो पुण्य की ज़रूरत है, पुण्य नहीं है, इसीलिए तो वे गरीब बने हैं। पैसे आएँगे, पुण्य नहीं दोगे, तो पैसे ज़्यादा टिकने वाले नहीं हैं, वे गरीब ही रहने वाले हैं। हम उन्हें पुण्य देना चाहते हैं। प्रभु प्रचंड पुण्य के स्वामी हैं, तो प्रभु-पूजा-दर्शन-भक्ति करने से प्रचंड पुण्य मिलता ही है। इसी के लिए हम देरासर बनवाते हैं। हाँ! जहाँ देरासर हो, वहाँ दूसरा देरासर बनवाने की बात हम नहीं करते... और मुख्य बात यह है कि जगह-जगह होटल खुलते हैं, थिएटर बनते हैं, पान के गल्ले खुलते हैं, मॉल बनते हैं... इसका तो कोई विरोध नहीं करता...

नहीं करता। तो फिर पाप के इन साधनों के विरुद्ध लोगों को बचाने के लिए जगह-जगह मंदिर, उपाश्रय, भोजनशाला, आंबिलशाला... आदि भी तो होने ही चाहिए न?... जितनी होटलें हैं, उतनी भोजनशाला-आंबिलशाला हैं क्या?...’ उन्होंने मुझे कई युक्तियाँ दीं, जिनके कारण मेरा मन स्पष्ट हो गया। मेरे मन में दृढ़ श्रद्धा बैठ गई कि 'मंदिर-उपाश्रय आदि बनाने ही चाहिए... साथ ही, गरीबों की देखभाल तो की ही जाती है। जैन लोग गरीबों के लिए प्रचुर मात्रा में काम करते ही हैं...' मुझे इस पूरी बात का अनुमान हो गया, और इसी कारण अब मैं सभी को मज़बूत जवाब देता हूँ, लेकिन उस समय मैंने जो विरोध किया था, उसके लिए मैं अंतर्मन से मिच्छामी दुक्कडं।

(१२) जैनेतर लोगों के संपर्क के कारण मैंने गाय को माता मान लिया, और भक्ति भाव से एक बार उसका गोबर भी चखा। जहाँ कहीं भी गाय खड़ी दिखती, तो मैं उसे हाथ से स्पर्श करके हाथ सिर पर लगाता। जब जीव बचाने की बात आती, तो हिन्दू पहले गाय को ही बचाने की बात करते, वे अन्य सभी पशुओं को उतना महत्त्व नहीं देते थे। उनके संपर्क के कारण मैं स्वयं भी ऐसा ही सोचने लगा था। परंतु जब मैंने साधु भगवंत के प्रवचन सुने, तो उन्होंने बहुत सुंदर विवेक दिया कि 'हमें तो गाय-भैंस-कुत्ते-ऊँट आदि सभी जीवों पर दया करनी है। सभी को बचाना है। पूर्व के जैनेतर ऋषियों ने गाय को माता और पूजनीय कहा... इसका कारण तो यही था कि केवल गाय के सहारे पूरे परिवार का निर्वाह हो सकता है, गाय का दूध अत्यंत गुणकारी, गाय का मूत्र भी अत्यंत गुणकारी और गाय का गोबर भी अत्यंत गुणकारी होता है... इसके अलावा, वास्तव में गाय कोई माता नहीं है। अब जीवदया के लिए तो प्रत्येक जीव को बचाना है...'।

बस, उसके बाद मेरा भ्रम टूट गया। 'पहली रोटि गाय को।' मैं ऐसा करता था, उसके बजाय मैंने 'पहली रोटि पशु को...' इस तरह अर्थ करना शुरू कर दिया... लेकिन वर्षों तक मेरे इस मिथ्यात्व के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(१३) 'पार्श्वप्रभु संसार के दुःखों को दूर करके सुख देते हैं... इसलिए वे प्रभु सबसे महान हैं! बाकी के प्रभु कम...' इस तरह मैंने सर्वज्ञ-वीतराग तीर्थंकरों की भक्ति में भी भेद कर दिया। व्यवहार में भले ही मैं उन-उन प्रभु की पूजा-भक्ति करूँ, परंतु निश्चय में तो मेरे मन में यह Fix होना ही चाहिए कि 'ये सभी तीर्थंकर सर्वज्ञ-वीतराग होने के कारण समान हैं। पुण्योदय में भले ही अंतर हो, परंतु केवल उतने से उन आत्माओं की गुणवत्ता में कोई भेद नहीं है। और मुझे पुण्य से नहीं, गुणों से मतलब है। संसार के सुखों के लिए प्रभु के पास दौड़ना बाल-अवस्था में ठीक था, अब तो मुझे प्रभु के पास केवल और केवल गुणों के लिए ही जाना है।' यह सारा विवेक अब मुझमें है, परंतु पहले यह विवेक मुझमें नहीं था। इसी कारण मैंने तीर्थंकरों में भी भेद की कल्पना की,

किसी को बहुत अच्छा माना, किसी को कम... इस अविवेक के लिए विशेष रूप से मिच्छामी दुक्कडं।

(१४) जैन साधु-साध्वियों के लिए मैंने ऐसे शब्द कहे हैं कि 'ये सब तो समाज पर बोझ हैं। देश पर भी बोझ हैं। एक रुपया कमाते नहीं, देश को कुछ देते नहीं, समाज से एकदम मुफ्त में गोचरी-पानी लेते हैं। इस तरह भिखारी बनकर जीना कितना उचित है?'

मैंने यह भी प्रचार किया कि 'अपने माँ-बाप को इस तरह छोड़ देना कहाँ का न्याय है? माँ-बाप ने उन्हें जन्म देकर पाला-पोसा, अब जब माँ-बाप की सेवा करने का अवसर आया, तो उन्हें अनाथ छोड़कर दीक्षा ले लेना बिल्कुल उचित नहीं है। भविष्य में उन माँ-बाप की देखभाल कौन करेगा? उन्हें वृद्धाश्रम में ही रखना पड़ेगा न! ऐसा भी कोई धर्म होता है क्या?'

मैंने यह भी कहा कि 'इस तरह ढेर सारे लड़के-लड़कियाँ दीक्षा ले लेंगे, तो जैनों की संख्या घटने लगेगी। क्योंकि ये युवा-युवतियाँ साधु-साध्वी बन जाने से अब संतान को तो जन्म देंगे नहीं। वैसे भी जैनों की आबादी कम है, और ऊपर से इन दीक्षाओं के बढ़ने के कारण जैन आबादी और भी कम हो जाएगी...'

मैंने कुछ बुरे शब्द भी कहे कि 'दीक्षा लेकर ये सब हराम की हड्डी के हो जाते हैं। कोई ज़िम्मेदारी नहीं, कोई काम नहीं। हराम का खाना-पीना, पड़े रहना, घूमते रहना।'

तीन टाइम गोचरी वापरने वाले साधु-साध्वी के लिए मैंने पेटू जैसे शब्द इस्तेमाल किए हैं। इन सभी पापों के लिए मैं बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

जब मेरा सुगुरु से संपर्क हुआ, मैंने उनके प्रवचन सुने, तब मेरे सारे भ्रम टूट गए। उन्होंने मुझे समझाया कि 'ये साधु-साध्वी ही हज़ारों लोगों को हिंसा-चोरी-लूटपाट-व्यभिचार-बलात्कार-व्यसनों आदि बड़े पापों से बचाते हैं, और इस तरह समाज को शुद्ध रखने

का काम करते हैं। समाज को सज्जनों की भेंट देने का उत्कृष्ट कार्य साधु-साध्वी करते हैं। देश को अच्छे नागरिक देने का काम साधु-साध्वी करते हैं।

उन्होंने मुझे समझाया कि 'हमारे सैनिक देश की रक्षा के लिए अपने परिवार को छोड़कर लड़ने जाते हैं, जान दे देते हैं। वहाँ उन्होंने भले ही अपने परिवार को छोड़ा, लेकिन देश के लाखों परिवारों को बचाया। बस, उसी तरह संयमी अपने माँ-बाप को भले ही छोड़ दें, पर सबको सच्चा ज्ञान देकर समाज के हज़ारों-लाखों लोगों को बचाते हैं... वे संयमी हज़ारों संतानों को माँ-बाप का महत्त्व समझाते हैं, जिसके कारण वे हज़ारों संतानें अपने माँ-बाप की सेवक बनती हैं... इससे हज़ारों माँ-बाप परम शांति पाते हैं। तो अपने एक माँ-बाप को त्यागकर दीक्षा लेने वाले संयमी समाज के हज़ारों माँ-बाप के सहायक तो बनते ही हैं न! भारत भर में हर साल होने वाले हज़ारों शिविरों को आप देख आइए। हर जगह आपको यही हकीकत देखने को मिलेगी। और अवसर आने पर वे अपने माँ-बाप की भी (यदि उनका कोई दूसरा बेटा न हो तो) देखभाल करते हैं। आज १८,००० संयमी हैं, उनमें से ९९% संयमी तो ऐसे हैं जिन्हें माँ-बाप ने अनुमति दी है, और उसके बाद उन्होंने दीक्षा ली है।'

उन्होंने मुझे समझाया कि 'हर साल २००-३०० दीक्षाएँ होती हैं। मान लीजिए कि वे दीक्षा न लेते, तो वे सभी आज के ट्रेंड के अनुसार दो-दो बच्चों के माँ-बाप बनते। यानी $300 \times 2 = 600$ जैन उनकी ओर से जिनशासन को मिलते। अरे, यह बात छोड़िए, १८,००० संयमी हैं, अगर उन सबने विवाह किया होता, तो $18,000 \times 2 = 36,000$ संतानों को जन्म देते। यानी कुल ३६,००० जैन पिछले ५० वर्षों में जिनशासन को मिलते। (उनके बच्चों के बच्चे होते... यह सब सोचें तो ५०,०००...) लेकिन अगर एक भी संयमी न होता, तो लोगों को प्रेरणा देकर गर्भपात रुकवाने वाला कोई नहीं रहता। तो इन ५० वर्षों में ५०,००० गर्भपात होते, तो भी आश्चर्य नहीं। और यदि संयमी न होते, तो कोई सही समझ देने वाला न होने के कारण हज़ारों जैन जैनधर्म छोड़कर क्रिश्चियन-मुस्लिम बन ही जाते...

यानी १८,००० संयमियों ने भले ही स्वयं संतानों को जन्म नहीं दिया, पर हज़ारों गर्भपातों को रोककर और हज़ारों जैनों को धर्मांतरण करने से रोककर जैनों की संख्या को उस तरह बनाए रखने और बढ़ाने का काम किया ही है।'

उन्होंने मुझे समझाया कि 'तबीयत खराब होने आदि कारणों से संयमी तीन टाइम भी वापरते हैं। पर हज़ारों अभक्ष्य का तो उन्होंने त्याग किया ही है न! वह त्याग तो देखिए, और इसके अलावा भी हज़ारों घोर तपस्वी संयमियों को तो देखिए। आज जिनशासन में लगभग ३०० से भी ज़्यादा संयमी ऐसे हैं, जिन्होंने ज़िंदगी के साढ़े चौदह साल आंबिल करके १०० ओलि पूरी की हैं। इन सबको तो नज़र के सामने लाइए।'

मैंने पू. हेमवल्लभसूरिजी के लगातार १०,००० आंबिल के बारे में सुना, मैंने पू.सा. हंसकीर्तिश्रीजी की ३७५ ओलि के बारे में सुना। और ऐसे घोर से घोर तपस्वियों को देखा। बस, उसके बाद संयमियों के प्रति मेरा सद्भाव-अहोभाव-आदर अत्यंत बढ़ गया। अब मुझे कुछ ऊँच-नीच दिखाई भी दे, तो भी मैं निंदा-आलोचना में नहीं पड़ता। माध्यस्थ्यभाव धारण कर सकता हूँ... मैं उन महात्मा का बहुत उपकार मानता हूँ। उन्होंने मुझे जो समझाया था, उसमें से मैंने तो यहाँ मुश्किल से १% ही लिखा है। वैसे तो आलोचना में यह सब नहीं लिखना चाहिए, पर अपने परिवर्तन का कारण दर्शाने के लिए मैंने यह लिखा है। मुझे बहुत खुशी है... मैं संयमियों की आशातना से बच गया...

(१५) किसी साधु के चौथे व्रत से जुड़ी गड़बड़ी वाले वीडियो मैंने मोबाइल में देखे। मुझे बहुत गुस्सा आया। मैंने वह वीडियो वायरल कर दिया, मैं अनाप-शनाप बोल रहा था। 'इन साधुओं को तो घर ही भेज देना चाहिए। शादी करके अपनी पत्नी को भोगो न, दूसरी स्त्रियों पर क्यों नज़र खराब करते हो?' मेरी इस प्रवृत्ति के कारण हज़ारों लोगों की साधुओं के प्रति श्रद्धा टूट गई, वे धर्म से दूर हो गए, यह मेरी ही गलती थी। एक साधु की गलती को फैलाने से हज़ारों लोगों को नुकसान हुआ। वर्षों तक मुझे इस बात का कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। पर एक बार म.सा. ने हमें प्रवचन में कहा कि 'मान

लीजिए कि आपकी बेटी किसी मुस्लिम या अन्य युवक के साथ गलत काम करे, तो आप क्या करेंगे? उसके फोटो वायरल करेंगे? नहीं न! क्योंकि आपको अपनी बेटी प्यारी है, उसकी इज़्ज़त जाएगी, तो साथ में आपकी भी इज़्ज़त जाएगी। आप बेटी को समझाएंगे, धमकाएंगे, मारेंगे, कड़े कदम उठाएंगे... पर यह बातें सार्वजनिक तो नहीं ही करेंगे। बेटी के लिए आपका प्रेम तो बना ही रहता है...'

उसी प्रकार, ये संयमी आपकी संतान हैं। यदि वे भूलें करें, तो उसे वायरल नहीं करना चाहिए। आप संयमी को समझाएँ, न समझें तो धमकाएँ, कठोर कदम उठाएँ... पर उनकी बातें फैलानी नहीं चाहिए। आप उनके माँ-बाप हैं...' एक घंटे तक उन्होंने बड़े भावुक होकर यह प्रवचन दिया। मुझे अपनी भूल याद आई, घोर पश्चात्ताप हुआ। एक-दो साधुओं की भूलों को अखबारों में या मीडिया पर चढ़ाकर मैंने कितनी गंभीर भूल कर दी, इससे जिनशासन की कितनी हीलना हुई... मुझमें इतनी कॉमनसेंस नहीं आई कि दो-पाँच-दस हज़ार मुसलमान आतंकवाद करें, दंगे करें, तो उससे करोड़ों मुसलमान बुरे नहीं हो जाते, कुछ भारतीय धोखेबाज़ हों, तो उससे सभी भारतीय बुरे नहीं हो जाते... उसी तरह, उंगलियों पर गिने जा सकने वाले संयमियों की पाप-लीलाओं को देखकर सभी संयमियों को पापी मान लेने या मानने की भूल मुझे नहीं करनी चाहिए थी। मैंने निश्चित रूप से गंभीर भूल ही की है, उसके लिए मि. दुक्कंड। उसके बाद तो मैंने संकल्प कर लिया है। संयमियों की कोई भी नेगेटिव बात किसी से भी नहीं कहूँगा... और पर्सनली उन्हें सुधार सकूँ, तो ठीक... नहीं तो माध्यस्थ्यभाव धारण करूँगा... शांत ही रहूँगा...

(१६) किसी साधु ने एक युवक को उसके परिवार की इजाज़त के बिना दीक्षा दी, • किसी आचार्य ने एक युवती को उसके परिवार की इजाज़त के बिना दीक्षा दी, • किसी आचार्य ने छोटे बच्चों को दीक्षा दी, जिसमें उनके परिवार की हाँ तो थी, पर वह परिवार मध्यम या गरीब था... ऐसा सब जब-जब हुआ, तब-तब मेरा बॉयलर फटा है। मैंने उस परिवार के साथ साधु के पास जाकर साधु से झगड़ा किया है, उस युवती के परिवार के

साथ जाकर साध्वीजी को बहुत फटकार लगाई है, और उस युवती को दीक्षा छुड़वाकर वापस घर ले आया हूँ। उसे साध्वीजी के कपड़ों में ही मैंने स्पर्श किया है, क्योंकि वह हमारी रिश्तेदार थी, और परिवार ने मुझे ही यह काम सौंपा था। मेरी दादागिरी और मेरी गालियों के सामने साध्वियाँ बुरी तरह डर गईं और उन्होंने मुझे रोका नहीं। कुछ डरपोक साध्वियाँ तो रो भी पड़ीं, वह युवती भी बहुत रोई, पर मैंने निष्ठुर बनकर उसकी माँ-बहन द्वारा उसे वापस संसारी कपड़े पहनाए... मेरे सिर पर जुनून सवार हो गया था। बस, उसके बाद तो उसकी शादी भी हो गई और आज वह तीन संतानों की माँ है। और बाल-दीक्षाओं का भी मैंने कड़ा विरोध किया कि 'ये हमारे साधुड़े बच्चों को चॉकलेट-बिस्किट-गेम देकर बहलाते हैं, और नादान बच्चे दीक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं। उनके माँ-बाप को भी समझा-बुझाकर, लाखों रुपये खिलाकर चुप करा दिया जाता है, 'आपका बेटा तो महान आचार्य बनेगा, उसके ज्योतिष के ग्रह ज़ोरदार हैं।' ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करके माँ-बाप को गुमराह किया जाता है और माँ-बाप अपने बच्चों को बेच देते हैं।'

मेरी भाषा तलवार की धार जैसी तीखी थी, मेरी बातें सुनकर सैकड़ों लोगों ने उन साधुओं की और ऐसी दीक्षाओं की कड़ी निंदा की।

मेरा परम सौभाग्य इतना ही है कि मुझे वर्षों बाद ही सही, सुगुरु मिले। उन्होंने मुझे समझाया कि 'हमारी बेटियों को विधर्मी फुसलाकर, पटाकर, प्यार की मीठी बातें करके उठा ले जाते हैं... आपने वहाँ जाकर ऐसी धमाचौकड़ी मचाकर, ऐसी एक भी बेटा को वापस लाकर दिखाया है क्या? चलिए, अभी भी ऐसी एकाध बेटा को भी वापस ला सकते हैं क्या? वहाँ मेहनत भी की कभी? नहीं न! क्योंकि आप विधर्मियों से डरते हैं। वे तो आपको ही मार डालेंगे... और यहाँ जैन साधु-साध्वी तो सब शांत... वे आपको मारने वाले तो हैं नहीं। वे कैसे भी अपशब्द भी नहीं बोलेंगे... इसीलिए आप सफल हो गए न! विधर्मी के यहाँ फुसलाए जाने पर गई बेटा का तो भविष्य बर्बाद ही है। यहाँ दीक्षा लेने वाले युवा-युवती का भविष्य तो अच्छा है... किसी साधु या आचार्य ने

परिवार को समझाने की विशेष मेहनत किए बिना दीक्षा दे दी हो, तो यह मान लेते हैं कि अनुचित है... परंतु अंततः वे साधु या साध्वी कोई बुरा जीवन तो नहीं ही जिएंगे न, पढ़-लिखकर संघ-समाज का हित ही करेंगे न, इस बात पर आप ध्यान क्यों नहीं देते? और विधर्मियों के यहाँ भागी हुई बेटी का तो सत्यानाश है... वहाँ आप कुछ क्यों नहीं करते?... और मान लीजिए कि किसी ने शिष्य के लालच में बच्चे को फुसलाकर दीक्षा दी, उसके माँ-बाप को पैसे दिए... भले ही यह बुरा है, पर इसका चारों ओर दुष्प्रचार करना कोई रास्ता नहीं है। आप साधु को समझाइए, पर साधु-समाज बदनाम हो, ऐसा न करें।’

मुझे अपनी गलतियाँ समझ में आईं। मैं अपनी गलतियों के लिए सच्चे मन से माफी माँगता हूँ... फिर कभी भी ऐसी गलतियाँ नहीं करूँगा... चाहे कुछ भी हो जाए, मैं अपने सुगुरु के मार्गदर्शन के अनुसार ही प्रवृत्ति करूँगा...

(१७) वर्षी तप के बेसणा में, सिद्धि तप के बेसणा में, छरी पालित संघ के रसोड़ों में, पालिताणा-शंखेश्वर आदि में चातुर्मास के दौरान के रसोड़ों में, उपधान के रसोड़े में, नव्वाणु यात्रा के रसोड़ों में, अंजनशलाका-प्रतिष्ठा के रसोड़ों में मैंने कई बार संयमियों को गोचरी वोरते हुए देखा है। उस समय मुझे दुर्भाव भी हुआ है कि ‘ये लोग इतना सब कुछ ले जाते हैं। कितना खाते होंगे? और अच्छी-अच्छी आइटम ही लेते हैं। सामान्य मिठाई तो वोरते ही नहीं। फरसाण-सब्जी आदि सभी में ऐसा ही है, फ्रूट्स में भी ऐसा है। यदि उन्हें इतनी ज़्यादा आसक्ति है, तो साधुओं में और हममें क्या फर्क?’

इस बारे में मैंने दूसरों के सामने निंदा भी की है। फिर तो मुझे उनका दोष देखने की बुरी आदत ही पड़ गई और उसके कारण मुझे काफी नुकसान हुआ। मैं संयमियों का निंदक, दुश्मन ही बनकर रहा। मुझे अपने इस पाप का कभी पश्चात्ताप न होता, पर बीच में मैंने उपधान किए, तब नीवी के दिन मुझे ‘खाऊँ-खाऊँ’ बहुत होता था। नीवी में ४० आइटम होती थीं, फिर भी मेरा पेट नहीं भरता था, मुझे आइसक्रीम-कोल्डड्रिक्स...

इन सबकी बहुत याद आती थी। उस समय मुझे विचार आया कि 'मुझे भी खाने की इतनी आसक्ति होती है, तो वे संयमी भी आखिर हममें से ही दीक्षा लेकर गए हैं न! तो उन्हें ऐसी आसक्ति हो सकती है। वे कोई भगवान नहीं हैं...'

और म.सा. ने भी मुझे समझाया कि 'यह पंचमकाल है, इस काल में अत्यंत वैरागी संयमियों की संभावना कम ही रहेगी। खाने जैसी एक तुच्छ बात के लिए किसी पर दुर्भाव नहीं करना चाहिए। कितने ही संयमी नित्य एकासणा, आंबिल आदि करते हैं, वह देखना चाहिए। कैसी भी परिस्थिति हो, पर वे हज़ारों अभक्ष्यों में से एक भी नहीं खाते, यह उनकी कैसी महानता है! भूख-प्यास हद पार कर जाए, तो भी रात में नहीं ही खाना-पीना... इसके लिए एकदम दृढ़ निश्चय!'

ऐसी कई बातें उन्होंने समझाईं। उन्होंने यह भी कहा कि 'संयमियों की भूल नहीं है, ऐसा नहीं है। उन्हें विवेक रखना ही चाहिए, और इसके लिए उन्हें प्रेरणा भी दी ही जाती है। पर श्रावकों का कर्तव्य क्या है? यह तो आप समझिए...'

अब तक मैंने संयमियों की गोचरीचर्या के बारे में की गई निंदा-आलोचना-मज़ाक आदि के लिए मैं अंतर्मन से बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं माँगता हूँ।

(१८) संयमियों के मैले कपड़े देखकर मुझे दुर्भाव हुआ, और जब मैं उनके पास गया, तो दुर्गंध आने से अत्यंत दुर्भाव हुआ। फिर उनके पास जाने का मन ही नहीं होता था। मन में बहुत विचार आए कि 'क्यों ऐसे मैले कपड़े पहनते हैं? थोड़े साफ कपड़े पहनें तो क्या हर्ज़ है?'

बिगड़े हुए दाँत देखकर भी दुर्गंधा हुई कि 'दंतमंजन तो करना चाहिए न... यह कैसा गंदा धर्म है!'

संयमियों की साँस और मुँह से भयंकर गंध आने पर विचार किया कि 'माउथ-वॉश का उपयोग क्यों नहीं करते?'

यह भी लगा कि 'खाने में ध्यान नहीं रखते, इसीलिए उनका पेट खराब रहता है, इसी कारण ऐसी दुर्गंध आती है।'

कभी संयमियों के पास बैठा था, तब वायु-त्याग की लंबे समय तक ज़ोर की आवाज़ सुनकर भी घिन आई। कभी मज़ाक भी किया 'म.सा.! बैंड कम बजाओ।' कभी संयमी के वायु-त्याग की अति भयंकर दुर्गंध के कारण बहुत दुर्भाव हुआ...

ऐसी अनेक प्रकार की दुर्गंध मैंने की हैं, उन सबके लिए मि. दुक्कंड। मुझे सुगुरु ने समझाया कि 'आप गर्म भोजन वापरते हैं, हमें तो गोचरी में जो आए, वह वापरना होता है... और वह तो घूम-फिरकर लाते-लाते ठंडा हो ही गया होता है, उसे वापरने से गैस आदि होने की संभावना है ही। और ऐसी सब दुर्गंध की समस्या तो १८,००० में से १८०० को भी नहीं होगी। जैसा जिसका शरीर! और संसारी तो अपने शरीर की सारी देखभाल करते हैं, फिर भी उनके मुँह से रोज़ सुबह दुर्गंध आती ही है। मैले वस्त्र संयमी के ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए हैं। संयमी आकर्षक न दिखें, यह ज़रूरी है। हाँ! जो शहरों में रहते हैं, उन संयमियों का विवेक रखना आवश्यक है। वे न तो अत्यधिक मैले और न ही अत्यधिक साफ पहनें, बल्कि मध्यम वस्त्र पहनना उचित है। पर कोई संयमी भूल करे, तो उसमें दुर्भाव न करें... मन खराब न करें। शरीर पुद्गल है, और पुद्गल का स्वभाव ही है कि वह बिगड़े नहीं तो आश्चर्य!'

प्रवचन सुनने के बाद मुझमें काफी विवेक आया। हम रोज़ स्नान करने वाले, पाउडर आदि लगाने वाले, साबुन-शैम्पू इस्तेमाल करने वाले हैं, इसलिए हमें सामान्य मैल-दुर्गंध के कारण दुर्गंध आने ही वाली है... पर उसके लिए संयमी अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा में, अपने पवित्र आचारों की रक्षा में कॉम्प्रोमाइज़ क्यों करें? हम अपने शरीर को संभालने में कभी कॉम्प्रोमाइज़ नहीं करते। एक दिन भी स्नान नहीं छोड़ते, एक दिन भी तीन वक्त में से एक वक्त का खाना नहीं छोड़ते। एक दिन भी गर्मी में ए.सी.-पंखे नहीं छोड़ते, एक दिन भी पलंग छोड़कर संथारे पर नहीं सोते। एक दिन भी आईना नहीं

छोड़ते... हम अपने शरीर-राग में डूबे रहकर कोई भी कॉम्प्रोमाइज़ नहीं करते... इसके लिए सभी हिंसा आदि पाप भी करते हैं... और फिर भी उसके लिए कोई शिकायत हम नहीं करते... तो संयमी तो आत्मा के राग में डूबे हैं, वे क्यों अपने आचारों में कॉम्प्रोमाइज़ करें? क्यों छूट-छाट लें? हमें अच्छा नहीं लगता, इसलिए उन्हें बदल जाना चाहिए। यह कहाँ का न्याय है? दुर्जनों को सज्जनों की सज्जनता पसंद नहीं आती, तो क्या सज्जनों को दुर्जन बन जाना चाहिए?

जाना कहाँ है?... अरे, सज्जनों को दुर्जनों की दुर्जनता पसंद नहीं आती, तो दुर्जनों को अपनी दुर्जनता का ही त्याग करना चाहिए न! सज्जनों का दुर्जनों की खुशी के लिए अपनी सज्जनता छोड़कर दुर्जन बन जाने में भयंकर हानि है, और दुर्जनों का सज्जनों की खुशी के लिए अपनी दुर्जनता छोड़कर सज्जन बन जाने में बहुत बड़ा लाभ है।

मैं तो स्पष्ट रूप से यह मानने लगा हूँ कि 'हम संसारियों की खुशी के लिए संयमी नहीं बदलेंगे, बल्कि संयमियों की खुशी के लिए हमें ही बदल जाना है... सच्चा मार्ग यही है। दूसरे समझें या न समझें, पर मैं तो समझ ही गया हूँ...

(१९) उपधान में कुछ दिन साधुओं के साथ संथारा किया था, तब किसी साधु के खर्राटों की तेज आवाज से मेरी नींद खराब हो गई। उसके बाद मैंने सोने की कोशिश की, पर खर्राटे लगातार चालू ही थे। मुझे तीव्र अरुचि हुई, मैंने म.सा. को दंडासन लगा दिया, दो-चार बार लगाया, जिससे उनकी गहरी नींद टूट गई, खर्राटे बंद हो गए... पर मैंने यह गंभीर भूल की... उसके बाद तो मैं दूसरी जगह ही संथारा करता था। लेकिन मुझे बाद में पता चला कि मुझे भी बहुत तेज खर्राटे आते थे, और जिस तरह मैंने म.सा. के साथ किया था, उसी तरह अन्य आराधकों ने मेरे साथ किया था, और दिन में मुझसे इस बारे में बात भी की थी। मैंने साधु की जो आशातना की, उन्हें दो-चार बार दंडासन लगाकर उठाया, उसके लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(२०) मुझे पता चला कि 'संयमी लोग वॉशरूम का उपयोग नहीं करते। वे लघुशंका तो कुंडी आदि में करते हैं, और फिर कोई आकर उसे बाड़े से वॉशरूम में डालता है।' यह सब सुनकर मुझे बहुत घृणा हुई। 'ऐसा क्यों करना? वॉशरूम का ही उपयोग करना चाहिए, मोदीजी भारत को स्वच्छ बनाने की बात करते हैं, और ये लोग भारत को गंदा कर रहे हैं।' मैंने इस बात को लेकर निंदा भी की है, मुँह भी बिगाड़ा है... संयमियों के प्रति अनादर का भाव भी रखा है। पर इन सभी मामलों में मेरे सुगुरु ही हमेशा मेरे सहायक बने हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम एक बार वॉशरूम जाते हो, तो एक/आधी बाल्टी जितना पानी बर्बाद करते हो, तो Save Water की मोदीजी की बात का तुम खंडन ही कर रहे हो न। भारत में करोड़ों-करोड़ों लोग वेस्टर्न वॉशरूम में इस तरह पानी बर्बाद करते हैं, उसके लिए कोई पूछने वाला है? इंडियन वॉशरूम तो वर्षों से चलते ही आ रहे थे। उनमें फ्लश करने की व्यवस्था नहीं थी, तो पानी बच सकता था... और अभी तो घुटनों की तकलीफ न होने पर भी करोड़ों लोग वेस्टर्न का उपयोग करके अथाह पानी बर्बाद करते हैं... उसका क्या? और भाई! तुम गंदगी की बात करते हो, तो तुम्हें बता दूँ कि १८ हजार संयमियों के स्थंडिल से यह अतिविराट भारत कुछ गंदा नहीं होने वाला... संयमी ऐसी जगह पर ही स्थंडिल परठते हैं, जहाँ पहले से ही गंदगी है... और दूसरी तरफ भारत में हजारों-लाखों व्यापारी अपनी फैक्ट्री का गंदे से गंदा पानी बेधड़क बाहर छोड़ देते हैं, वह पानी नदी-तालाब-झरनों आदि के पानी में भी मिल जाता है, और भारत के लाखों-करोड़ों लोगों में भय उत्पन्न हो, उस हद तक की गंदगी यह पानी फैलाता है, इंडस्ट्रियल एरिया में जाकर जरा यह देख आओ। पानी को शुद्ध करके छोड़ने के इंझट में वे नहीं पड़ते। भारत की लाखों-करोड़ों स्त्रियाँ अपने बच्चों को जो डाइपर पहनाती हैं, और स्वयं भी जिन चीजों का उपयोग करती हैं, वैसे लाखों-करोड़ों डाइपरों को कहीं भी फेंककर, गंदगी बढ़ाने का ही काम करती हैं न! इसके अलावा फल-सब्जियों का कचरा, घर का कचरा, प्लास्टिक बैग आदि ढेर सारी चीजें कहीं भी फेंककर स्वच्छता को तो बिगाड़ते ही हैं, और साथ-ही-साथ स्वास्थ्य का भी सत्यानाश

करते हैं। ऐसी तो ढेरों बातें हैं। वेस्ट तो निकलेगा ही। यह समझा जा सकता है। पर अस्पतालों, होटलों, फैक्ट्रियों, घरों, स्कूलों, कॉलेजों आदि सभी जगहों पर लाखों टन की मात्रा में निकलने वाले उस वेस्ट को बेपरवाही से फेंक दिया जाता है, उसका क्या? उसका नुकसान कितना है? और कई तरह से लाभकारी बनने वाली संयमियों की इस स्थंडिल-लघुशंका की व्यवस्था पर तुम्हें आपत्ति हुई? भारत में १५० करोड़ लोग हैं, मान लो कि संयमी अधिक से अधिक २०,००० हैं। तो साढ़े सात लाख लोगों पर मात्र एक ही संयमी है। साढ़े सात लाख लोगों के अमर्यादित और निरंकुश जीवन से होने वाली गंदगी आदि की तुम कल्पना करो और उसके सामने एक साधु का पूरा जीवन देखो... संयमी वाहन का उपयोग नहीं करते, तो उनके द्वारा प्रदूषण होता ही नहीं। और लोग तो निरंकुश होकर वाहन चलाते हैं, जिससे भयंकर प्रदूषण फैला है, पूरा विश्व उसके कारण भयभीत है, कोरोना के समय प्रदूषण रुकने से जो शुद्धि हुई थी, उसे पूरा विश्व जानता है, फिर भी कोई सुधरना नहीं चाहता। इसके विपरीत, पर्यावरण को लेशमात्र भी हानि न पहुँचाने वाले इन संयमियों के प्रति केवल स्थंडिल-लघुशंका की व्यवस्था को लेकर दुर्भाव रखना उचित नहीं है।’

म.सा. ने मुझे कई तरह से समझाया, और उसके बाद मुझमें विवेक आया, मैंने वह दुगंछा-निंदा तो छोड़ ही दी, अरे! मैंने स्वयं उपधान किए, मैं अपना स्थंडिल-लघुशंका खुद ही परठने जाता था, मेरी दुगंछा दूर हो गई... मुझे अब समझ में आता है कि आचार पालन का कितना महत्व है... (हालांकि मेरे गुरु ने मुझे यह भी कहा था कि संयमियों को इस मामले में विशेष विवेक तो रखना ही चाहिए, और वे प्रायः रखते ही हैं।)

(२१) मैं यही मानता था कि ‘भगवान तो सब एक जैसे ही होते हैं। चौबीस तीर्थंकर को ही मानना-पूजना और शंकर-विष्णु-अल्लाह-ईसा आदि को नहीं मानना-नहीं पूजना... ऐसा भेद क्यों करना? मैं तो सभी देवों को भक्तिभाव से नमन करता हूँ और सभी को समान ही मानता हूँ।’

मैं यह सब मानता भी था, और बोलता भी था। और मानो यह दिखाने का प्रयत्न करता था कि, 'मुझे किसी भी धर्म के प्रति दुराग्रह नहीं है। सभी धर्मों के प्रति समभाव है। एक जैसा प्रेम है...' और भोले-भाले लोग इस कारण मुझसे प्रसन्न भी होते थे, और इसीलिए मेरी यह मान्यता और भी दृढ़ होती जा रही थी। पर हर बार की तरह इस बार भी मेरे गुरु मेरे श्रीकृष्ण बने। उन्होंने मुझे समझाया कि 'तुम अपने माता-पिता से पूछना कि जब उन्होंने तुम्हें स्कूल और कॉलेज में भर्ती कराया, तब 'सभी स्कूल समान हैं,' 'सभी कॉलेज समान हैं,' ऐसा सोचकर किसी भी स्कूल या किसी भी कॉलेज में भर्ती करा दिया था? या जाँच-पड़ताल करके अच्छी स्कूल-कॉलेज ढूँढकर उसमें तुम्हें भर्ती कराया था?

जब तुम व्यवसाय में लगे, तब सभी व्यवसाय समान मानकर किसी भी व्यवसाय से जुड़ गए थे? या फिर 'किसमें मुनाफा अधिक हो सकता है?' ऐसा सोचकर कोई निश्चित व्यवसाय तय किया था?

जब तुम्हारी शादी की बात आई, तब 'सभी लड़कियाँ समान हैं,' ऐसा सोचकर किसी भी लड़की से विवाह कर लिया था? या फिर जाँच-पड़ताल करके किसी निश्चित लड़की के साथ...

अरे, सब्जी हो, घी हो, बाइक-स्कूटर हो, घर का फर्नीचर हो, टी.वी. हो, चप्पल-जूते हों... छोटी से लेकर बड़ी वस्तु तक, हर चीज में तुमने समानता न मानकर, असमानता मानकर ही उसमें से श्रेष्ठ वस्तु खोजने का प्रयत्न किया है... तो मोक्ष नामक सर्वश्रेष्ठ कार्य के लिए जब तुम भगवान को खोज रहे हो, तब केवल 'भगवान' नाम के आधार पर सभी भगवान को समान कैसे माना जा सकता है? यह तो अविवेक है। अविवेकी व्यक्ति केवल नाम से मोहित हो जाता है, विवेकी व्यक्ति केवल नाम से आकर्षित नहीं होता, वह तो अवश्य उस वस्तु की जाँच करता ही है, और गुणवत्ता देखने के बाद ही स्वीकार करता है...'

मैंने ये सब बातें समझीं, फिर भगवान का स्वरूप समझा कि जिनमें लेशमात्र भी राग नहीं, लेशमात्र भी द्वेष नहीं... लेशमात्र भी अज्ञान नहीं... वही भगवान हैं! और कई तरह से मुझे यह अनुमान हुआ कि ऐसे भगवान कोई और नहीं, बल्कि तीर्थंकरदेव ही हैं। यह सब मुझे ठीक से समझ में आ गया और इसीलिए अब मैंने यह समानता की बातें छोड़ दी हैं। हाँ! अन्य भगवानों के प्रति दुर्भाव नहीं है। उनमें जो गुण हैं, उनके कारण उनके प्रति सद्भाव है, धिक्कार नहीं... परंतु देवाधिदेव तो केवल सर्वज्ञ-वीतराग ही हैं!

परंतु इससे पहले समानता की बातों के द्वारा मैंने अपने मिथ्यात्व का पोषण किया, उसके लिए विशेष रूप से मि. दुक्कंड। मैंने लोगों को भी बिल्कुल गलत मार्ग पर प्रेरित किया, यह बहुत ही गलत किया...

(२२) अजैनों के हर पर्व में खाने-पीने-घूमने-फिरने का उल्लास देखा, होली-रक्षाबंधन-दिवाली... और जैनों के सभी पर्वों में उपवास-आंबिल-सामायिक-पौषध की ही बातें देखीं... इसलिए मुझे जैनधर्म के प्रति दुर्भाव हुआ। आलू-प्याज-लहसुन आदि कंदमूल माँ खाने नहीं देतीं, और अभक्ष्य वस्तुओं के लिए भी मना करतीं... विवाह के बाद धर्मनिष्ठ पत्नी भी वैसा ही करे, तब यह सख्ती मुझे बहुत चुभती थी। मन में यही विचार आता कि 'यह कोई धर्म है? बस, हर बात में टोक-टोक, रोक-टोक ही है... बिल्कुल स्वतंत्रता नहीं है।' और इसीलिए मैं यह मानने लगा था कि 'मैं जैन बना, यही गलत हुआ। प्रभु! तुम मुझे अगले भव में जैन मत बनाना...' पर मेरी यह सारी गलत मान्यता भी टूट गई। गुरु ने मुझे समझाया कि 'डायबिटीज वाले को मिठाई के लिए मना ही किया जाता है, तो वह प्रतिबंध वास्तव में उसकी सुरक्षा है। सरकार खून-चोरी-लूट-बलात्कार आदि कुछ भी करने से मना करती है, और करने वाले को सजा देती है। तो क्या सरकार उचित कर रही है या अनुचित? माता-पिता बेटे-बेटी को परीक्षा के समय टी.वी.-मोबाइल देखने नहीं देते, तो वे उचित कर रहे हैं या अनुचित? सर्दी-खाँसी-बुखार में आइसक्रीम आदि के लिए सख्ती से मना करते हैं, तो वे उचित कर रहे हैं या अनुचित? अरे भाई! प्रभु तुम्हें दुःखी नहीं करना चाहते, यदि मौज-शौक में तुम्हें भविष्य में भयानक दुःख न मिलते होते, तो प्रभु तुम्हें न रोकते... परंतु तुम्हें वैसे दुःख मिलते हैं, इसलिए उनसे बचाने के लिए ही प्रभु ने इन सब वस्तुओं के लिए

मना किया है। जो सुरक्षा को बंधन मान बैठते हैं, उन्हें आज या कल भयंकर हानियाँ उठानी ही पड़ती हैं। सुरक्षा को बंधन मानने की भूल कभी न करना।'

ये सारी बातें मेरे मन में स्थिर हो गईं। उन्होंने यह भी कहा कि 'प्रभु ने तो तुम्हें मार्ग दिखाया है, तुम्हारे ऊपर कोई जबरदस्ती नहीं की है, पालन करोगे तो तुम्हें लाभ! नहीं पालन करोगे तो तुम्हें हानि... प्रभु तो तटस्थ हैं...'

बस, उसके बाद मुझे जैनधर्म के प्रतिबंध अच्छे लगने लगे। हालाँकि मोहाधीनता के कारण मैंने सभी प्रतिबंधों का पालन नहीं किया, पर 'वे सही हैं, उचित हैं, पालन करने चाहिए' ऐसा मेरा भाव तो स्थायी हो गया। मेरे द्वारा आज तक जैनधर्म के लिए जो भी अरुचि रखी गई, प्रतिबंधों को मैंने धिक्कारा... उसके लिए बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(२३) हमारे देरासरों में बहुत भीड़ देखकर, शोर-शराबा देखकर मैं बहुत थक गया। बार-बार पूजन पढ़ाई जाती, तेज आवाज में स्पीकर चालू होते, जिसके कारण सब परेशान हो जाते, रोज-रोज स्नात्र पढ़ाने वाले जोर-जोर से गाकर पूरा देरासर सिर पर उठा लेते, महिलाओं की कोई-न-कोई पूजा तो चलती ही रहती... इन सबसे मैं बहुत तंग आ गया। हमारे सामायिक और वरघोड़ों के कारण भी ट्रैफिक जाम होता देखकर मुझे गुस्सा आया। इसके विपरीत मैंने चर्च की शांति देखी, एकदम शांत संगीत, कोई भीड़-भाड़ नहीं, कोई जोर-जोर से नहीं बोलता... कोई झगड़ा नहीं... मुझे लगा कि 'जैनधर्म में तो केवल दिखावा ही है, उसकी तुलना में यह ईसाई धर्म कितना अच्छा है न...'

उसी तरह मुझे मुस्लिम धर्म के लिए भी ऐसा ही आदर हुआ कि 'वे किसी भी जगह पर अल्लाह की नमाज पढ़ने बैठ जाते हैं, कैसी धर्मनिष्ठा है! और उनकी स्त्रियाँ बुरका पहनकर ही बाहर निकलती हैं, यह मर्यादा कितनी सुंदर है... हमारे यहाँ तो न धर्मनिष्ठा है और न ही मर्यादा! जिसे जैसा मन करता है, वैसा करता है। देरासरों में भी अजीब-अजीब कपड़े पहनकर आते हैं, कोई लाज-मर्यादा ही नहीं...'

यह सब मेरी मान्यता मेरी भूल थी। गुरु ने मुझे समझाया कि ईसाइयों और मुस्लिमों में भी गुण तो हैं, उससे इनकार नहीं, परंतु केवल उतने से वे दोनों धर्म महान हो गए और जैनधर्म बुरा हो गया, ऐसा नहीं है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं। तुम बकरीद के दिन मुस्लिमों की बकरे काटने की प्रवृत्ति देख आओ, हर रविवार को मुर्गों को काटते, खाते ईसाइयों को देख आओ, विश्व में आज तक हजारों-लाखों मानवों का संहार करने वाली ये दो कौमें ही हैं। एकदम निर्दोष पशुओं और मानवों को रौंद डालने की यह क्रूरता इतनी भयंकर है कि उसके सामने उनके द्वारा दिखाए गए गुणों की कीमत बहुत-बहुत कम हो जाती है...

जैनों की जो गलतियाँ तुम्हें दिखती हैं, वे जैनधर्म को मान्य नहीं हैं। पर नासमझ जैन ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं। केवल उतने से जैनधर्म बुरा या कमजोर नहीं कहा जा सकता। और बड़ी बात यह है कि देरासरों आदि में शोर करने वाले जैनों में या उपाश्रय-मंदिर में मर्यादा न रखने वाले जैनों में जीवदया का भाव, करुणा का भाव कितना अद्भुत है। वे चींटी को भी नहीं मार सकते। बकरे-मुर्गों को कटते हुए देख भी नहीं सकते। मानवों का कत्लेआम तो उनके सपने में भी संभव नहीं है। यह कोमलता कितना बड़ा गुण है...

भाई! रास्ते में समय पर नमाज पढ़ना या बुरका पहनकर ही बाहर जाना... यह धार्मिक कट्टरता और मर्यादा शायद अच्छी होगी, परंतु केवल धर्म के नाम पर पशुओं और मानवों को रौंद डालना... यह दोष अति-अति-अति भयंकर है...

चर्चों में परम शांति बनाए रखने वालों ने धर्म के जुनून से प्रेरित होकर पूरे विश्व में शस्त्रों द्वारा कैसी अशांति फैलाई है, यह कौन नहीं जानता? पैसे का लालच देकर लाखों भोले-भाले लोगों का ईसाई धर्म में मतांतरण का कुकर्म करने वालों की शांति या मानवता की बातें तो वेश्या की ब्रह्मचर्य की बातों जैसी हास्यास्पद हैं।'

मेरे गुरु ने मेरी आँखें खोल दीं! मैंने अपने जैनों को गालियाँ देने का घोर पाप किया, अन्य धर्मों से प्रेम करने और उनकी प्रशंसा करने का घोर पाप किया। मैं सच्चा तत्त्व नहीं समझा, मैंने गंभीर भूल की... बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(२४) मुझे जैनधर्म की कई बातों पर श्रद्धा ही नहीं होती थी। मैंने जब 'पृथ्वी थाली जैसी गोल है' आदि बातें जानीं, तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि विज्ञान में तो हमने पृथ्वी को गेंद जैसी गोल ही सुना है, पढ़ा है, देखा है, माना है... वे तो सब कुछ स्पष्ट दिखाते हैं। उनकी बातें हवा-हवाई नहीं होतीं। उन्हें तो जो दिखता है, वही वे दिखाते हैं। इसलिए मुझे यही लगता था कि 'जैनधर्म की यह बात सही नहीं लगती।' इसी तरह पृथ्वी स्थिर है, सूर्य-चंद्र घूमते हैं... यह बात भी मुझे समझ नहीं आई। क्योंकि विज्ञान इसके विपरीत मानता है। ऐसी तो अनेक बातें हैं। मुझे विज्ञान पर बहुत श्रद्धा है, पर जैनधर्म की विज्ञान-विपरीत बातों पर नहीं।

लेकिन इस मामले में भी सुगुरु मेरे तारणहार बने। उन्होंने मुझे समझाया कि 'विज्ञान का एक गुण यह है कि 'वह दुराग्रही नहीं, वह सत्याग्रही है।' विज्ञान ने २०० वर्ष पहले जो कहा, वह उसे पकड़कर नहीं रखता, बल्कि वह नई-नई खोज करता जाता है, उसमें यदि पुरानी बात गलत लगे, तो उसे छोड़ता जाता है, और नई बात को स्वीकार करता जाता है।

- विज्ञान पहले वनस्पति में जीव नहीं मानता था, सर जगदीशचंद्र बोस की खोज के बाद उन्होंने मानना शुरू किया।

- वर्षों पहले विज्ञान जिसे परमाणु = एटम कहता था, वर्षों बाद उस परमाणु के भी हजारों-लाखों हिस्से उसे मिले, इसलिए उसने और भी सूक्ष्म परमाणु को माना।

ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे। मुझे तो विज्ञान का विशेष अध्ययन नहीं है। पर इतना पता है कि 'विज्ञान के सिद्धांत परिवर्तनशील हैं।'

इसका अर्थ यही है कि 'विज्ञान नई खोज को सही लगाने पर, पुरानी खोज छोड़ने को तैयार है' और यह उसका 'सत्याग्रह' नामक गुण है।

परंतु इससे यह भी सिद्ध होता है कि विज्ञान के पास संपूर्ण ज्ञान तो है ही नहीं। यदि संपूर्ण होता, तो पहले से ही सही बात कहता न! पहले कुछ और कहा, फिर कुछ और... यह सब क्यों? और पहले कही गई बात गलत साबित हुई, और आज नई बात कही गई, तो ऐसा भी हो सकता है कि आज कही गई बात वर्षों बाद गलत साबित हो और फिर कोई नई बात सामने आए। इसलिए विज्ञान का गुण निश्चित रूप से है, पर साथ ही यह भी एक हकीकत है कि उसकी किसी भी बात को संपूर्ण सत्य = अंतिम सत्य नहीं माना जा सकता। हाँ! आज कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें जैनदर्शन के पास युक्तिपूर्ण उत्तर नहीं है। जैनदर्शन के पास प्रयोगशाला नहीं है, मशीनें नहीं हैं। है तो केवल सर्वज्ञकथित शास्त्र! इसलिए कुछ मामलों में जैनदर्शन सही बात तो बता ही देता है, पर उसका तर्क नहीं मिलता, विज्ञान की बात को गलत साबित करने वाली युक्तियाँ नहीं मिलतीं। इसलिए ऐसे मामलों में हम मौन रहते हैं। बाकी तो विज्ञान में भी आपस में कितने ही मतभेद होंगे ही। मैंने सुना है कि न्यूटन का जो गुरुत्वाकर्षण का नियम था, (जो जैनदर्शन को मान्य नहीं था...) उसका अल्बर्ट आइंस्टीन ने खंडन किया। डार्विन का जो उत्क्रांतिवाद था, (जो जैनदर्शन को मान्य नहीं था) उसका भी कुछ वैज्ञानिकों द्वारा खंडन किए जाने की बात सुनी है।

वैज्ञानिकों में भी एकमत नहीं है। तो उनकी बात को सही कैसे माना जा सकता है? जैनदर्शन की जो बातें हैं, वे हमेशा से एक ही हैं, और एक ही रही हैं, और रहने वाली हैं... कल अलग बात, आज अलग, कल फिर अलग, ऐसा नहीं है। तुम केवल एक 'पन्नवणा' नामक ग्रंथ भी पढ़ लो, तो तुम्हें पता चलेगा कि जैनदर्शन में कितनी गहराई है...'

मेरे गुरु ने मुझे जो समझाया, वह मुझे बहुत अच्छा लगा... अब मुझे कोई शंका नहीं है। हाँ! विज्ञान की बात में क्या भूल है? यह मैं 'पृथ्वी गोल है, पृथ्वी घूमती है...' इन सब मामलों में नहीं बता सकता। और जैनदर्शन की 'पृथ्वी थाली जैसी गोल, स्थिर' यह बातें कैसे सही हैं? यह भी नहीं बता सकता, मैं खुद भी नहीं समझा हूँ, पर मन में एक बात पक्की हो गई है कि 'सर्वज्ञप्रभु ने जो कहा है, वह सत्य ही है।'

अब तक जिनधर्म की अनेक बातों पर शंका-विरोध आदि करने के लिए बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(२५) मैंने कभी अच्छे कार्यों की अनुमोदना की ही नहीं, बस... हर मामले में मैंने कोई-न-कोई दोष ही निकाले हैं। किसी ने तप किया हो, तो मैंने कहा कि 'भूखे मरने से क्या मतलब? केवल दिखावा करने के लिए तप करते हैं... यश-कीर्ति की भूख है... और कुछ नहीं।'।

किसी ने शील का व्रत लिया, तो मैंने कहा कि 'शील का ही पालन करना था, तो विवाह क्यों किया? जैनों की संख्या कम है, और ये सब ब्रह्मचर्य का पालन करने निकले हैं।'।

किसी ने दान दिया, तो मैंने कहा कि 'नाम की भूख है, इसलिए दान देते हैं। वरना सच्ची धर्मभावना होती, तो बिना नाम के, बिना तख्ती के देते न... नाम की तख्ती की अपेक्षा क्यों रखते हैं?'

मैंने दूसरों की भावनाओं की भी केवल निंदा ही की है कि 'यह तो सिर्फ भावनाओं में रमता है, धरती पर तो उतरता ही नहीं।'।

छ'रीपालित संघ हो या नव्वाणु हो या शिविर हों, या सामैया हो या सामूहिक चातुर्मास हो या ट्रेन-बस से तीर्थयात्रा हो या साधर्मिकों की भक्ति हो या स्वामिवात्सल्य हो या पाठशाला हो या रात्रिभक्ति हो या दीक्षा हो या दीक्षा आदि के वरघोड़े हों या बारव्रतोच्चारण हो...

ढेर सारे धर्मानुष्ठानों की अनुमोदना तो दूर... मैंने सिर्फ और सिर्फ निंदा ही की है। किसमें से दोष कैसे निकालना? यह मैं अच्छी तरह सीख गया था। कौआ जैसे विष्ठा में चोंच मारता है, वैसे ही मैंने सिर्फ और सिर्फ दोषों में ही चोंच मारी है। दुर्योधन को पूरी अयोध्या में एक भी सज्जन व्यक्ति नहीं दिखा, सभी दुर्जन ही दिखे। वैसे ही मुझे भी कोई सज्जन नहीं दिखा, केवल दुर्जन ही दिखे... कोई भी अच्छा काम भी अच्छा नहीं लगा। उसमें केवल बुराईयाँ ही दिखाई दीं।

मैंने 'उपबृंह' पुस्तक पढ़ी। मुझे अहसास हुआ कि मैं क्या गलतियाँ कर रहा हूँ? मेरे गुरु ने भी मुझे समझाया कि 'हमें तो कचरे के ढेर से भी मोती खोज लेना होता है। वैसे ही दुर्जनों में से भी कोई न कोई गुण खोज लेना होता है... शास्त्रों में कहा है कि 'परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं हृदि विकसन्तः सन्तः कियन्तः...' दूसरों के परमाणु जैसे गुणों को भी पर्वत बनाकर हृदय में प्रसन्न होने वाले सज्जन कितने हैं? दूसरों के गुण भले ही बहुत छोटे हों, तो भी उन्हें माइक्रोस्कोप जैसी दृष्टि से बड़ा देखना है, और उस दृष्टि से उन गुणों को पर्वत जैसा विशाल देखना है। और तू तो जो गुण पर्वत या पहाड़ी जितने बड़े हैं, उन गुणों को छोटे रूप में भी नहीं देखता, उसके बदले सिर्फ और सिर्फ दोष देखता है, यह तो उचित नहीं है न...

तू जहाँ-जहाँ जो-जो दोष देखता है, वहाँ-वहाँ वे-वे दोष होंगे ही, इससे इनकार नहीं... पर उसके साथ-साथ वहाँ छोटे-बड़े गुण भी हैं ही। तू दोषों को देखने-गाने के बजाय गुणों को देखना-गाना शुरू कर। तू दो भेद कर दे... जो गुण दिखें, वे सबको बताने हैं, और जो दोष दिखे, वह सिर्फ और सिर्फ उस दोष वाले को ही बताना है...'

मैंने अपने गुरु में गुणानुराग देखा, बहुत छोटे गुण की भी आँखों में आँसू के साथ अनुमोदना करते देखा, धीरे-धीरे वह सब मुझमें भी उतर गया। अब मैं भी सब जगह गुण ही देखता हूँ। गुण गाता हूँ। दोष दिखे, तो भी केवल दोषवान को ही बताता हूँ, अन्य किसी को नहीं। पर अब तक साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका के सुंदर अनुष्ठानों की

मैंने प्रशंसा नहीं की, छोटे-बड़े दोष निकालकर निंदा ही की... उसके लिए विशेष रूप से मिच्छामी दुक्कडं।

(२६) मैंने अपनी संतानों पर धर्मक्रियाएँ करने के लिए इतना अधिक दबाव डाला कि वे धर्म के दुश्मन बन गए। मेरी भावना अच्छी थी, पर विवेक बिलकुल नहीं था...

- मैंने संतानों को म.सा. के पास ले जाकर उनकी ढेर सारी शिकायतों कीं और उन्हें डाँट लगवाई, और म.सा. से कहा, 'इन्हें सुधारिए, मैं तो थक गया।'

- मैंने उन्हें पूजा आदि करने के लिए, होटल आदि बंद करने के लिए बार-बार टोका, डाँटा...

- घर आए मेहमानों के सामने भी उनकी शिकायतें ही कीं।

मेरे ऐसे विचित्र व्यवहार के कारण उनके मन में धर्म के प्रति तीव्र अरुचि उत्पन्न हो गई, आज वे बड़े हो गए हैं, अब तो मेरा कुछ भी नहीं चलता। जैनधर्म नाम मात्र से ही उन्हें एलर्जी हो गई है। उनकी नास्तिकता को मैं दुःखी हृदय से देख रहा हूँ। अब मुझे सही समझ आई है, म.सा. ने भी मुझे समझाया कि

- संतानों पर या किसी पर भी धर्म करने के लिए ज़्यादा ज़बरदस्ती न करें।

- उन्हें समझाएँ, प्रेम से समझाएँ, भावनापूर्ण ज़बरदस्ती करें।

- उनकी शिकायत उनकी उपस्थिति में तो दूसरों के सामने कभी न करें। उन्हें सुधारने के लिए दूसरों को शामिल करना हो, तो दूसरों को एकांत में सारी बातें बताएँ, उस समय उनकी अच्छाइयाँ भी विशेष रूप से बताएँ...

मैंने अनेकों को धर्म में अस्थिर किया, अस्थिरों को स्थिर नहीं किया... उन सभी के लिए मिच्छामी दुक्कडं। अब इतनी सावधानी रखूँगा कि मेरी वजह से कोई अस्थिर हो, ऐसा तो हरगिज़ नहीं होने दूँगा...

(२७) मैंने म.सा. के यहाँ मेहमान आए हुए देखे, 'उन्हें कहाँ ठहराना? कहाँ खिलाना?' इसकी चिंता म.सा. कर रहे थे, यह भी मुझे पता चल गया, ऐसे समय में मुझे खुशी-खुशी उन्हें अपने घर ले जाना चाहिए था, पर ऐसे कोई भाव ही नहीं जागे। मन में बोझ लगा कि 'मैं कहाँ इनकी ज़िम्मेदारी लूँ।' इसलिए उस समय म.सा. मुझे ही यह काम न सौंप दें, इसके लिए मैं वहाँ से खिसक गया। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि म.सा. ने मुझसे पूछा भी। और मुझे यह आभास भी हो गया कि म.सा. यही चाहते हैं कि 'मैं उन्हें अपने घर ले जाऊँ।' पर मैंने उस समय यही जवाब दिया कि 'इस जगह धर्मशाला है, और इस जगह भोजनशाला है... इस जगह अच्छी होटल भी है।' और फिर म.सा. कुछ और पूछें, उससे पहले ही मैं वहाँ से भाग गया। उन मेरे साधर्मिक मेहमानों के प्रति मेरे मन में प्रेमभाव नहीं जागा, मैंने यह भी नहीं सोचा कि 'उनकी तरह मैं कहीं म.सा. के पास गया होता तो? तो मेरी अपेक्षा क्या होती?' और मेरे मेहमान आते हैं, तो मैं उन्हें बड़े चाव से अपने घर रखता हूँ, खिलाता हूँ... तो म.सा. के मेहमानों को मैं क्यों अपना मेहमान नहीं मान सकता? मैंने ऐसा प्रेमभाव क्यों नहीं पाया? और म.सा.! सच्ची बात कहता हूँ, कभी-कभी मैंने देखा कि म.सा. के पास सामान्य साधर्मिक आए हुए हैं, जिनके रूप, वस्त्रों, या व्यक्तित्व में कोई दम नहीं था... और उस समय उनके प्रति घृणा जागी, 'क्या ऐसे लोग दौड़े चले आते होंगे, भीख माँगने निकल पड़ते होंगे...' ऐसे विचार आए। मुझे तब यह विचार नहीं आया कि 'गरीबी और अमीरी तो चंचल है। उसके आधार पर व्यक्ति की कीमत नहीं आँकी जाती। आज यह साधर्मिक गरीब हैं, मैं अमीर हूँ... कल वे अमीर हो सकते हैं और मैं गरीब बन सकता हूँ... मुझे गरीब जैनों के लिए ऐसा भाव नहीं रखना चाहिए। और महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि, गरीबी में उन्होंने चोरी, लूट, खून, या आत्महत्या का रास्ता तो नहीं अपनाया न, उन्होंने किसी के आगे हाथ फैलाया है, कोई अपराध नहीं किया। और वह हाथ भी म.सा. के पास आकर फैलाया है, किसी और के पास नहीं। मुझे ऐसे साधर्मिकों के लिए हृदय में प्रेम ही रखना चाहिए। मैं भले ही उनकी कोई सहायता न करूँ, परंतु कम से कम उनके प्रति

संवेदना तो रख ही सकता हूँ न... म.सा.! मैंने गंभीर भूल की है, मेरे माँ-बाप, पत्नी, संतानों से भी अधिक मुझे मेरे साधर्मिक प्रिय लगने चाहिए थे, पर मैंने उनसे प्रेम नहीं किया, मीठी दृष्टि से नहीं देखा, उन्हें पराया, बिलकुल पराया ही माना। मेरी दुकान पर या मेरे घर पर या संघ की पेढ़ी पर ट्रस्टी के रूप में मैं बैठा हुआ था तब... कोई साधर्मिक आए, मदद माँगी... तो मैंने मदद तो नहीं दी, पर धिक्कार ही दिया, कड़वे शब्द कहे, सम्मान-प्रतिक्रिया नहीं दी। ये सब घोर पाप मैंने किए, मेरी भूलों का कोई हिसाब नहीं है। मुझे आज अत्यंत दुःख होता है, कि मैंने अपने शब्दों और व्यवहार से कितनों के दिल तोड़े... मेरे इस पाप के लिए अंतर से मिच्छामि दुक्कडं। जब साधर्मिकों की सहायता की जाती थी, तब भी मैं यही कहता था कि 'इन सबको काम दो... पैसे या सीधा-सामान देकर हरामखोर मत बनाओ। खा-पीकर मोटे होकर पड़े रहते हैं। काम कुछ भी नहीं करते... ऐसी साधर्मिकभक्ति तो बिलकुल नहीं करनी चाहिए।' मैंने गहराई में जाकर यह नहीं सोचा कि कुछ साधर्मिक रोग, वृद्धावस्था आदि के कारण काम नहीं कर सकते... कुछ काम करना चाहते हैं, पर काम मिलता नहीं... कुछ काम करते हैं, पर उससे वे कम कमाते हैं, कुछ पर अप्रत्याशित खर्चे आ पड़े हैं। ऐसे अनेकों की सहायता करनी ही पड़ती है, यह उचित ही है... अब मुझे यह समझ आ गया है, इसलिए मैं अंतर से अपने इस साधर्मिक-द्वेष के लिए क्षमा माँगता हूँ।

(२८) शासन की प्रभावना रोकने में और कभी-कभी हीलना में मैं निमित्त बना हूँ।

• मुझे सभा में बोलने का बहुत शौक था! मैं ट्रस्टी था, इसलिए घोषणा के लिए, चढ़ावे के लिए मैं ही बोलने खड़ा हो जाता। मैं म.सा. के व्याख्यान को कम करवाता, बेकार का भाषण देकर बहुत समय बर्बाद कर देता, लोग ऊब जाते, चले जाते, कुछ बोल नहीं पाते, इस तरह मैंने शासन प्रभावना में विघ्न डाला।

• चढ़ावे बहुत खींचे, म.सा. ने फटाफट चढ़ावे करवाने का आदेश दिया। मैंने उन्हें हाँ-हाँ तो किया, पर की अपनी ही मनमानी। म.सा. ऊब गए, लोग ऊब गए, आधी-पूरी सभा खाली हो गई, पर फिर भी मुझे होश नहीं आया।

• देरासर-उपाश्रय के स्टाफ को वेतन देने में इतना परेशान किया कि वे जैनधर्म को गालियाँ देने लगे।

• A.G.M. की मीटिंग में झगड़े करके, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर, किसी की छोटी-मोटी गलती को उजागर करके ऐसा वातावरण बिगाड़ दिया कि लोग त्रस्त हो गए। जैनसंघ की मीटिंग के बजाय किसी बाज़ार की लड़ाई जैसा माहौल बना दिया। कई सज्जन इसी कारण जैनसंघ छोड़कर अन्य धर्मों में, अन्य संप्रदायों में जुड़ गए। यह सब पाप मैंने अपने अहंकार-मिश्रित क्रोधादि स्वभाव के कारण किया।

• पाठशालाओं में बच्चों को प्रभावना देने में कंजूसी की, फंड होने के बावजूद भी छोटी-छोटी प्रभावनाएँ ही दीं... इस कारण बच्चों का उत्साह घट गया।

• पाठशाला के शिक्षक बहुत अच्छे थे, पर मैंने उनकी मज़बूरी का लाभ उठाया, उन्हें पूरी तरह निचोड़ा, अंत में थक-हारकर वे चले गए। नए शिक्षक न मिलने से करीब चार महीने पाठशाला बंद रही। ऐसे घोर पाप भी मैंने किए हैं।

• मैंने कई लोगों के पैसे हड़प लिए, गोलमाल किया... वे मुझे जैन मानकर मुझ पर बहुत विश्वास करते थे, और मैंने उस विश्वास का ही दुरुपयोग किया। इस कारण उन्होंने जैनों को बहुत गालियाँ दीं, कि 'जैन चोर होते हैं, मीठी ज़ुबान वाले पर अंदर से कड़वे ज़हर।' इस तरह मैं शासन-हीलना में निमित्त बना।

• अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए मैंने ट्रस्ट में, कार्यकारिणी समिति में अच्छे लोगों को आने ही नहीं दिया। किसी भी तरह उन्हें रोका। प्रभावक मुनि हमारे संघ में आना

चाहते थे, पर वे मेरे अनुकूल नहीं थे, वे निःस्पृह थे, मुझे ज़्यादा सम्मान नहीं मिलता था, तो ऐसे साधुओं को मैंने अपने संघ में आने से रोका।

• मैं जिस समुदाय को मानता था, उसके अलावा अन्य समुदाय के साधुओं को, भले ही वे बहुत अच्छे हों, मुझे मान भी देते हों... तो भी कोई न कोई बहाना बनाकर अपने संघ में तो आने ही नहीं दिया, बल्कि मेरे शहर में भी उनका प्रभाव न बढ़े, ऐसे ही मैंने प्रयत्न किए।

ऐसी तो अनेक नीचताएँ मैंने की हैं। शासन का राग केवल बोलने के लिए है। अंदर तो स्व का राग, गच्छ का राग, सत्ता का राग... ऐसे घोर पाप पड़े हुए हैं, उन पापों के बल पर मैंने शासन की प्रभावना रोकी है, शासन की हीलना में निमित्त बना हूँ। आज मैं यह सब छोड़ चुका हूँ। पर जो अपराध किया है, उससे मैंने सैकड़ों-हज़ारों-लाखों लोगों को जिनशासन से दूर किया है... बहुत बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

आने वाले भवों में मेरी आत्मा से जिनशासन छिन न जाए, यही एक मात्र प्रार्थना!

- X - X -

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप-स्थानक-९ : लोभ

साहिबजी! परिग्रह नामक जो पाँचवाँ पाप था, उसमें मैंने अपने लोभ-पाप का वर्णन कर दिया है।

मुझे लगता है कि परिग्रह और लोभ प्रायः समान हैं। परिग्रह यानी निश्चय से देखें तो मूर्च्छा! और लोभ यानी भी मूर्च्छा... इस प्रकार दोनों पाप समान जैसे ही हैं। और मैंने परिग्रह का वर्णन मूर्च्छा-परिणाम के आधार पर ही किया है।

मैंने योगसारग्रन्थ का भाषांतर पढ़ा है। उसमें 'लोभः परपदार्थतृष्णा च।' का अर्थ लिखा है कि उन-उन पदार्थों की इच्छा ही लोभ है। उसमें ही आगे लिखा है कि तृष्णा = प्यास = आग। 'लोभः परपदार्थसम्प्राप्तौ' उत्कृष्ट वस्तु मिले, तब आत्मा में जो परिणाम जागे, वह लोभ है। अथवा तो उत्कृष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिए आत्मा का परिणाम ही लोभ है... म.सा.! मैंने लोभ के कई पाप परिग्रह में लिख ही दिए हैं। फिर भी जो नए याद आए हैं, वे यहाँ लिख रहा हूँ...

(१) बचपन में मेरा पालन-पोषण एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। मेरे दोनों चाचा समृद्ध थे, जब उनके घर जाना होता, तो वहाँ का फर्नीचर आदि देखकर मैं आश्चर्यचकित हो जाता। मेरे मन में भी इच्छा होती कि 'हमारे घर में भी ऐसा सुंदर फर्नीचर हो तो...' मैं तब छोटा था, इसलिए ज़्यादा कुछ कह नहीं सकता था... पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ने लगी, वैसे-वैसे मन में एक धुन सवार हो गई कि 'बड़ा होकर खूब पैसे कमाऊँगा... और एक आलीशान फ्लैट बनाऊँगा।'

म.सा.! अब मुझे समझ आता है कि मानव भव में तो मुझे ऐसा दृढ़ संकल्प करना था कि 'इन मुनियों के पास कितना सुंदर-श्रेष्ठ चारित्र धर्म है। मेरे पास वह नहीं है, मैं इसी धर्म की कमाई करूँगा और एक शीर्ष साधु बनूँगा, श्रावक बनूँगा।' पर मुझे धर्म-धन कमाकर करोड़पति बने मुनि, उत्तम श्रावक नहीं दिखे, मैंने इस फर्नीचर, फ्लैट आदि जैसी तुच्छ वस्तुओं को पाने योग्य माना, उसके लिए धन का आशिक बन गया। कई उल्टे काम करके धन कमाया, आज धन-आलीशान फ्लैट है, पर शांति नहीं है, मन सतत चिंताग्रस्त है, चिंतामग्न है... अब सही बात तो समझ आ गई, पर जीवन बीत गया है... अब कितना धर्म कर पाऊँगा?

(२) (एक स्त्री कहती है...) सूरत के अठवा लाइन्स एरिया में एक बड़े टावर में हम रहते थे, हम कुल मिलाकर सुखी ही थे। मैं जो बात कर रही हूँ, वह वर्षों पुरानी है, उस समय अठवा लाइन्स एरिया मुंबई का वालकेश्वर एरिया माना जाता था। मुझे कोई कमी नहीं थी, पर फिर भी एक बात मुझे खटकती रहती थी। मेरी सभी सहेलियों के घर कार

थी, सिर्फ मेरे घर कार नहीं थी। जब भी उन्हें कार में बाहर घूमने जाते देखती, तो मन में बहुत खटकता। यही लगता कि 'मेरे घर भी कार होती तो...' और कई बार ऐसा होता कि मुझे किसी काम से बाहर जाना होता, तो मैं ऑटो खोजने के लिए भटकती और उसी समय मेरी सहेलियाँ मस्ती से कार में जातीं... उनकी यह मौज मुझे भी चाहिए थी। मैंने अपने पति से ज़िद की, उन्होंने कहा कि 'हमें कार की ज़रूरत ही कम पड़ती है, बेकार का खर्चा क्यों करना?'

उनकी बात सही थी। वे कंजूस नहीं थे, पर मितव्ययी तो वे ज़रूर थे। पर मैं वह बात तब स्वीकार नहीं कर सकी, मुझे गुस्सा आया। मैं दौड़कर किचन में गई, चाकू से अपनी नस काटने की कोशिश करने लगी। उन्होंने मुझे बड़ी मुश्किल से रोका। 'मैं १५ दिन में ही कार ला दूँगा। बस।' उन्होंने मुझसे वादा किया, तब मुझे शांति मिली। कार आने के बाद तो मैं बहुत खुश थी। सबको रुतबा दिखाने के लिए बिना वजह भी कार चलाने निकल पड़ती... सबको प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से बताती कि 'मेरे पास कार है।' कार पर दाग न लगे इसके लिए उसे अच्छी तरह धुलवाती। कार पर डेंट न पड़ जाए, इसका ध्यान रखती। इन सभी लोभ-परिणाम के लिए विशेष मिच्छामी दुक्कंडं।

(३) (एक कॉलेज छात्रा कहती है -) म.सा.! एक भयानक घटना मेरे जीवन में घट गई है। मैं कभी खुद को माफ नहीं कर पाऊँगी। हम अहमदाबाद के बापूनगर में रहते थे। हम एक मध्यमवर्गीय परिवार से थे। पापा नौकरी करके घर चलाते थे। मम्मी भी सिलाई आदि का काम करके थोड़ी कमाई कर लेती थीं। उन्होंने मुझे कॉलेज में पढ़ने भेजा, वहाँ मैंने अपनी सहेलियों के पास आई-फोन देखा। मेरे पास सात हज़ार का मोबाइल था, वह भी मुझे कॉलेज में आने के बाद मेरी बार-बार की ज़िद और ज़रूरत को देखकर पापा ने दिलाया था... बीच में मम्मी को बीमारी हुई थी, उसके खर्चों को पूरा करने के लिए गाँव का घर पापा ने करीब पाँच लाख में बेच दिया था... मुझे इस बात की भी खबर थी... पर मुझे आई-फोन का इतना भयंकर मोह जागा कि 'मैंने पापा से सवा लाख रुपए का आई-फोन माँगा।' मैं अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी। कोई

भाई नहीं था... उन्हें शादी के करीब आठ साल बाद मैं मिली थी, इसलिए उन्हें मुझसे बहुत लगाव था। पापा की मैं बहुत-बहुत-बहुत लाडली थी। पूरे जीवन में उन्होंने कभी मुझ पर हाथ नहीं उठाया था... आई-फोन की मेरी माँग के समय खाना खाते-खाते उनका हाथ रुक गया। वे मेरी ओर देखते रहे.. वे कुछ बोले नहीं। पर चेहरे पर उदासी छा गई। बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा, 'बेटा! सवा लाख का मोबाइल कैसे लाऊँ? मेरी तो मासिक आय ही ६० हजार है। तुम्हारी मम्मी ५-७ हजार कमाती हैं... हमें यह नहीं जमेगा, तुम्हारे पास मोबाइल तो है ही न...'

मैं कुछ नहीं बोली, पर उस दिन से मैं उदास-उदास रहने लगी, घर में भी माता-पिता से बातें लगभग बंद कर दीं। अपने कमरे में ही पड़ी रहती, पापा ने आज तक मुझे हँसता-खिलखिलाता देखा था, मैं बहुत बातूनी भी थी। वह हँसी, मज़ाक, बातें... सब बंद हो गया... पापा अंदर से बहुत दुःखी हो गए...

लगभग पंद्रह दिन बाद... एक रात उन्होंने मुझे बुलाया, आँखें बंद करने को कहा, और फिर मेरे हाथ में आई-फोन रख दिया। आँख खोलकर मैंने देखा, मैं बहुत-बहुत खुश हो गई, पापा से लिपट गई, 'I Love you so much Papa...' मैंने उनसे कहा। वे भी बहुत खुश हुए... मुझे पापा के लिए बहुत स्नेह उमड़ आया...

एक महीने बाद मैं और मम्मी टी.वी. देख रहे थे, पापा आए नहीं थे। उसमें मूवी में कोई ऐसा सीन आया कि हीरो अपने शरीर का एक अंग हीरोइन को डोनेट कर देता है, और फिर वह मर जाता है... और हीरोइन को यह पता ही नहीं होता... पर ठीक होने के बाद वह हीरो को खोजती है, तो वह तो मिलता ही नहीं... और बहुत समय बाद उसे पता चलता है कि हीरो मर गया है, मुझे ज़िंदा रखने के लिए उसने अपना बॉडी पार्ट मुझे दे दिया है...' यह सीन देखते-देखते मम्मी बहुत-बहुत रोने लगीं। हालाँकि वह सीन भावुक था, इसलिए मुझे भी रोना तो आया, लेकिन मम्मी तो सिसक-सिसक कर रो रही थीं... मुझे आश्चर्य हुआ। टी.वी. बंद करके मैंने मम्मी से पूछा, तब वह बोलीं, 'बेटा! तुम्हारे

पापा की याद आ गई। तुम्हारे पापा ने तुम्हारे आई-फोन के लिए अपनी किडनी ३० लाख रुपए में बेचकर किसी अमीर को दे दी है...'

मैं चौंक गई, मुझे भयंकर आघात लगा... मैं कुछ बोल नहीं सकी... मम्मी आगे बोलीं, 'तुमने आई-फोन माँगा, वे दे नहीं सके, तुम उदास रहने लगीं, वे यह सहन नहीं कर सके, तभी उन्होंने किडनी का विज्ञापन पढ़ा। अस्पताल जाकर सब कुछ तय कर आए। मुझे भी अंधेरे में रखा। तबीयत का बहाना बनाकर कुछ दिन आराम भी कर लिया। मुझे उस समय कहा कि, 'अब कोई चिंता नहीं... ३० लाख रुपए मेरे पास हैं, अब बेटी को दुःखी नहीं देखना पड़ेगा...'

'उन्होंने मुझसे कहा था कि यह बात तुम्हें कभी न बताऊँ। पर आज तुमसे कहे बिना नहीं रह सकी। तुम्हारे पापा को तुमसे कितना प्यार है, यह अब तो तुम्हें समझ आएगा ही...'

मैं सुनती ही रही। गले में गाँठ पड़ गई, मुझे चीख-चीख कर रोने का मन हुआ, खुद पर धिक्कार हुआ, सिर पीटने का मन हुआ...

तभी डोरबेल बजी, मम्मी ने तुरंत दरवाज़ा खोला, पापा ही आए थे। मैं दौड़कर सीधे उनके पैरों में गिर पड़ी। ज़ोर से पैर पकड़कर रोने लगी 'पापा! आपने यह क्या किया?' बस, यही शब्द मेरे मुँह से निकले। पापा समझ गए कि 'मुझे पता चल गया है।'

उन्होंने मुझे खड़ा किया, मैं पापा से लिपट गई। 'पापा! "मैं पूरी ज़िंदगी अपने आप को माफ़ नहीं कर पाऊँगी..."

पापा कुछ नहीं बोले। उसके बाद हमारे तीनों के बीच लगभग आधे घंटे तक बहुत बातें हुईं। एक बार तो मेरा मन आई-फोन तोड़ देने का हो गया। लेकिन तुरंत मैंने सोचा कि,

“यह आई-फोन तो मुझे अपने पास ही रखना है। यह मेरे पापा के मेरे प्रति प्रेम की एक उत्कृष्ट निशानी है। यह आई-फोन मुझे पापा की याद दिलाएगा, मेरे पाप की याद दिलाएगा।”

बस! उसी दिन से मेरा जीवन बदल गया।

(A) आई-फोन का उपयोग मैंने केवल आवश्यक बातों के लिए + पढ़ाई के लिए + धार्मिक वीडियो के लिए ही चालू रखा। इसके अलावा उसका उपयोग बंद कर दिया।

(B) मैंने कॉलेज में कड़ी मेहनत शुरू की, दूसरे नंबर से पास हुई, उसके बाद C.A. बनी। मेरी पहली ही महीने की तनख्वाह एक लाख रुपये से शुरू हुई। मैंने मम्मी-पापा की सेवा में कोई कमी नहीं रखी। उन्हें अनेक तीर्थों की यात्रा करवाई, उन्हें घूमने-फिरने भी ले गई।

मैं और वे लोग अभी भी सांसारिक हैं। सांसारिक सुखों का आनंद लेना अच्छा लगता है, इसलिए उन्हें संसार के शौक-मौज भी करवाए। अहमदाबाद में ही रहने वाले एक C.A. युवक से मैंने विवाह किया। विवाह से पहले ही शर्त रख दी थी कि,

“मैं माता-पिता को भगवान की तरह संभालूंगी।”

(C) अभी तो मैं महीने के 3-4 लाख रुपये कमा लेती हूँ, और माता-पिता के पास अनेक सुकृत करवाती हूँ।

(D) मेरे मोबाइल के पीछे पापा की फोटो + किडनी... ये दो फोटो लगाए हुए हैं। स्टेटस में भी वही दो फोटो हैं। बहुत लोग मुझसे पूछते हैं,

“मम्मी का, पति का, छोटे बच्चे का फोटो नहीं... और पापा का फोटो क्यों? किडनी तो बिल्कुल समझ में ही नहीं आती।”

तब मैंने किसी को कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन हर बार किडनी देखकर मेरी आँखें भीग जाती हैं... मेरे उस आई-फोन के लोभ का विशेष-विशेष मि. दुक्कड़।

(४) (एक गृहिणी कहती है...)

मेरे पति के दो भाई थे, पति बीच वाले थे। हमारा स्वतंत्र बिल्डिंग था। तीन फ़्लोर पर तीन घर थे। तीनों भाइयों के रसोईघर अलग-अलग, व्यापार भी अलग-अलग! सास-ससुर ज़्यादातर जेठ के साथ रहते थे।

मेरे जेठ को व्यापार में नुकसान हुआ, पैसे चुकाने का समय आया। ससुर ने तीनों भाइयों को इकट्ठा किया, हम तीनों बहुओं को भी बुलाया... मेरे पति और देवर को विशेष प्रेरणा दी कि,

“तुम मदद करो, नहीं तो समाज में मेरा नाम बदनाम होगा। भले ही तुम्हारे भाई की ज़िम्मेदारी तुम्हारी न हो, लेकिन यह मेरी इज़्ज़त का सवाल है। वह तुम्हारा ही बड़ा भाई है...”

मेरे पति + देवर चुप रहे, सोच में पड़ गए...

पति ने मेरी ओर देखा, आँखों से ही प्रश्न किया। मैंने आँखों से ही ‘ना’ कर दी।

“जेठ का नुकसान हम क्यों भरें?” – यही मेरा भाव था। भीतर पैसे का मोह था।

परिवार की इज़्ज़त का मैंने विचार नहीं किया। ससुर का नाम खराब होगा, और दो सगे छोटे भाइयों ने मदद नहीं की—इस तरह दोनों भाइयों का नाम भी खराब होगा... यह सब मैंने गौण कर दिया और धन को महत्त्व दिया।

पति ने जवाब देने के लिए मुझे ही इशारा किया। मैंने बाज़ी अपने हाथ में ली।

“पिताजी! इनका बिज़नेस मुश्किल से ठीक-ठाक जमा है। अब अगर ये कर्ज़ चुकाएँगे, तो व्यापार की बहुत पूँजी घट जाएगी। फिर व्यापार घटेगा, वह कैसे चलेगा? व्यापार तो टूटने नहीं देना चाहिए...”

मैंने अपनी बुद्धि पूरी तरह लगा दी।

ससुर ने मेरी बात सुनी, सोचा, और फिर कहा,

“देखो, तुम्हारी बात वैसे तो सही है। लेकिन मुझे एक दूसरा रास्ता सूझता है। तुम्हारे पास, देवरानी के पास और जेठानी के पास जो गहने हैं, उन्हें हम बेच दें। जेठानी तो तैयार है। लेकिन अगर तुम दोनों के भी गहने बाँट दें, तो कर्ज़ चुकाने में ज़्यादा परेशानी नहीं आएगी। बाद में कमाएँगे, तो फिर गहने बनवा देंगे... बोलो, इसमें कोई आपत्ति तो नहीं?”

ससुर की नज़र हमारे गहनों तक पहुँची, और मैं किसी भी हाल में गहने देना नहीं चाहती थी। मैंने कह दिया,

“ये शकुन के गहने हैं, मायके से मुझे शादी में मिले हैं, मेरे माता-पिता के प्रेम की निशानी हैं। इन्हें तो मैं किसी भी कीमत पर नहीं बेचूँगी!”

ससुर ने मुझे कई तरह से समझाया। उनकी बातें सही थीं, लेकिन जब मानना ही न हो, तो कितनी भी सही बातें किस काम की? मैंने अपनी ‘ना’ पकड़े रखी।

ससुर ने समझाया और थोड़ा गुस्से में कहा,

“कलकत्ता के जैन परिवार की बहू मधुबहन ने अपने जेठ के नुकसान के समय सारे गहने बेचकर ससुर की शान बचाई थी। तुझे यह बात मालूम है। तो तू भी ऐसा कर...”

लेकिन मैंने स्पष्ट जवाब दे दिया, “मधुबहन ने जो किया, वह इस समय की मूर्खता है, और मैं भावावेश में आकर ऐसी मूर्खता नहीं करना चाहती।”

म.सा.! धन और गहनों के लोभ के कारण मैंने अपने परिवार की इज़्ज़त बचाने में सहायता नहीं की। ससुर-जेठ-जेठानी... इन सबका मेरे ऊपर से मन उतर गया। लेकिन मुझे इसकी कोई परवाह नहीं थी। इज़्ज़त जाए, रिश्ते बिगड़ें-लेकिन धन + गहने तो रहने ही चाहिए।

आज इसका मुझे बहुत पछतावा होता है। सही समझ अब आई है, लेकिन अब क्या? इन्हीं सब टेंशनों के बीच उसी समय पिताजी को अटैक आया और उनका देहांत हो गया।

जेठजी अपना फ़्लैट बेचकर किराए के घर में रहने चले गए। जेठानी ने ट्यूशन लेना शुरू किया... परिवार टूट गया, स्नेह टूट गया... अब गहने रहने का क्या लाभ?

आज यह सब याद करती हूँ तो बहुत दर्द होता है। मैं इतनी कठोर कैसे बन गई? सच्चे हृदय से बहुत-बहुत मि. दुक्कड़।

अभी जेठजी का परिवार है, साधारण जीवन जी रहा है। हमारे बीच कोई व्यवहार नहीं रहा। मुझे उनसे माफ़ी माँगनी है, लेकिन किस मुँह से जाऊँ?

जेठानी बहुत सीधी हैं। इतना सब होने के बाद भी कभी-कभी फ़ंक्शन आदि में मिल जाएँ, तो हँसकर सामने से बुलाती हैं-“कैसे हो?”

जेठजी भी वैसे ही सीधे हैं, लेकिन उनके साथ इसके बाद कभी बात नहीं हुई। क्या करूँ-समझ नहीं आता।

म.सा.! ऊपर लिखने के बाद मैं सोच में पड़ गई थी। पति घर आए, उन्हें मैंने सब बताया, और उन्हें साथ लेकर रात दस बजे जेठजी के घर गई। दोनों बच्चों को भी साथ ले गई। बेटी कॉलेज में पढ़ती थी और बेटा बारहवीं में...

जेठजी का परिवार हमें देखकर आश्चर्यचकित हो गया। मैंने रोती आँखों से माफ़ी माँगी, जेठजी के पैरों में गिरी, सास से माफ़ी माँगी।

(इन कठिन वर्षों में भी जेठजी ने ही मम्मीजी को संभाला था-वह भी बहुत उत्साह से!)

जेठानी को गले लगाकर खूब रोई... सारे गहनों का ढेर उनके सामने रख दिया।

“इन्हीं के लोभ के पाप से मैंने ऐसे कर्म किए हैं। यह शैतान मुझे अपने पास नहीं चाहिए। और जेठानी के पास तो गहने हैं ही नहीं, इसलिए उन्हें मेरे गहने लेने ही पड़ेंगे। तभी मैं मानूँगी कि आपने मुझे माफ़ किया है।

और अब मुझे इन गहनों का कोई शौक नहीं है। जिन गहनों ने पिताजी की जान ली, आपके साथ मेरे रिश्ते तोड़े-मुझे ऐसे गहनों का क्या करना!”

म.सा.! हमारे बीच सुलह हो गई है। पति को स्पष्ट कह दिया है कि, “उन्हें हमारे जैसा ही घर दिलवाओ, तभी मुझे शांति मिलेगी।”

और पति ने हाँ भी कर दी है...सिर्फ़ आलोचना लिखने का भी कितना प्रभाव होता है-लिखते-लिखते मेरे भीतर हिम्मत आई और वर्षों से बिगड़े रिश्ते मैंने सुधार लिए।

यह मेरे लोभ के पाप का बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(५) (एक पुरुष कहता है...)

बिज़नेस आदि के लिए मुझे पैसों की बहुत ज़रूरत थी। मैंने अपनी बड़ी बहन से बात की। उन्होंने जीजाजी से बात करके अपनी पहचान से किसी और से ब्याज पर पैसे लिए और मुझे भी ब्याज पर दिए।

उस ब्याज में उनका कमीशन था या नहीं-मुझे नहीं पता। लेकिन ब्याज सामान्य ही था, इसलिए लगता है कि उसमें उनका कोई फ़ायदा नहीं था। एक बहन के रूप में सच्ची भावना से ही उन्होंने मेरी मदद की थी।

करीब पाँच साल तक मैंने ब्याज भरा, लेकिन अचानक मेरे बिज़नेस में नुक़सान होने लगा। मैंने ब्याज भरना बंद कर दिया। बेचारी बहन फ़ँस गई, क्योंकि उन्हें आगे किसी और को ब्याज देना था...

उन्होंने मुझसे पैसे माँगे। आगे वालों को ब्याज न मिलने से उन्होंने मूलधन ही वापस माँग लिया, इसलिए बहन ने भी मुझसे मूलधन लौटाने को कहा।

मैंने तब बेशर्मी से कह दिया,

“तू कैसी बात करती है? दुनिया में किसी ने लिए हुए पैसे वापस दिए हैं क्या? पैसे वापस देने की चीज़ ही नहीं होती।”

वह बेचारी बहुत घबरा गई, फ़ँस गई... हमारे बीच भयानक झगड़ा हुआ। उन्होंने रिश्तेदारों को बीच में डाला। मैंने उन्हें समझाया,

“मेरे पास ज़्यादा पैसे नहीं हैं-यह एक बात। दूसरी बात यह कि मेरा एक ही बेटा है, उसके विवाह नहीं हो रहे। हमने उसे जीवन में कुछ विशेष नहीं दिया। हम उसे विरासत में यह कर्ज़ नहीं देना चाहते। जो पैसे हैं, वे बेटे को देते जाएँगे...”

सबने मुझे बहुत समझाया कि,

“बहन ने तुझ पर भरोसा करके तुझ पर उपकार करने के लिए ये पैसे दिए हैं। और उसने भी बाहर से लेकर दिए हैं। उसका विश्वास मत तोड़।”

लेकिन मैंने नहीं माना।

और म.सा.!

अब मुझे समझ आता है कि कैसे हड़पने का जो मेरा यह मलिन भाव था, उसी ने मेरे व्यापार को कमजोर कर दिया। आज मेरे बेटे की उम्र 30 साल हो गई है, फिर भी उसके विवाह नहीं हो रहे। ये सारे कड़वे फल उसी मलिन लोभ के हैं।

और ऐसी स्थिति में भी मैंने कार तो खरीदी ही, अपने सारे शौक पूरे किए। यह मेरा घोर पाप था।

मेरी बहन दो साल बाद ही कैंसर से मर गई। उनसे माफ़ी माँगने का कोई अवसर ही नहीं मिला। अब मैंने उनके बेटे को थोड़े-थोड़े पैसे चुकाने शुरू किए हैं। लेकिन कब पूरा चुका पाऊँगा—यह मुझे नहीं पता। अंतर से मिछामी दुक्कड़।

(६)

मैं अपने मित्र के साथ साझेदारी में व्यापार करता था। बहुत-सा हिसाब 'दो नंबर' का होने से हम अपनी-अपनी डायरी में कोडवर्ड में वह हिसाब लिखते थे। और हर छह महीने में साथ बैठकर पूरा हिसाब साफ़ करते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि साझेदार अपनी डायरी में मुझसे लेने वाले 6 लाख रुपये की एंट्री करना भूल गया। और मेरी डायरी में तो देने के रूप में एंट्री थी।

हिसाब करते समय उसने 6 लाख की बात कही ही नहीं, क्योंकि वह उसके ध्यान से निकल गया था। लेकिन मुझे तो फ़ायदा था ही। उस समय मुझे उसे सच्ची बात बतानी चाहिए थी।

लेकिन मन में लोभ जागा—“मुफ़्त के 6 लाख मिल रहे हैं, तो क्यों छोड़ूँ?”

इसलिए मैं एक अक्षर भी नहीं बोला और 6 लाख रुपये कमा लिए।

सालों बाद मुझे पछतावा हुआ। मैंने अपने भाई म. से बात की। उन्होंने मुझे सलाह दी कि,

“तू वे 6 लाख वापस दे और माफ़ी माँगा।”

मैंने उनके कहने के अनुसार साझेदार को 6 लाख वापस दिए, माफ़ी माँगी। लेकिन साझेदार बहुत बड़ा दिल वाला निकला। उसने कहा,

“मुझे तो पता ही नहीं था, इसलिए मैं ये पैसे नहीं रखूँगा।”

फिर उसने वह छह लाख साधार्मिक खाते में जमा करवा दिए।

अगर पैसे का लोभ न होता, तो उसी समय मैं सच्ची बात कह चुका होता। भले ही मैंने असत्य नहीं बोला, लेकिन सत्य नहीं कहना भी एक बड़ा असत्य ही था।

इस पाप के लिए अंतर से मि. दुक्कड़। आगे से मैं कभी भी ऐसे लोभ के पाप में नहीं फँसूँगा।

(9) (युवती कहती है...)

C.A. बनने के बाद एक कंपनी में मेरी एक लाख रुपये मासिक वेतन की नौकरी लगी। तीन साल में वह वेतन डेढ़ लाख हो गया। मुझे पैसे की कोई ज़रूरत ही नहीं थी। यह सारा पैसा केवल बचत हो रहा था।

मैं और मेरे माता-पिता-हम तीन ही थे। मैं एक रुपया भी न कमाऊँ, तो भी कोई दिक्कत नहीं थी। फिर भी मैं महीने के डेढ़ लाख कमा रही थी।

कंपनी जो काम मुझे आठ घंटे का देती थी, वह मैं चार घंटे में पूरा कर लेती थी। जॉब में यह डील थी कि इस नौकरी के दौरान मैं कोई और नौकरी नहीं कर सकती।

लेकिन मेरे पास चार घंटे बचते थे, तो मैंने दूसरी ऑफिस में भी नौकरी शुरू कर दी और महीने के अतिरिक्त 25,000 रुपये कमाने लगी।

काफी समय बाद मेरी बहन म. से मुलाकात हुई। सारी बात हुई। उन्होंने मुझे डाँटा, “यह भी अनीति है। और अगर तुम्हें चार घंटे अतिरिक्त मिलते हैं, तो तुम धार्मिक अध्ययन करो, विशेष ज्ञान प्राप्त करो। पैसों का इतना लोभ क्यों?”

उनकी बात मेरे दिमाग में बैठ गई। मैंने वह गैरकानूनी नौकरी छोड़ दी और धार्मिक अध्ययन शुरू करने का विचार किया। मेरी जॉब ‘वर्क फ्रॉम होम’ है, इसलिए मैं बहन म. के पास ही पढ़ने जाने का सोच रही हूँ।

एक रुपये की भी ज़रूरत न होते हुए भी मैंने पैसों के लोभ से, अति-लोभ से अनीति की—इस पाप के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(6)

मुझे रातों-रात करोड़पति बनना था। दोस्तों ने मुझे ग़लत रास्ते पर डाल दिया। शेयर में सट्टा खेला, पैसे खोए। नुकसान भरने के लिए और पैसे लगाए—वे भी चले गए।

पत्नी के गहने मार-पीट करके लिए, उनके पैसे सट्टे में लगाए—वे भी चले गए। मुझे यही लगता रहा कि “एक दिन मैं करोड़पति बन जाऊँगा।”

लेकिन वे सपने कभी पूरे नहीं हुए। आज सब कुछ खो बैठा हूँ। अब समझ आई है कि इसमें कुछ मिलने वाला नहीं है। मेरे लोभ-लालच पूरी तरह ग़लत थे।

संतोष के साथ मेहनत की कमाई पर ही मुझे जीना चाहिए। सट्टे के वे दिन याद आते हैं—दिमाग में लगातार “पैसा-पैसा” की धुन चलती रहती थी।

खाना-पीना, परिवार-सब भूल गया था। इस धन-लोभ के पाप के लिए बहुत-बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(९) (युवती कहती है...)

“युवक बहुत धनी है, मेरे सारे शौक पूरे होंगे”-यह सोचकर मैंने हाँ कर दी, सगाई कर ली।

लेकिन उस युवक के परिवार को अचानक बड़ा नुकसान हुआ। वे कर्जदार तो नहीं बने, लेकिन अमीरी चली गई। बड़ा फ़्लैट छोड़कर छोटे फ़्लैट में रहना पड़ा।

यह सब देखकर मैं घबरा गई और मैंने माता-पिता से कह दिया, “सगाई तोड़ दो।”

माता-पिता ने मुझे बहुत समझाया,

“धन आता-जाता रहता है, लेकिन खानदानी देखनी चाहिए। यह परिवार चाहता तो सबके पैसे दबा सकता था, लेकिन इन्होंने पाई-पाई चुका दी है। युवक गंभीर, ज़िम्मेदार है-तो सगाई क्यों तोड़नी?”

लेकिन मैंने एक ही बात कही,

“मैं वहाँ नहीं रह सकती। मुझे वह लाइफ़-स्टाइल नहीं जमेगी।”

पापा ने मुझे डाँटा,

“कल मुझे नुकसान होगा तो तू मुझे भी छोड़ देगी? और मान ले कि शादी के बाद पति को नुकसान होता तो तू पति को भी छोड़ देती?”

लेकिन मैंने ज़िद नहीं छोड़ी। सास-ससुर आए, लड़का भी आया, बहुत विनती की।

मुझे फूल की तरह रखने का वादा किया।

सास की आँखों में आँसू आ गए। एक बार तो मेरा मन पिघला, लेकिन फिर वही सादा जीवन याद आया और मेरा मन फिर कठोर हो गया। मैंने सगाई तोड़ दी।

रूप-छटा आदि के कारण मेरे विवाह बहुत सुखी परिवार में हो गए। लेकिन बारह साल बाद पता चला कि वह अमीरी भीतर से खोखली थी। बैंकों की बड़ी-बड़ी लोन थीं और बिज़नेस बैठ गया था।

एक दिन बैंक वाले आए। मैं रसोई में थी। हमें घर खाली करना पड़ा। दस साल का बेटा, सात साल की बेटी, पति और सास-ससुर-सबके साथ किराए के घर में जाना पड़ा।

पति को व्यापार छोड़कर नौकरी करनी पड़ी।

सबसे बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि जिस युवक से मैंने सगाई तोड़ दी थी, वही युवक मेरे पति का सेठ बन गया। मुझे तब पता चला कि वह युवक अब करोड़पति बन चुका है, बहुत बड़ा बिज़नेस है, मेरे पति जैसे 150 लोग वहाँ नौकरी करते हैं।

तब मुझे समझ आया कि कुदरत बिना फल दिए नहीं रहती-अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल मिलता ही है।

एक दिन पति घर आए और रोती आँखों से बोले,

“मेरे सेठ भगवान हैं। उम्र में हम दोनों समान हैं। लेकिन जब उन्हें पता चला कि तुम मेरी पत्नी हो, तो उन्होंने निस्संकोच कहा-

‘तुम्हारी पत्नी शौक-मौज की आदी है, इसलिए बारह साल पहले उसने मेरी सगाई तोड़ी। उस समय हम गरीब हो गए थे। लेकिन अब भी वह तुम्हारी आज की स्थिति में ठीक से नहीं रह पाएगी।

भले ही उसने सगाई तोड़ी हो, लेकिन वह एक समय मेरी मंगेतर थी। तुम कोई बुरा विचार मत करना। इसलिए बाहर तुम्हारी नौकरी चलती रहे, लेकिन भीतर से तुम मेरे बिज़नेस में 5% पार्टनर हो।

और यह बात अपनी पत्नी को मत बताना। उसे गिल्टी फील होगा। मैं उसे यह महसूस नहीं कराना चाहता कि 'यह उसकी गलती है।'”

मैं फूट-फूट कर रो पड़ी। मैंने कितने अच्छे इंसान को धोखा दिया—यह बात मुझे भीतर से कचोटने लगी। उस युवक की महानता ने मुझे गहराई से छू लिया।

मैंने पति से कहा,

“मैं पूरी तरह आपकी वफ़ादार हूँ। अगर आपको मुझ पर भरोसा है, तो मुझे उस युवक के पास ले चलिए। मुझे उससे माफ़ी माँगनी है—आपकी मौजूदगी में।”

पति ने युवक को हमारे घर बुलाया। मैंने हाथ जोड़कर माफ़ी माँगी। उसने बिना किसी अहंकार के कहा,

“बहन! इसमें आपकी भी कोई गलती नहीं है। संसार में यह सब चलता रहता है। आपके पति मेरे सगे भाई जैसे हैं...”

दुनिया में ऐसे इंसान भी होते हैं—यह मैंने अपनी आँखों से देखा। मुझे अपनी पुरानी सोच पर बहुत दुख हुआ।

“धन चाहिए, ऐश चाहिए”—इन्हीं चक्करों में मैंने इतनी बड़ी भूलें कीं। बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

मेरी प्रतिभा के कारण मुझे खेल, स्कूल और गायन में कई ट्रॉफियाँ मिलीं। उन सबके प्रति मेरा अत्यधिक आकर्षण था। घर के बड़े शोकेस में सब सजा दीं।

बार-बार निकालकर देखती, मेहमानों को दिखाती, फिर वापस रख देती। वर्षों तक सब ट्रॉफियाँ संभाल कर रखीं।

एक दिन एक ट्रॉफी मेरे बेटे के हाथ से ज़मीन पर गिरकर टूट गई। मैंने गुस्से में उसे दो थप्पड़ मार दिए। बेचारी बच्चा बहुत रोया।

ट्रॉफियों के मोह में अंधी होकर मैंने अपने बेटे का मूल्य कम आँका। उसका मेरे प्रति मन उठ गया। मिच्छामी दुक्कड़।

म.सा.!! कितना लिखूँ? इस तरह की वस्तुओं की तृष्णा मुझमें बहुत है। और जब उत्तम वस्तुएँ मिलती हैं, तो उनमें ममत्व भी बहुत होता है। पहले से अब कम है, लेकिन अभी भी काफ़ी है।

बस! आप आशीर्वाद दीजिए कि मैं यह सब लोभ-भाव छोड़ सकूँ, निर्लोभी बन सकूँ... और शीघ्र ही परम पद को प्राप्त कर सकूँ।

लोभ ही सभी पापों की जड़ है—यह मुझे पता है। लोभ जाएगा, तो क्रोध आदि भाव अपने-आप दूर हो जाएँगे। फिर तो मोक्ष हाथ में ही है...

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१० : राग

जो माया और लोभ बाहर वचन और काया में प्रकट न हुए हों, केवल मन में ही रहे हों, वही माया और लोभ राग कहलाते हैं। मैंने जो माया और लोभ बताए हैं, वे वचन-काया में प्रकट हो चुके माया-लोभ हैं, अब मैं अप्रकट माया-लोभ के अपने पाप बताता हूँ...

हालांकि प्रकट माया-लोभ के वर्णन से अप्रकट माया-लोभ को समझा जा सकता है, फिर भी मेरे जीवन के जितने प्रसंग मुझे याद आते हैं, उन्हें लिखने का प्रयास करूँगा। ये सभी माया-लोभ के ऐसे परिणाम हैं जिनमें मैं कुछ भी बोला नहीं और मैंने कुछ भी किया नहीं... फिर भी मन में उस प्रकार के भाव तो आए ही हैं, और जैन-शासन में यह स्पष्ट बताया गया है कि 'भाव ही मुख्य पाप है।'

(१) बचपन में जब मैं चाचा-मामा-फूफा-मौसा के घर जाता, वहाँ अपने चचेरे-ममेरे भाई-बहनों के पास के Game देखता, तब मेरे मन में तुरंत आता कि 'काश! ऐसे खिलौने मेरे पास भी होते तो?' लेकिन मैंने कभी चोरी नहीं की। उनसे कभी माँगे नहीं।

(२) दीवाली आदि दिनों में दूसरों के अच्छे कपड़े देखकर उन पर राग हुआ। मेरे कपड़े भी अच्छे थे, लेकिन मैंने अपने कपड़े कई बार पहने थे, और दूसरों के कपड़े मेरी तुलना में अलग स्टाइल के थे और मैंने उन्हें पहली बार देखा था, इसलिए अच्छे लग गए...

(३) (स्त्री) विवाह आदि प्रसंग के लिए जब मैं ड्रेस-साड़ी खरीदने गई, तब मुझे तीन-चार जोड़े ही खरीदने थे, लेकिन मैं कई दुकानों में घूमी। कम से कम डेढ़ सौ-दो सौ जोड़े देखे, उनमें से पचास पर तो राग हुआ ही... कि 'यह सुंदर है, यह top है।' लेकिन अंत में मुझे तीन-चार लेकर ही संतोष करना पड़ा।

(४) होटल में खाने गए, मेन्यू देखा। आइटम्स का ढेर था। क्या मँगवाऊँ? यह निर्णय करना भारी पड़ गया। 'यह भी खाने जैसा है, यह भी मँगवाने जैसा है।' ऐसा मन में तो हुआ, लेकिन मुझे अपने पेट की क्षमता भी देखनी थी और जेब की भी! इसलिए कुछ ही चीजें मँगवाकर संतोष करना पड़ा। एक जगह तो ६०० रु. की एक कॉफी थी।

₹५०० का एक आइटम था। उसे चखने का मन तो हो गया, पर मैंने खाया नहीं, क्योंकि इतना महंगा मेरे बस में नहीं था।

(५) विवाह आदि प्रसंगों में निमंत्रण मिलने पर मैं कई बार फाइव-स्टार होटलों में गया, वहाँ की सुविधाएँ बहुत पसंद आईं। लेकिन जब मैं परिवार के साथ घूमने गया, तब ऐसे होटलों में ठहरने का मन होने के बावजूद, वे बहुत महंगे पड़ने के कारण उन्हें छोड़ना पड़ा... पर उस समय रास्ते में या मोबाइल पर दिखे उन होटलों की तरफ मेरा आकर्षण तो अवश्य बना रहता था।

(६) रिसेप्शन में, पार्टी में गया, वहाँ पचास-पचास आइटम देखकर ललचाया तो ज़रूर, पर पेट भी तो मानना चाहिए न! इसलिए कई आइटम ऐसे रह गए, जिन्हें खाने की इच्छा तो थी, पर खा नहीं सका। अरे! जो खाए, उनमें भी ज़्यादा मात्रा में खाने की इच्छा बनी ही रही, पर भूख मर जाने के कारण खा न सका।

(७) डायबिटीज़ होने के बाद तो मेरी हालत बिगड़ गई। दो-तीन बार, आसक्ति से प्रेरित होकर मिठाई खा तो ली, लेकिन बाद में बहुत परेशान हुआ, इसलिए मन में गहरा डर बैठ गया। इसलिए जब ऐसे भोजन प्रसंगों में जाना हुआ, तब पाँच-सात मिठाइयाँ देखकर मन इतना खिंचता था कि 'हद नहीं', पर मजबूरी थी। तो मन मारकर उन मिठाइयों से दूर रहा। कभी ऐसा भी हुआ कि मिठाई खाने की तीव्र इच्छा हो गई, पर पत्नी साथ थी, और वह झगड़ा करके भी मुझे मिठाई नहीं खाने देती... मुझे विचार आया कि 'नज़र बचाकर मिठाई खा लूँ...' पर यह संभव नहीं लगा, क्योंकि वह बहुत चतुर थी, इसलिए मन मार लिया।

(८) उपधान में, सिद्धितप के पारणे में, वर्षी तप के पारणे में... ऐसे-ऐसे तपस्वियों के पारणों आदि में मैं कई बार परोसने गया हूँ, उस समय उनके लिए ४०-४० आइटम होते थे। हम सभी को भी वहीं भोजन करना होता था, पर हमारा भोजन अलग रहता था, उसमें तपस्वियों को दी जाने वाली विशेष आइटम नहीं होती थीं। कभी-कभी बहुत

बच जातीं, तो हमें भी परोसी जातीं। ऐसे समय में उन आइटम्स को देख-देखकर बहुत राग होता। परोसते समय भी ऐसा विचार आता कि, 'तपस्वी यह न खाएँ, तो अच्छा... तो बचेगा, तो हमें मिलेगा...' कई बार तो ऐसी आइटम्स को छिपा देने का भी मन हुआ, पर मैंने ऐसा किया नहीं। डर लगा, शर्म भी आई, खानदान की इज़्ज़त भी आड़े आई... पर ऐसा मायाभाव आ तो गया ही था।

(९) युवावस्था शुरू होने से पहले ही वासनाएँ शुरू हो गई थीं। मेरे हाथ में मेरा अपना मोबाइल नहीं आया था। टी.वी. पर खराब फ़िल्में देखने की बहुत इच्छा होती थी, पर हमारा संयुक्त परिवार था! बड़ा परिवार! एकांत नहीं मिलता था, इसीलिए मैं अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाता था। मोबाइल हाथ में आने के बाद भी कई बार दूसरों की उपस्थिति के कारण मैं अपनी गंदी इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता था। कभी-कभी वॉशरूम या बाथरूम में मोबाइल ले जाकर वहाँ यह सब देखने के विचार आए, पर वह हिम्मत नहीं कर सका। मेरा अपना कमरा नहीं था, इसलिए वैसी अनुकूलता नहीं मिली। पर मन में माया का भाव तो आ ही गया।

(१०) व्यवसाय के क्षेत्र में कई बार ऐसे प्रस्ताव आए जिनमें कमाई तो बहुत थी, लेकिन सब कुछ दो-नंबर का था। और वे बड़े अपराध भी थे। अगर पकड़ा जाता, तो पूरी ज़िंदगी परेशान हो जाता... इसलिए विचार तो आए कि 'साहस कर लूँ...' पर मेरा स्वभाव डरपोक था, इसलिए मैंने कुछ किया नहीं... पैसे का लोभ और सरकार के साथ, ग्राहकों के साथ माया... ये दोनों परिणाम इसमें मिश्रित थे।

(११) मेरी बिल्लिंग में रहने वाली एक लड़की मुझे बहुत पसंद आ गई थी। पर मेरा स्वभाव शर्मीला और डरपोक था। इसलिए दूसरे लड़कों की तरह मैं बोल्ट बनकर कुछ कर नहीं पाता था। इच्छा तो हुई कि 'किसी भी बहाने से उससे बात करूँ... फिर उसे प्रपोज़ करूँ...' पर मैं यह कर नहीं सका। कॉलेज के मेरे दोस्त यह सब करने में होशियार थे। लड़की को आकर्षित करने के उनके आजमाए हुए सभी उपाय मैंने जाने, पर डर-

शर्म के कारण वे उपाय आजमा नहीं सका, बस! मन ही मन उस लड़की को प्रपोज करने के विचार चलते रहे। अरे, 'उसे रास्ते पर कुछ लड़के परेशान कर रहे थे, तब मैंने उसके लिए उन लड़कों से झगड़ा किया, मारपीट हुई, मैंने उसे भाग जाने को कहा, उसने फ़ोन करके पुलिस बुलाई, मुझे चोट लगी थी, खून निकल रहा था, पुलिस आई तो दूसरे लड़के भागने लगे, पुलिस ने उन्हें पकड़ा, डंडे बरसाए, लड़की ने पुलिस के सामने मेरी प्रशंसा की, बस, उसके बाद वह लड़की मुझ पर मोहित हो गई, वह मुझे डॉक्टर के पास ले गई...' ऐसी सब कल्पनाएँ मैंने मन में कीं। फ़िल्मों के सीन मैंने अपने और उस लड़की के बीच सोचे, और मन ही मन मुस्कुराया, पर इसमें से कुछ भी नहीं हुआ और होना संभव भी नहीं था। बस, मन में इस राग-भाव के तूफ़ान आए... और कुछ नहीं।

(१२) (लड़की कहती है -) फ़िल्मों में हीरो को देख-देखकर राग किया, 'यह मेरा पति बनता तो?' ऐसे विचार किए। फिर हमारे वैवाहिक जीवन के दृश्य मन ही मन में कल्पित कर लिए। उसमें गंदे दृश्यों का भी चिंतन किया, और इसके अलावा 'हम साथ में घूमने गए... वह रुठा और मैं उसे मना रही हूँ... मैं रुठी और वह मुझे मना रहा है...' ऐसे तो ढेरों विचार किए, उन सभी विचारों में दृढ़ राग था।

१०-११-१२ स्टैंडर्ड में और उसके बाद कॉलेज के वर्षों में कम से कम १०० लड़कों के लिए तो ऐसे विचार कर ही लिए कि 'यह मेरा पति है...' आदि।

शादी के बाद पति के दोस्तों के लिए, ससुराल पक्ष के अनेक पुरुषों के लिए भी ऐसे विचार आए... आए नहीं, बल्कि मैंने किए।

म.सा.! शरीर से मैं केवल अपने पति के साथ ही बंधी हूँ। मेरे पूरे जीवन में मेरा पति एक ही है। लेकिन मन से अब तक कम से कम २०० पुरुषों को अपना पति मान चुकी हूँ। उनके साथ मन से अनेक कार्य कर लिए हैं, और अनेकानेक विचित्र प्रसंगों की कल्पना भी कर ली है।

म.सा.!! अध्यात्मसार के मनःशुद्धि अधिकार में मैंने सुना और पढ़ा था कि इंसान बहुत कुछ खाए और कई बार वॉशरूम जाए, यह तो समझ में आता है। लेकिन कुछ न खाए, और कई बार वॉशरूम जाए... यह तो समझ में न आने वाली बात है। वैसे ही आत्मा वचन-काया से भी पाप करे और फिर उसके फल के रूप में दुःख पाए, यह तो समझ में आता है... लेकिन वचन-काया से कोई पाप न करे, केवल मन से रागादि परिणाम करे, और फिर भी उसे भयंकर दुःख पहुँचे, यह तो समझ में नहीं आएगा न? पर होता ऐसा ही है।

वचन-काया से १ पुरुष के साथ, और मन से २०० पुरुषों के साथ... मैं व्यवहार से महासती हूँ, निश्चय से व्यभिचारिणी हूँ - कुलटा हूँ... वे तंदुलिया मत्स्य जैसे जीव केवल मन के परिणाम से नरक को प्राप्त होते हैं... तो मुझे भी मेरे अतिमलिन भावों से क्या मिलेगा? मुझे नरक नहीं चाहिए, मुझे इन सभी पापों से बचना है। इसीलिए मन के इन राग-परिणामों की क्षमापना माँगती हूँ।

(१३) हम चार भाई-बहन थे, उनमें मम्मी-पापा कभी मेरी प्रशंसा नहीं करते थे। मेरा बहुत मन होता था कि 'वे कभी तो मेरी प्रशंसा करें।' पर मेरा दुर्भाग्य भारी था। जब मैं कोई अच्छा काम करती, तब तो मुझे यह इच्छा कई बार होती, पर मेरी इच्छा कभी पूरी नहीं हुई। मुझे ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए, पर रहती थी।

(१४) मेरा मन इतना गंदा है कि सातवीं कक्षा में पढ़ती मेरी सगी बेटी पलंग पर मेरे बगल में सो रही थी, तो मुझे राग जागा, विचार जागा कि 'यह बड़ी होती, तो इसके साथ भोग भोगता...' मैंने तुरंत अपने मन को मोड़ा, धिक्कारा... जब मैं १७-१८ साल का था, तब मुझे अपनी बहन के लिए भी और अपनी माँ के लिए भी ऐसे विचार आ जाते थे। मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। लेकिन मन ऐसे राग-भावों में बार-बार घिसट जाता था... मैंने कोई बुरा काम किया नहीं है, और करने वाला भी नहीं हूँ। पर इन मन के राग-भावों के लिए बहुत बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(१५) (लड़की कहती है...) मेरी ज़िंदगी सहने में ही बीती है, शादी से पहले मेरे मम्मी-पापा मध्यम वर्गीय परिवार के थे... मुझे यह हकीकत पहले से ही समझ आ गई थी कि 'वे अतिरिक्त खर्च किसी भी हाल में नहीं कर पाएँगे।' इसलिए मैंने मन को पक्का कर लिया था कि उन्हें दुःख हो, ऐसा कुछ नहीं करना है।

म.सा.! जीवन में इस कारण से ढेरों बार मन को मारा, पर वह राग तो हुआ ही हुआ।

स्कूल से टूर पर ले जाने वाले थे, मन हुआ... पर मार लिया।

थिएटर में नई फ़िल्में देखने जाने का मन हुआ... पर मार लिया...

मॉल में शॉपिंग आदि के लिए जाने का मन हुआ... पर मार लिया...

होटलों में जाकर मजे करने का मन हुआ... पर मार लिया।

ब्रांडेड कपड़ों आदि के लिए बहुत मन हुआ... पर मार लिया।

धनवान-रूपवान लड़के से शादी करने का मन हुआ... पर मेरे परिवार के हिसाब से यह संभव नहीं था, मेरा रूप भी सामान्य था, तो मन मार लिया।

अच्छे स्कूल-कॉलेज में पढ़ना था, पर सामर्थ्य नहीं था, तो मन मार लिया।

टू-व्हीलर का शौक था, पर मन मार लिया...

मेरे जीवन में इन हर प्रसंग में मैं रोई हूँ, पर पापा-मम्मी को कभी पता नहीं चलने दिया। मैं जीती रही, मन को मारती रही...

मुझे संगीत में आगे बढ़ना था, मुझे एक पियानो बहुत पसंद आ गया था, पर उसकी कीमत देखते ही मैं चुप हो गई...

शादी के लिए भी मुझे एक जगह बहुत पसंद आई थी, पर वहाँ का किराया महँगा था, इसलिए चुप हो गई, माता-पिता द्वारा तय की गई सस्ती जगह स्वीकार कर ली। शादी के दिन जो वस्त्र पहनने मुझे पसंद थे, उनके बारे में मैं बोल भी नहीं सकी, क्योंकि उन्हें खरीदना संभव नहीं था... ससुराल भी मध्यम वर्गीय परिवार ही था। राग होने के बावजूद मन मारने का सिलसिला वहाँ भी जारी रहा। मैंने कभी बाहर कोई शिकायत नहीं की, अपनी इच्छाएँ किसी को नहीं बताई, सहन करने का और दुःख बढ़ जाए तो एकांत में चुपचाप रो लेने का मेरा स्वभाव बन गया था।

आज मुझे समझ आता है कि मैंने राग किया और मन को मारा, इसलिए दुःखी-दुःखी हुई, पर मैंने साध्वियों की तरह राग को ही मार दिया होता, तो मन को मारने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती, और दुःखी होने का अवसर ही नहीं आता... पर तब यह समझ नहीं थी कि राग ही पाप है, अन्य पापों का बाप है...

मेरे उन छोटे-बड़े सभी राग के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

अब मैं मन को मारने के बजाय राग को मारने की साधना करूँगी...

(१६) स्कूल-कॉलेज की परीक्षाओं में अच्छे अंक लाने के लिए मैंने चोरी करने का विचार तो बहुत किया, टीचर को कैसे ठगना है, इसके लिए कई उपाय सोचे, लेकिन डर के कारण चोरी नहीं कर सकी। टीचर को ठगने रूपी माया नहीं कर सकी...

(१७) माँ जब बाहरगाँव गई होतीं, या मासिक धर्म में होतीं, तब मैं मामा के घर खाने जाती थी। मामी के यहाँ कई अच्छी चीजें बनती थीं, उनमें मुझे राग तो बहुत होता, पर शर्म के कारण माँग नहीं पाती थी। जितना देतीं, उतने में चला लेती, पर मन तो उस चीज़ के प्रति लगातार आकर्षण अनुभव करता। घर आकर माँ से कहती कि 'मम्मी! तुम यह चीज़ बनाना।' पर माँ में वैसी कुशलता नहीं थी। इसलिए वे वही चीज़ बनाती

तो थीं, पर मुझे वह उतनी अच्छी नहीं लगती थी। इसलिए उस समय भी मामी की बनी चीज़ पर मन फिर खिंच जाता था।

वचन-काया में प्रवेश न किए हुए और केवल मन में ही प्रकट हुए ऐसे जो कोई भी राग-भाव मैंने अपने जीवन में किए हों, उन सभी के लिए अंतःकरण से मिछामी दुक्कड़...

- X - X -

मेरी ब्लैक डायरी भाग-६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-११ : द्वेष

जो क्रोध और मान मन में प्रकट हुए हों, पर शर्म-डर आदि किसी भी कारण से वचन या काया में प्रकट न हुए हों, वैसे क्रोध और मान को द्वेष कहते हैं। ऐसी व्याख्या मैंने जिनवचनों के श्रवण-वाचन से समझी है। अब मैं अपने इस द्वेष नामक दोष की आलोचना लिखना चाहता हूँ।

(१) बचपन में बड़ा भाई मुझसे खिलौने या गेम छीन लेता था, मुझे उस पर बहुत गुस्सा आता था, पर मैं कुछ बोल नहीं पाता था, क्योंकि वह बहुत ताकतवर था। शुरुआत में मैं माँ से शिकायत करता था, पर उसका पुण्य ही ऐसा था कि हर बार माँ मुझे ही डाँटती थीं। वह बड़ा होने के बावजूद माँ का ज़्यादा लाड़ला था, मैं छोटा होने पर भी उसके सामने मेरी कीमत बहुत कम थी। इसलिए मैं चुपचाप सहन करता था। पर मन में भाई के प्रति बहुत द्वेष भरता जाता था।

(२) उस समय माँ के लिए भी मन में द्वेष उत्पन्न होता था, 'माँ पक्षपाती है। हर बार भाई का ही पक्ष लेती है।' पर एक भी अक्षर बोला नहीं... क्योंकि यह मेरी शक्ति में ही नहीं था, कुछ भी बोलता, तो उल्टा ही पड़ता।

(३) मैं टी.वी. पर क्रिकेट देख रहा होता, अचानक भाई आता, उसे फ़िल्म देखनी होती, तो वह रिमोट से फ़िल्म चालू कर देता। फिर मेरी तरफ़ देखकर तिरस्कार भरी हँसी हँसता... मुझे बहुत गुस्सा आता, एक तो मैं पहले से देख रहा था, और दूसरा वह मेरा मज़ाक उड़ा रहा हो, इस तरह मेरी तरफ़ हँसता था... पर मैं कुछ भी नहीं कर सका।

(४) पापा का स्वभाव बहुत सख्त था। हर बात में टोकते।

पैर लंबा करके बैठूँ, तो टोकते, 'सीधा बैठ।'

सोफे पर लेटकर टी.वी. देखूँ तो टोकते, 'इस तरह टी.वी. नहीं देखना, आँखें खराब होती हैं। बैठकर देख।'

नज़दीक बैठकर टी.वी. देखूँ, तो टोकते...

खाना खाते समय झुककर खाता था, तो भी टोकते, 'सीधा बैठना है।'

खाना खाते समय चबाने का, सूप पीने का आवाज़ होता, तो भी टोकते, 'आवाज़ नहीं आनी चाहिए। खाना सीख, मैनर्स होने चाहिए...'

स्कूल ड्रेस ठीक से न पहनी हो, तो टोकते... 'शर्ट ठीक से अंदर कर...'

ज़रा-सा शोरगुल करते, तो टोकते, 'ए, शांति रख... शोर नहीं करना है।' ज़ोर से हँसी आए, तो टोकते, 'इस तरह खिलखिलाकर नहीं हँसना - मैनर्स नहीं हैं?...'

मुझे धीरे-धीरे पापा पर बहुत चिढ़ हो गई थी। उनका रौब ऐसा था कि उनके सामने एक अक्षर भी बोलने की मेरी कोई हैसियत ही नहीं थी। लेकिन मन में बहुत गुस्सा उत्पन्न होता... 'मेरा बाप मर जाए तो अच्छा... उसकी जीभ को लकवा मार जाए तो अच्छा...' ऐसे-ऐसे विचार आते। ऐसे भी विचार आते कि वह मुझे अनुशासन-मैनर्स की बातें सिखाते हैं, पर इस तरह टोक-टोक करना क्या यह खुद एक बड़ी गलती नहीं है? वे खुद मैनर्स सीखें तो अच्छा... इस तरह के अनेक प्रकार के द्वेष मैंने पापा पर किए।

(५) कॉलेज में एक लड़की से प्रेम हो गया, मैंने पापा को बात बताई तो सीधा एक थप्पड़ मार दिया। 'बदमाश! कॉलेज में तुझे पढ़ने भेजा था, प्रेम करने नहीं।'

मैंने हिम्मत करके कहा कि 'पापा! लड़की जैन है...'

आगे बोलता, उससे पहले दूसरी गाली और थप्पड़ पड़ा...

'तुझे शादी करनी हो, तो कर। पर फिर इस घर में पैर नहीं रखने दूंगा... एक रुपया नहीं दूंगा...' मुझे चुप हो जाना पड़ा। मुझे ऐसे विचार आए कि 'पापा का खून कर दूँ...' पर मैं ऐसा कुछ कर नहीं सका। भले ही वे स्वभाव की दृष्टि से गलत होंगे, पर मुझे मन में ऐसा द्वेष तो नहीं ही करना चाहिए था। और वे बाहर से चाहे जितने भी सख्त थे, मन से वे एकदम Soft थे... जब मैं बीमार पड़ता, तो वे अपना धंधा आदि छोड़कर मेरी हर तरह की देखभाल करते। वे खुद डॉक्टर के पास आते। बीच में दो दिन मुझे अस्पताल में रहना पड़ा, तो वे दोनों दिन अस्पताल में रुके, मेरी एक भी ज़रूरत पूरी करने में उन्होंने कोई कमी नहीं रखी थी। बस, एक सख्त स्वभाव था, पर उसके सामने उनका प्रेम तो अब्बल दर्जे का ही था, मुझे केवल उनकी सख्ती देखकर द्वेष नहीं करना चाहिए था, बल्कि उनके अंदर का प्रेम भी देखना चाहिए था। मैंने मन से तो अपने पापा के साथ भारी अन्याय ही किया है। वे ऐसे इंसान थे कि प्रेम तो करते थे, पर व्यवहार में प्रेम को प्रकट नहीं कर पाते थे। और मेरे जैसे हज़ारों बच्चे ऐसे हैं जो माँ-बाप के अप्रकट प्रेम को देखने की आँखें खो बैठे हैं, और प्रकट सख्ती को देखने के लिए चार आँखें लेकर बैठे हैं।

मैं १००% यह मानता हूँ कि गलती मेरी ही थी, पापा की नहीं। मेरे इस द्वेष-परिणाम के लिए बहुत बहुत बहुत मिच्छामी दुक्कंड।

(६) एक बार ऐसा हुआ कि मेरे दोस्तों ने मुझसे पूछा भी नहीं और वे सब घूमने निकल गए। मुझे बाद में पता चला, तो बहुत गुस्सा आया, 'इन सब से दोस्ती तोड़ दूँ', ऐसे

विचार आए। लेकिन उन्हें मेरी ज़रूरत नहीं थी, मुझे उनकी ज़रूरत थी, मेरे दूसरे कोई दोस्त नहीं थे... इसलिए मन मसोसकर, चुप रहकर उनकी वह बात सहन कर ली। यहाँ भी द्वेष-भाव नामक पाप किया।

(७) कॉलेज में एक अति-रूपवती और धनवान लड़की ने मुझसे प्रेम होने का नाटक किया। मैं भोलेपन के कारण यह बात सच मान बैठा। उसके लिए यह एक मज़ाक-खेल था।

वह अपने दोस्तों के सामने मेरा मजाक उड़ाना चाहती थी, मैं उसे मैसेज भेजता, गिफ्ट देता, बेवकूफी भरा व्यवहार करता... वह सारी बातें दोस्तों के सामने मजाक बनाकर बताती। जब मुझे यह पता चला तो मैं स्तब्ध रह गया, वह दृश्य मुझे आज भी याद है कि 15-20 लड़के-लड़कियों के सामने वह हँसते-हँसते बोली, “तुम जैसे लल्लू के साथ प्यार करने की भूल तो मूर्ख लड़की भी नहीं करेगी... तुम बेवकूफ़ हो कि मेरे प्यार के नाटक को सच मान बैठे।” उस वक्त सभी जोर-जोर से हँस रहे थे। यह मेरे लिए बहुत बड़ा अपमान था, लेकिन मेरा कुछ भी कर पाना असंभव था... वह क्रोध इतना भयंकर था कि “उसे मेरा और मैं मर जाऊँ” जैसे विचार मन में आए। लेकिन यह सब सोचना संभव है, करना नहीं। चुपचाप मैं वहाँ से निकल गया। मेरे पीछे हँसते हुए शब्दों की गूँज, ‘लल्लू, पागल, गांडू, मूर्ख’ जैसी आवाज़ें सुनाई दे रही थीं, जो मेरे हृदय में आग लगा रही थीं, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सकता था।

मन में मैंने उस लड़की को कई श्राप दिए, गाली दी... और लगभग एक महीने तक गहरी डिप्रेशन में रहा। कॉलेज जाना बंद कर दिया। घर पर रहकर ऑनलाइन ही पढ़ने लगा। इस एक महीने के दौरान मैंने एम.सा. के मोटिवेशनल प्रवचन सुने, स्थानकवासी अमर मुनि का ‘कुछ भी नहीं असंभव जग में’ यह गीत सुनकर उसका विवेचन किया।

मुझे अंदर एक नई ऊर्जा मिली। मुझे लगा कि वही कॉलेज जाकर जोरदार पढ़ाई करके उन लोगों को यह दिखाना होगा कि 'यह लल्लू कौन है?' एम.सा.। इसमें थोड़ा अहंकार भी था। लेकिन प्रवचन में यह भी सिखाया गया कि 'अहंकार नहीं रखना'। इसलिए मैंने अहंभाव को कम करके कॉलेज लौटकर पढ़ाई शुरू की।

एक महीने बाद जब मैंने कॉलेज में प्रवेश किया, तब वह पूरा ग्रुप बहुत हँसा, "लल्लू आया..." लेकिन मैंने अपना स्वभाव नहीं बदला। हम अगर चिड़चिड़े हों, तो कोई हमें चिड़ाए... मैं हँसते-हँसते उस ग्रुप के पास गया, सभी को हेलो कहा, "आप तो मेरे नए भाई-बहन हो, आप ने मुझे नया नाम दिया 'लल्लू'... यह नाम मुझे बहुत पसंद आया... Thank You..." ऐसा कहकर हँसते-हँसते क्लास में पढ़ाई करने चला गया। वे सभी मुझे देखकर रह गए।

अब चमकने का समय उनका था। उस दिन से मैंने मन को दृढ़ बना लिया...

(A) कोई चाहे कुछ भी बोले, चाहे किसी तरह का मज़ाक करे, मुझे हँसते रहना है, मन से भी दुखी नहीं होना। ऐसी तुच्छ बातों पर ध्यान नहीं देना।

(B) कड़ी मेहनत करके इतनी ऊँचाई तक पहुँचना कि उन लोगों को लगे 'इसकी कॉलेज लाइफ बर्बाद हो रही है'।

(C) किसी के साथ रिश्ता बिगाड़ना नहीं... सभी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना।

मेरे इस व्यवहार की धारी असर हुई। वे मजाक करना बंद हो गए। मेरे साथ अच्छी बातें करने लगे। मैंने मन में थोड़ा भी द्वेष न रखकर अच्छा व्यवहार किया। लेकिन यह सुनिश्चित किया कि मेरा समय इन सब में बर्बाद न हो। पहली लड़की थोड़ा असमंजस में थी, क्योंकि मेरे साथ खराब व्यवहार का मूल कारण वही थी। वह असमंजस में थी कि 'मुझसे कैसे पेश आएँ'।

कॉलेज के आखिरी वर्ष में मैं पूरे कॉलेज में प्रथम नंबर पर पास हुआ। एनीवर्सरी प्रोग्राम में प्रोफेसरों और प्रिंसिपल ने मेरी भरपूर प्रशंसा की। उसके बाद मैंने उन 15-20 लड़के-लड़की दोस्तों को पर्सनल पार्टी दी, और उसमें एक ही बात कही कि, “मेरी आज की सफलता का एक मात्र कारण आप ही हैं... आप ने मुझे लल्लू बनाया नहीं होता, तो मैं यहाँ तक नहीं पहुँच पाता।”

वह लड़की भी पार्टी में उपस्थित थी, उसे मेरी सच्चाई छू गई। उसके बाद मैंने उसे पर्सनल मैसेज भेजा, “तुमने भले मुझे बेवकूफ़ समझकर उस समय मज़ाक किया, लेकिन वही मज़ाक ही मुझे महान बना सकता है। मुझे तुम्हारे लिए कोई द्वेष नहीं है, बस! इतनी विनती है कि किसी की भी भावनाओं का मज़ाक मत बनाना। सामने वाला आत्महत्या भी कर सकता है, ऐसा आघात उसे लग सकता है। मैंने आत्महत्या नहीं की, यह मेरी किस्मत थी।”

वह लड़की मुझसे मिली, आँसुओं के साथ माफी मांगी, मुझे प्रपोज़ किया, “तुम मेरा प्यार स्वीकार करोगे, तभी मैं मानूँगी कि उसने मुझे माफ़ कर दिया है।” मैंने सोचने का समय मांगा... उसने मुझे मूवी की एक कड़ी भेजी, ‘कल मेरा इंतजार था, तुझको, आज मैंने इंतजार किया मैं... आज समझी मैं प्यार को शायद...’

मैंने उसकी सच्चाई समझी, पापा से सारी बात की, पापा भी समझ गए। आज वही लड़की - जिसने मुझे लल्लू बनाया - मेरी पत्नी है। यह आखिरी बातें मैंने अपने जीवन के विचित्र टर्निंग पॉइंट को बताने के लिए लिखी हैं।

मुख्य बात तो यह है कि उस एक महीने के दौरान मैंने उन लोगों पर सख्त द्वेष किया था। इसके लिए विशेष मिच्छामी दुक्कंड।

(८) (एक युवती कहती है...) मैं मध्यम परिवार से थी। मेरी सगाई सुखी सम्पन्न परिवार के युवक के साथ हुई थी। मेरे बहुत सपने थे, क्योंकि युवक भी सुंदर था। लेकिन शादी से

पहले ही मेरी भ्रमणाएँ टूट गई, युवक अत्यंत गुस्सैल निकला। बात-बात में गुस्सा होता, मुझसे गाली बोलता... मुझे लगा कि 'अभी तो शादी भी नहीं हुई और अगर यह हालत है, तो शादी के बाद क्या होगा?'

मैं दबाई हुई थी, पापा-मम्मी को कहकर उन्हें दुखी नहीं करना चाहती थी... सगाई टूटे, तो संपन्न परिवारों को कोई परेशानी न हो, लेकिन पापा को सख्त चिंता होगी। यह बातें ई.स. 2090 के आसपास की हैं। उस समय लड़कों में हिम्मत बहुत थी। लड़कियाँ लड़कों को खोजती... पति के सामने कुछ भी बोलूँ, तो यह प्रॉब्लम था। यह मुझे और ज्यादा परेशान करता, और शायद सगाई तोड़ भी देती? इसलिए बस चुपचाप सहन करती रही...मूवी का एक गीत बार-बार याद आता, 'धरती की तरह तू दुख सह ले, सूरज की तरह तू जलती जा... सिंदूर की लाज निभाने को चुपचाप तू आग पे चलती जा...'

लेकिन अंदर पति पर द्वेष गूढ़ता गया, अरुचि बढ़ती गई। मेरा जीवन कैसा?... एक तरफ पति पर राग! और दूसरी तरफ उसी पति पर द्वेष!

शादी के बाद भी गाली-मार... यह सिलसिला चलता रहा। मेरा उनके प्रति घृणा बढ़ने लगी... और जिस दिन मुझे पता चला कि मेरे पति कई परस्त्रियों के झगड़ों में हैं, और मेरा क्रोध काबू में नहीं रहा, मैंने आवाज़ उठाई, चीखें मारी, सामने से डबल मारा गया। मेरी बेटी मुझे बचाने आई, तो उसे भी मारने लगे मेरे पति! मेरा बेटा यह सहन नहीं कर सका, वह गुस्से में आया और पापा यानी मेरे पति को जोरदार थप्पड़ मारी। बस, उन्हें बहुत आघात लगा, वे घर छोड़कर चले गए। मैं बहुत रोई, बच्चे भी बहुत रोए। तीन दिन में वे वापस आए।

कुछ दिन सब शांत! लेकिन फिर उनका स्वभाव फिर से प्रकट हुआ। रात में उनके पास सोना मेरे लिए भी कठिन हो गया, उन्हें जब चाहे गुस्सा आता और मुझे आधी

रात को मारते... मैं बहुत डरने लगी... डिप्रेशन में चली गई। अंततः मेरी बेटी ने मुझे मजबूत समर्थन दिया। पिछले दस वर्षों से मैं अपनी बेटी के साथ ही सोती हूँ...

आज भी पति के प्रति द्वेष कम नहीं हुआ है। उन्होंने कम से कम पचास बार माफी मांगी है, हाँ, लेकिन सुधरते नहीं हैं, और इसलिए मेरा द्वेष बढ़ता ही जाता है। ऐसा लगता है 'अगर वह माफी न मांगे, बस! सुधर जाए यही काफी है...'

आज वह द्वेष निश्चित रूप से कम हुआ है, लेकिन शून्य नहीं हुआ। अभी भी उनके प्रति गुस्सा रहता है। मैं समझती हूँ कि मेरे पूर्वजों के कर्मों का फल मुझे मिल रहा है। लेकिन फिर भी उनके प्रति द्वेष रहता है। एम.सा. द्वेषभाव के लिए विशेष मिच्छामी दुक्कडं!

बस, अब केवल एक ही भावना है कि वह मुझे मेरे मित्र लगते हैं... मेरे पापों के नाश में सहायक लगते हैं।

मुझे यह समझ है कि उनका पश्चात्ताप सही है। लेकिन अपनी गलतियों को वे सुधार नहीं सकते... यह मुझे स्पष्ट दिखाई देता है। जिस दिन वे सुधरेंगे, उसी दिन मैं अपना द्वेष दूर कर सकूंगा।

लेकिन मेरी इच्छा यह है कि वे सुधरें या न सुधरें, मुझे अपना द्वेष समाप्त करना ही है... आप मुझे आशीर्वाद दें...

(९) हम मुंबई मलाड में रहते थे - माता-पिता, दादी, और हम तीन भाई-बहन। हम सभी छह लोग 1BHK के छोटे फ्लैट में रहते थे। पापा भागीदारी में व्यवसाय करते थे, लेकिन निवेश भागीदार का और मेहनत पापा की... इस तरह भागीदारी थी। दादी की दवाइयाँ, घर का किराया, स्कूल की फीस और खाने-पीने का खर्च... यह सब खर्च बहुत होता। बचत होती नहीं थी। उसमें भी पहले भागीदार ने अचानक भागीदारी तोड़ दी, दुकान आदि सब उसका ही था। पापा ने उसे बहुत विनती की। पापा की कोई गलती

भी नहीं थी, लेकिन उसने अपने किसी सगे को इस व्यवसाय में जोड़ना था, तो पापा को निकाल दिया।

पापा ने कहा भी सही कि 'दो-तीन महीने तो रहने दो, तब तक मैं दूसरी कोई व्यवस्था कर लूँ...' लेकिन भागीदार ने भागीदारी तोड़ ही दी, देर करने के लिए भी तैयार नहीं था। उस दिन पापा उदास चेहरे के साथ घर आए। हम तीनों बच्चे छोटे थे - मेरी उम्र उस समय 15 वर्ष की थी, दूसरी 12 और तीसरी 8! पापा ने मम्मी से सारी बातें साझा की, लेकिन कहीं भी भागीदार के लिए बुरा नहीं बोला। बस एक ही बात कही - 'हमारा पापोड़य...'

लेकिन मुझे बहुत गुस्सा आया। उस भागीदार को मन से श्राप दिया - "तेरा संपूर्ण विनाश हो जाए।" उसके बाद लगभग सात दिन तक मैंने पापा को सख्त चिंता में देखा। मम्मी से पूछती, तो वह मुझे जवाब नहीं देती, वह मुझे चिंता देना नहीं चाहती थी। सात दिन बाद पापा को अच्छी नौकरी मिल गई। और हमारा परिवार शांति से रहने लगा।

चार-पाँच महीने बाद, एक रविवार हम सभी घर बैठे थे, तब समाचार आया कि पहले भागीदार के बेटे का एक्सीडेंट हुआ है, गंभीर स्थिति है, अस्पताल में है... पापा तुरंत उठकर तैयार हुए और बाहर जाने लगे।

मैं यह सुनकर बहुत खुश हुई, 'पापा को उनके कर्म का फल मिल गया।' ऐसा कहती, पापा ने प्रेम से कहा - "बेटी! हम महावीर के संतान हैं। हमारे भगवान ने संगम की तरह अपने सबसे कड़े विरोधी को भी क्षमा दी है। उनके लिए आँसू बहाए हैं... तो भागीदार ने हमारा कुछ बिगाड़ा नहीं... जीवन में कभी किसी पर द्वेष न रखना।"

मुझ पर हाथ रखकर प्यार से बोले - "भागीदार मेरा मित्र था और है। मैं अभी अस्पताल जाऊँगा। मेरा कोई भी काम पड़े, तो मदद करूँगा।" और पापा ने मेरी

आँखों के आँसू पोंछते हुए बाहर निकल गए। उस आँसुओं के साथ-साथ पहला द्वेष भी खत्म हो गया। कठिन परिस्थितियों में भी, जो औरों को और तनाव देने वाले थे, उनके प्रति भी मैत्रीभाव रखना पापा की महानता थी। आज 40 साल बाद भी मैं अपने पापा को नहीं भूल सकती। उस दिन के बाद मुझे कभी किसी पर द्वेष नहीं जागा। तत्काल गुस्सा आया होगा, लेकिन उस व्यक्ति के प्रति हमेशा अरुचि नहीं थी। यह एक महीने तक पापा के भागीदार के लिए रखे क्रोध के लिए विशेष मिच्छामी दुक्कंड।

(१०) हमारे शहर में कई जगहों पर सड़कें टूटी हुई हैं। वहां बाइक, स्कूटर, कार चलाने में समस्या होती है। मुझे उस समय राजनीतिज्ञों पर द्वेष जागा - 'ये लोग पूरा टैक्स लेते हैं, लेकिन कोई काम नहीं करते। सभी चोर हैं... भ्रष्टाचारी हैं...' वह नई बनाई गई सड़कें भी एक-दो साल में बारिश के कारण टूट गईं, तब भी गुस्सा आया - 'ये कॉन्ट्रैक्टर जानबूझकर खराब माल से ही सड़क बनाते हैं, इसलिए जल्दी टूटती है। और उन्हें फिर से सड़क बनाने का कॉन्ट्रैक्ट मिलता है। सभी लुच्चे हैं।' इस तरह मैंने उन सभी पर द्वेष किया।

अब समझ आया कि अगर मैं दूसरों की बुरी प्रवृत्ति देखकर द्वेष करूंगा, तो दुनिया में करोड़ों लोग बुरी प्रवृत्ति ही करते हैं। तो मुझे तो सब पर द्वेष करना पड़ेगा, और इसमें मेरा आत्मा ही बिगड़ेगा। बस, उसके बाद अब द्वेषभाव छोड़ दिया है। लेकिन उन किए हुए द्वेषपरिणाम के लिए मन से मिच्छामी दुक्कंड।

(११) सड़क पर गाय-कुत्ते खुले घूमते हैं, जिससे ट्रैफिक रुक जाता है। मुझे अक्सर स्पीड कम करनी पड़ती। उस समय उन पशुओं पर द्वेष जागा। लेकिन इसका कोई उपाय था ही नहीं। कभी ऐसा विचार आया - 'इन कुत्तों को भले मेरी मार न लगे, लेकिन सभी को एक ही जगह पर खत्म कर देना चाहिए। और कुत्तों को नपुंसक बना देना चाहिए, ताकि नए कुत्ते न जन्म लें...'

लेकिन ऐसे विचार करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। भारत की जनसंख्या भी लगातार बढ़ रही है, तो पुरुषों को नपुंसक बना देना सही नहीं है। मैं भी पुरुष हूँ, तो क्या मुझे भी नपुंसक बनना है?... दुनिया वैसे ही चलती है। जिम्मेदार लोग जो करना चाहते हैं, वही करते हैं। ये सभी बातें मेरी जिम्मेदारी में नहीं आतीं, तो क्यों ऐसे मनमाने विचार करके पाप बांधना?

(१२) मुंबई बांद्रा, भिवंडी... अहमदाबाद शहर के कुछ इलाके, सूरत के कुछ इलाके... हैदराबाद... ऐसी कई जगह मुझे जाना पड़ा। वहाँ बुर्काधारी बहुत सारी महिलाएँ और टोपीधारी बहुत सारे मुस्लिम पुरुष देखे। उस समय उन सब पर बहुत द्वेष जागा, मन में गाली दी – ‘ये हर एक पांच-पांच पैदा करते हैं, दस साल बाद तो पूरा भारत मुस्लिमों के हाथ में चला जाएगा। इन सभी को किसी भी उपाय से रोकना चाहिए। ये लोग बकरी ईद के दिन बकरी का मांस खाते हैं, तो बकरियों को ऐसे इंजेक्शन दे दिया जाए कि उनका मांस खाने वाले मुसलमान तुरंत मर जाएँ या नपुंसक बन जाएँ... फिर उनकी संख्या नहीं बढ़े।’

ऐसे-ऐसे विचार किए। इस सबमें मुसलमानों के प्रति भारी द्वेष था। मुझे लगता है कि यह मेरा विषय ही नहीं है, और मुझे ऐसा द्वेष रखकर अपना आत्मा क्यों बिगाड़ना? मेरी इस मामले में कोई सत्ता ही नहीं है, और अगर सत्ता होती भी, तो यह कोई सही उपाय नहीं है। हिंसा प्रश्नों का समाधान नहीं है। मेरे इस द्वेषभाव के लिए विशेष मिच्छामी दुक्कंड।

(१३) पजुशन में प्रवचन सुनने जाता था, लेकिन वहाँ कई बार ऐसा हुआ कि “चढ़ावों में ही समय चला जाता है।” इसलिए ट्रस्टियों पर मुझे गुस्सा आया। लेकिन मेरा कुछ चल नहीं सकता था, इसलिए चुप बैठा रहा। इसी तरह प्रतिक्रमण के लिए तीन बजे का समय देते हैं, और पाँच बजे तक शुरू नहीं करते, इस पर भी मुझे गुस्सा आया। (यह बात संवत्सरी प्रतिक्रमण की है।)

इन सब में मुझे दो बातें सोचनी चाहिए थीं—

(A) ट्रस्टियों को संघ की व्यवस्था चलाने के लिए पैसे चाहिए, उसके लिए चढ़ावे बोलने ही पड़ते हैं...

(B) हो सकता है उनमें काबिलियत कम हो, इसलिए गलतियाँ होती हों, समय लंबा खिंच जाता हो... लेकिन इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं है। सभी में अनुशासन हो ही, ऐसा जरूरी तो नहीं है न!

मेरा कर्तव्य यह है कि मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से समझाऊँ या पत्र लिखकर समझाऊँ। फिर भी यदि वे न मानें, तो मुझे मन शांत ही रखना चाहिए। देर करना यदि ट्रस्टियों की भूल है, तो द्वेष करना मेरी भूल है।

मेरे इस अविवेकजन्य द्वेष के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(१४) जन्मवाचन के दिन म.सा. ने जन्मवाचन रोककर अपने किसी तीर्थ के लिए फंड शुरू कर दिया। मेरा उपवास था, लेकिन म.सा. ने इतना लंबा खींच दिया कि सूर्यास्त में केवल आधा घंटा बाकी था, तब जन्मवाचन किया। मुझे बहुत गुस्सा आया, क्योंकि जन्मवाचन छोड़ना नहीं था, और म.सा. “पाँच मिनट, पाँच मिनट” करते-घंटा ले गए थे।

जन्मवाचन सुनते ही तुरंत पारणा झुलाने का काम छोड़कर मैं घर भागा। पत्नी भी मेरे साथ ही थी। अब कुछ बनाने का समय नहीं बचा था, चाय-किया। लेकिन उस म.सा. के प्रति मेरे मन में बार-

आज ऐसा लगता है कि भले ही वह म.सा. की गलती रही हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि “मैं उन पर क्रोध करूँ।” उन्होंने कोई महाव्रत भंग नहीं किया। और यदि किया भी होता, तो भी मुझे उन्हें सुधारना चाहिए था, क्रोध तो करना ही नहीं चाहिए।

मेरे इस साधु-

(१५) साध्वीजी बेंठना-

ग्रहण करती हैं-यह देखकर मेरे मन में अरुचि उत्पन्न हुई। मैंने एक बार अपने परिचित साधु से कहा-

“मैं वैयावच्च के काम में जुड़ा हूँ, लेकिन मुझे साध्वियों के प्रति द्वेष जागता है। वे बंगाली मिठाइयाँ अधिक ग्रहण करती हैं। गुंदरपाक आदि देसी मिठाइयों को छूती तक नहीं। वे फलों का जूस अधिक मात्रा में लेती हैं। वे साधारण मध्यम गरम रोटली नहीं लेतीं, केवल गरमागरम रोटली ही लेती हैं, नान हो तो वही लेती हैं। पनीर की सब्ज़ी हो, तो ककड़ी आदि सब्ज़ियाँ नहीं लेतीं। सूखी सब्ज़ी तो बिल्कुल नहीं...”

तब उस साधु ने मुझे समझाया-

यह केवल साध्वियों तक सीमित नहीं है, साधुओं में भी ऐसा हो सकता है। लेकिन उनकी संख्या कम होने के कारण वह तुझे दिखाई नहीं देता, यह स्वाभाविक है।

साध्वियों में भी कई ऐसी हैं जो आयंबिल आदि अनेक तप करती हैं। उनके विषय में तेरी यह एक भी शिकायत लागू नहीं होती।

जिन साध्वियों में तुझे ये त्रुटियाँ दिखीं, हो सकता है कि वे बड़े तप के पारणे कर रही हों, नई ओली शुरू करनी हो, बीमारी हो, शरीर को कुछ ही चीजें अनुकूल आती हों-यह सब संभव है। केवल बाहरी क्रियाओं को नहीं देखना चाहिए।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आखिर वे भी पंचमकाल की साध्वियाँ हैं, भोगवाद से भरे इस युग से ही आई हैं। कर्मवश इच्छाएँ तो जागती ही हैं। केवल गोकुल-संबंधी इन त्रुटियों को देखकर उनके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए। उनका कर्तव्य है वैराग्य और विवेक बढ़ाना, लेकिन तेरा कर्तव्य है कि ऐसी त्रुटियाँ दिखें तो मन को बिगाड़ना नहीं। उन साध्वियों को अपनी माँ, बहन, बेटी के समान देख-तो द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। उन्होंने बहुत भाव से मुझे अनेक बातें समझाईं। उसके बाद वह द्वेष कभी

उत्पन्न नहीं हुआ। लेकिन उससे पहले मैंने जो भी द्वेष किया है, उसके लिए बहुत-मिच्छामी दुक्कंड।

यदि मुझे भी उनकी जैसी कठिन जीवन- , 10%
जिंदगी नहीं जी पाता।

(१६) देरासर में दर्शन करके नीचे उतरा, तो पता चला कि मात्र दस मिनट के भीतर ही
कल खरीदे हुए मेरे नए- —

“मंदिरों में भी चोर घुस आए हैं... (गाली)... भगवान के भक्तों को भी नहीं छोड़ते।”

ऐसे-

(१७) राजस्थान में विवाह-

“तू असली गहने मत ले जाना। हम नवजीवन में जा रहे हैं। 32 घंटे की यात्रा है। ट्रेन में
चोरी बहुत होती है।”

लेकिन मेरे सगे भतीजे का विवाह था। मुझे बहुत होश था, फिर भी मैंने असली गहने
ले लिए। उन्हें लगेज में रखा, और उस लगेज को लोहे की जंजीर से सीट के डंडे से
बाँधकर ताला लगा दिया।

सुबह उठी तो मेरी आँखें फटी रह गईं। ताला टूटा हुआ था और लगेज गायब था। मैंने
चीख मारी। पति हड़बड़ा कर उठे। लगेज न देखकर वे भी समझ गए। चोरों ने समझ
लिया था कि “इसी लगेज में कीमती सामान होगा, इसलिए इस पर ताला लगा है।”
इसलिए बाकी किसी लगेज को छुए बिना वही ले गए।

मेरा पूरा मूड खराब हो गया। चोरों पर इतना द्वेष आया कि “सामने मिलें तो मार-
अधमरा कर दूँ।” लेकिन ऐसा होना ही नहीं था। पुलिस में कितनी भी शिकायत करें,

कुछ होने वाला नहीं था। लाखों रुपये के गहने चले गए। विवाह में जाने की इच्छा ही मर गई। लेकिन जाना मजबूरी थी।

वहाँ सब पूछते थे- “कोई गहने क्यों नहीं पहने?”

मैं क्या जवाब देती? चुप रही। लेकिन हर बार उन चोरों के प्रति गुस्सा बढ़ता ही गया... मिच्छामी दुक्कंड।

आज समझ में आता है कि वे पुद्गल मेरे थे ही नहीं, और मैं उनके लिए राग-रही थी। आज समझ में आता है कि मेरे कर्मों के कारण मेरे गहने चोरी हुए। उसमें चोरों पर द्वेष करके नए कर्म बाँधना बहुत बड़ी भूल थी।

अब गहनों के प्रति कोई राग नहीं रहा। नए बने लाखों रुपये के गहने पड़े हैं, लेकिन आज भी यदि किसी अच्छे कार्य में उपयोग करना हो, तो मन तैयार है। उन चोरों के प्रति द्वेष हमेशा के लिए समाप्त हो गया है।

(१८) कोरोना के समय कुछ डॉक्टरों ने मरीजों की किडनियाँ चुरा लीं-यह मुझे पता चला, और डॉक्टरों के प्रति द्वेष जागा।

घाटकोपर के मेरे मित्र ने कहा-

“डॉक्टरों और लैबोरेटरी के बीच ज़बरदस्त सेटिंग होती है। लैब वाले हर रिपोर्ट पर डॉक्टर को 10% कमीशन देते हैं। इसलिए डॉक्टर जानते हुए भी कि रिपोर्ट की ज़रूरत नहीं है, फिर भी CT-Scan, MRI,

10,000 रुपये के टेस्ट हों, तो 1,000 रुपये डॉक्टर को मिलते हैं। मेरा काम हर दो महीने की 1 से 3 तारीख के बीच डॉक्टरों तक कमीशन पहुँचाने का है। डॉक्टर बहुत सख्त होते हैं, दो-

शिकार बनते हैं, जितना हो सके उतना लूटा जाता है।”

यह सब सुनकर डॉक्टरों के प्रति मेरा द्वेष और बढ़ गया।

पत्नी बीमार पड़ी तो मैंने स्वयं अनुभव किया-रिपोर्ट पर रिपोर्ट लिखवाते हैं, डराते हैं, और डर के कारण मजबूरी में खर्च करना पड़ता है।

पापा को दिल में सामान्य दर्द हुआ। डॉक्टरों ने एंजियोग्राफी की। दो नलियाँ ब्लॉक बताईं। स्टेंट डालने को कहा। विकल्प दिए गए। सस्ते स्टेंट के नुकसान गिनाकर इतना डराया कि सामर्थ्य से बाहर खर्च होते हुए भी मैंने महंगा स्टेंट डलवाया।

बाद में पता चला कि एक-

सावधानी से ठीक हो सकता है, स्टेंट की ज़रूरत नहीं होती। यह सुनकर मुझे बहुत द्वेष हुआ।

मेरी कज़िन बहन ने कहा-

“मैंने दो साल तक भारत की नामी अस्पताल में नौकरी की। मुझे आदेश था कि साल का 5 करोड़ का बिज़नेस लाना है। विदेशों से भी मरीज आते थे। मुझे पता होता था कि ऑपरेशन या रिपोर्ट की ज़रूरत नहीं है, फिर भी टारगेट पूरा करने के लिए बहुत गलत काम करने पड़े। मैं अपनी इच्छा से यह नहीं कर रही थी, अंतरात्मा मना करती थी, लेकिन मजबूरी थी। ऊपर वालों को समझाने की बहुत कोशिश की, सब व्यर्थ। मरीजों की लाचारी, उधार की बातें, टूटते चेहरे-मैंने सब देखा। मैं तंग आ गई, यह पाप असह्य हो गया, और मैंने नौकरी छोड़ दी।”

यह सब सुनकर मुझे और द्वेष हुआ।

आज ऐसा लगता है-वे गलत करते हैं, यह सच है। लेकिन उन पर द्वेष करना गलत है। मैं स्वयं भी व्यापार में बहुत गलत करता हूँ, तो क्या मुझे अपने ऊपर भी द्वेष नहीं करना चाहिए?

दूसरों के पाप देखकर द्वेष करने वाले मेरे जैसे व्यक्ति को पहले अपने ऊपर द्वेष करना चाहिए। मैंने भी ग्राहकों से धोखा किया है, तो मुझमें और डॉक्टर में क्या अंतर?

लेकिन मेरी आदत ही खराब है—दूसरों के दोष देखना और अपने दोष न देखना।

मेरी इन भूलों के लिए अंतर्मन से मिच्छामी दुक्कडं।

(१९) मेरे पास लाइसेंस नहीं था, ट्रैफिक पुलिस ने पकड़ा। 500 रुपये देने पड़े, तब छोड़ा। उस पर मुझे द्वेष हुआ।

एक बार एक ईमानदार पुलिसवाले ने पैसे नहीं लिए, बाइक ज़ब्त कर ली। ज़्यादा पेनल्टी भरनी पड़ी, कई दिनों बाद बाइक मिली। बहुत परेशानी हुई, तब उस पुलिस पर भी द्वेष जागा।

(२०) हम घूमने गए थे। टैक्सीवाले ने हमें नया समझकर बहुत घुमाकर होटल पहुँचाया। बाद में पता चला कि स्टेशन से होटल मात्र पाँच मिनट की दूरी पर था, और उसने आधे घंटे में पहुँचाया। मीटर के अनुसार पैसे दिए, छः गुना खर्च हो गया।

पहले ही दिन ऐसा अनुभव होने से मन खराब हुआ। टैक्सीवाले पर गुस्सा आया—
“दुनिया के सारे टैक्सीवाले ऐसे ही होते हैं।”

लेकिन चेन्नई की दो मुमुक्षु बहनों ने अनुभव सुनाया—वे टैक्सी से मुंबई एयरपोर्ट पहुँचीं, पर्स टैक्सी में भूल गई। उसमें 10,000 रुपये थे। दूसरे दिन ड्राइवर का फोन आया—

“बहनजी, आपका पर्स मेरी टैक्सी में मिला है। पैसे हैं, कैसे पहुँचाऊँ?”

उन्होंने ग्वालिया टैंक का पता दिया। ड्राइवर ने पैसे पहुँचा दिए। उन्होंने 2,000 रुपये देने चाहे, लेकिन उसने मना कर दिया—

“ज़िंदगी में अच्छा काम करने की खुशी मैं खोना नहीं चाहता।”

यह सुनकर लगा-दुनिया में अच्छे लोग भी हैं। हमारा पापोदय हो, तो बुरे लोग मिलते हैं।

बहुत-

—

रखने के लिए।

(२१) विवाह के शुरुआती वर्षों में सासू पर मुझे बहुत द्वेष होता था। वह मुझे नौकरानी की तरह ही ट्रीट करती थीं। लगातार कुछ न कुछ काम करवाती रहतीं-तीन समय की रसोई, झाड़ू- ... ! , ... को शिकायत करती कि “बहू आलसी है।”

मेरे माता-पिता से भी कहती कि “आपकी बेटी आलसी है, हम तो इसे बेटी समझकर निभा लेते हैं...” मुझे बहुत गुस्सा आता था, लेकिन बोलने की हिम्मत नहीं थी। उनकी बक-

,

...

बार सोचा कि “सासू मर जाए, तो शांति!”

इस सभी द्वेष के लिए मिच्छामी दुक्कड़म। दूसरों के स्वभाव को शांत मन से सहन करना चाहिए, उसे कुशायो करके क्या फायदा? और सभी का स्वभाव समान नहीं होता। मैं अपनी बहू के साथ कैसा व्यवहार करूँ? कौन जानता है?

जब मेरा मन बदलता, तो... ट्रैफिक से रास्ता निकालकर आगे बढ़ना ही सही रास्ता है, ट्रैफिक देखकर डिस्टर्ब होना सही रास्ता नहीं। इसी तरह, सासू की ढेर सारी विचित्रताओं के बीच भी प्रसन्न कैसे रहना? उसका रास्ता शांत रहना ही सही है। मन में द्वेष-

,

,

सासू बहुत खाती थीं, मसालेदार खाती थीं... मैंने मन में गुस्से के साथ सोचा, “खाउधरी हैं।” वे बार-

,

,

”

मोटा हो गया, तो मैंने सोचा, “टुनटुन जैसी है।” वह दोपहर में मस्ती से एक-

सोतीं, तो सोचा, “पाड़ी जैसी पड़ी रहती हैं।” कई बार पैरों से वस्तुएँ हिलातीं, तो सोचा, “गधे की आदत है।”

द्वेषपूर्ण ऐसे अनेक विचार मैंने सासू के लिए किए। मुझे उनके लिए कोई लगाव नहीं था, इसलिए उनके किसी भी काम में ऐसे विचार आते, द्वेष जागता।

म.सा.!! यह द्वेष धीरे- -

!

गए, सत्ता मेरे हाथ में आने लगी, मैंने सामने जवाब देना शुरू किया। जो शब्द मैंने उनके लिए सोचे थे, उन्हें क्रोधावेश में बोलने लगा... पति शांत थे, मेरे अधीन थे, मम्मी चाहती थीं तो थीं, मुझे सलाह भी देती थीं... लेकिन अब वर्षों का मेरा द्वेष प्रकट हो चुका था। वह सासू सुधरती नहीं थीं... उनका स्वभाव नहीं बदलता था, और मैं अधिक- - बिगड़ती जाती।

उनकी उम्र 80 हुई, वह हर बात में कुछ- -

“इस उम्र में उनका स्वभाव नहीं बदलेगा... भले ही बोलें, मुझे क्या?” लेकिन मैं अपनी आत्म-नियंत्रण नहीं रख सकी...

और एक दिन उनकी बक- -

—“ ,

कहा ना!” वह बिचारे हेरान रह गए। लेकिन अब उनका कुछ चलने वाला नहीं था। ससुर नहीं थे, पति मेरे अधीन थे, वे अत्यधिक घरड़े हो गए थे।

उस दिन मुझे पश्चाताप हुआ, लेकिन एक बार हाथ उठ गया, और पश्चाताप घटता गया।

एक बार अति- , ,

उन्होंने चीख मारी, लेकिन मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ। “गधेड़ी, खाउधरी, पाड़ी...” ये सभी शब्द और बाल खींचना दो-अलग किया।

एक बार मैंने उनकी साड़ी खींचकर फाड़ दी, एक बार हाथ पकड़कर जमीन पर पटका, और हाथ से खींच-

उसी समय मेरी बेटी कॉलेज से घर आई, यह दृश्य देखकर हेरान रह गई। “मम्मी! तुम यह क्या कर रही हो? छोड़ दादी को!” मैंने अपने क्रोध को काबू में लिया।

एक तरफ मैं बहुत धार्मिक थी, इन सभी भूलों का अपने गुरु से आलोचना करती थी। वे मुझे ठपका देते, सब बंद करने की स्पष्ट सलाह देते। लेकिन मैं सुधरी नहीं, वह सुधरी भी नहीं... मुझे अपनी भूलों का पश्चाताप था, फिर उसे दोबारा न करने का विचार करती थी। लेकिन जब मौका आता, मैं नियंत्रण खो देती...

म.सा.! दस दिन पहले ही मेरी सासू गुज़र गई। लेकिन अंत में उन्होंने मुझे ही याद किया, पास बुलाया... दोनों हाथ जोड़कर कहा-

“मैंने तुम्हें पूरी जिंदगी बहुत परेशान किया। अपने स्वभाव के कारण तुम्हें बहुत हेरान होना पड़ा। फिर भी तुमने मुझे संभाला, रोज समय पर भोजन दिया, दवाइयाँ दी... मैं तुम्हारा उपकार मानती हूँ। मेरी गलतियों की माफ़ी देना।”

उनके शब्दों में कहीं भी कड़वाहट-

का स्वीकार था। मेरे भयावह क्रोध के लिए उन्होंने एक भी शिकायत नहीं की। मुझे अपनी जात पर धिक्कार हुआ।

मैंने उन्हें थप्पड़ मारा, बाल खींचे, कपड़े फाड़े, घसड़ते हुए दरवाजे तक ले गई... कितना जुल्म किया... मैं कितनी हलकट! नीच! नपावट! उनके जैसी मां थी, और फिर भी मैंने डाकण जैसा व्यवहार किया।

मैंने धुस्त-

हाथ मेरे माथे पर रखे, और उनकी आँखें बंद हो गईं...

मुझे इस पाप का सख्त प्रायश्चित्त देना चाहिए।

(२२) मेरी कुल तीन नणंदें हैं। छुट्टियों में सभी अपने बच्चों के साथ पियार में आती हैं, और उस समय मेरी जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। नणंदें काम तो करती हैं, लेकिन पियार में फ्री होने के लिए आती हैं—पूरा दिन खाओ- - - ... लिए ही आती हैं।

मैं भी जब पियार जाती हूँ, तो वही करती हूँ, इसलिए उनकी भावना मैं समझ तो सकती थी, लेकिन तीन-

बहुत भारी लगता था। मेरे दो बेटे तो वैसे ही अठारह लोग धमाल मचाते, उसकी परेशानी बहुत!

सासू, ससुर + पति + देवर + तीन नणंद + 11 बच्चे... कुल अठारह लोगों का तीन समय का भोजन बनाना... हद से बाहर का काम बढ़ जाता। निस्संदेह, वे मेरी मदद करते थे, पर मेरी जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती, मैं थककर लोटपोट हो जाती। इस कारण नणंदों पर मुझे बहुत द्वेष होता, उनके बच्चों पर भी द्वेष होता... पूरा महीना मन में ऐसे ही बीतता... मेरे मन में इस द्वेष के परिणामों के लिए बहुत-

सासू-ससुर के मृत्यु के बाद अब नणंदें रहने नहीं आतीं, कभी आतीं भी तो दो-दिन में चली जाती हैं, और मैं भी उन्हें ज्यादा आग्रह नहीं करती...

(२३) मेरे ससुर पक्ष सभी बहुत धार्मिक हैं। सभी रात्रिभोजन त्याग करते हैं, बाहर का खाना लगभग बंद है। ससुर लगभग निवृत्त हैं, लेकिन परिवार पर पकड़ बहुत है।

वैसे मेरे तीन ही जेठ हैं, लेकिन पापा-

समस्या नहीं, मुझे बेटी की तरह रखते हैं, बहुत प्यार देते हैं, कभी खखड़ाते नहीं, ठपका नहीं देते। लेकिन उनका एक स्वभाव मुझे बहुत परेशान करता है।

उन्हें सुबह कम से कम दो गरम नाश्ते चाहिए, मग अलग, चाय-
निश्चित, मिठाई भी और फल भी! दोपहर में रोज एक गरम फरसाण, एक ताज़ी
मिठाई, दो सब्ज़ियाँ और फल चाहिए। शाम को कम से कम दो फरसाण चाहिए।
बीच में चाय, कॉफ़ी, फल, गरम नाश्ता-सब चलता है।

मेरी सासू मुझे सपोर्ट करती हैं, लेकिन मैं रसोई से ऊपर नहीं आती... मैं वास्तव में बहुत
थक गई हूँ, और ससुर का प्रभाव ऐसा कि मैं उन्हें कुछ नहीं कह सकती... लेकिन मुझे
उनकी तरफ बहुत द्वेष होता है। वे हॉल में बैठे-

मुझे चिड़ होती। वे खाते-

पेट फूला हुआ है, डॉक्टर ने मिठाई नहीं दी, लेकिन वे सुनते नहीं!

म.सा.! उन्हें या किसी और को मेरे इस द्वेष का कोई अंदाज नहीं। वे वास्तव में मुझे
अपनी बेटी जैसी मानते हैं, और अधिक प्यार करते हैं। मुझे कोई बात की कमी आने
नहीं देते।

मुझे केवल उनकी जीभ को संभालना है, उसके लिए मुझे मन में द्वेष क्यों करना?
ससुर की जगह मेरा बेटा होता, तो मैं उतने ही प्यार से उसे खिलाती।

म.सा.! मैं भगवान समान अपने ससुर के प्रति द्वेष के लिए मिच्छामी दुक्कड़म मांगती
हूँ। बस, मुझे इतनी सत्बुद्धि दें कि मैं इस द्वेषभाव को दूर करके, सही भावना से अपने
ससुर को प्रसन्न रख सकूँ...

(२४) मैं अक्सर रास्ते में चलते-

बिल्कुल नज़दीक से बहुत तेज़ी में बाइक वाले निकलते हैं। एक्सीडेंट होने वाला रहा।
अचानक इतना पास कोई जाता, तो डर लगता है... और मुझे वह डर तो लगा ही।
लेकिन साथ ही उन बाइकवालों के प्रति बहुत द्वेष जागा, मन में गाली भी आई। ऐसा
कई बार हुआ। अंतर्मन से मिच्छामी दुक्कड़।

(२५) घर की कामवाली धीरे-

जाती है। “यह हमारी पुरानी कामवाली है, बहुत ईमानदार और अच्छी है, उम्रवाली है... वेतन भी कम है...” इसलिए उसके ऊपर गुस्सा करना उचित नहीं लगता, लेकिन मन में उसके ऊपर कई बार अरुचि होती। उसे ठपका देने का मन भी करता-“तुम बहुत ढीली हो...”

लेकिन फिर उसकी मेहनत देखकर दया आती है, इसलिए बाहर तो चुप रहती हूँ। लेकिन मन की अरुचि रोक नहीं पाती... इसमें और कुछ नहीं। केवल दस-मिनट काम लेट होता, और महीने में तीन-स्वीकार करना है। हँसते-की उलझन ऐसी है कि वह बार-

बहुत-

वाली, विश्वसनीय यह कामवाली मैं द्वेष बिना, डबल प्यार से संभाल सकूँ-ऐसा आशीष मुझे दें।

(२६) देवस्थान में ८-

()

ज़ोर-

आवाज़ के कारण मुझे बिलकुल शांति नहीं मिलती। स्तुति बोलने या चै. वंदन करने में भी उनकी आवाज़ मुझे डिस्टर्ब करती है।

इस कारण से मुझे उन लोगों पर बहुत द्वेष जागा है, लेकिन उन्हें कहने की मेरी हिम्मत नहीं है। मैंने निश्चय किया कि “रविवार के दिन तो मैं देर से पूजा करूंगी...” लेकिन मेरा भाग्य ही अजीब है। उस दिन वहां किसी को कोई पूजा होती है। बहनों के मंडल एकत्र होकर ज़ोर-

...

मन में विचार आए कि “यह सारे मंडल बंद कर देने चाहिए...”

अब अंदाज़ आता है कि उनमें भले ही थोड़ी सी अविवेकता हो, लेकिन आखिरकार तो भक्ति ही करते हैं! मुझे कुछ करना हो, तो उन्हें विवेक देना चाहिए... उन्हें समझाने के लिए... बस ! या फिर किसी अन्य देरासर में या अन्य समय पर पूजा करना... लेकिन उन भक्तों से द्वेष क्यों करना? यह बिल्कुल अनुचित है, मिच्छामी दुक्कडं।

(२८) हमारी बिल्डिंग के ठीक नीचे मंडप लगाकर दीक्षा का कार्यक्रम रखा गया था, रात में विदाई समारोह था, जिसमें बहुत शोर हो रहा था। उसके कारण मेरे बेटे को स्कूल की पढ़ाई में दिक्कत हो रही थी, मुझे नींद नहीं आ रही थी, मेरे मन में संघ वालों, ट्रस्टियों, म.सा. पर... सभी के प्रति द्वेष जाग गया, 'इन लोगों को दूसरों का कोई खयाल ही नहीं आता... बिल्कुल जड़बुद्धि हैं।' ऐसे-ऐसे विचार आए... अचानक दस बजे आवाज़ एकदम धीमी हो गई, मुझे शांति मिली...

दूसरे दिन पत्नी ने रात में मुझे बताया कि 'आज व्याख्यान में म.सा. ने सार्वजनिक रूप से सबसे क्षमा माँगी कि तेज़ आवाज़ के कारण कई लोगों को परेशानी हुई है। यह हमारी भूल है, हमें ध्यान रखना ही चाहिए। ट्रस्टियों ने भी खड़े होकर क्षमा माँगी। वह माहौल ज़बरदस्त था।' तब मुझे लगा कि 'वे तो सच्ची क्षमापना करके पवित्र हो जाएँगे, लेकिन मेरी क्या गति होगी? मैंने तो संघ और साधुओं पर द्वेष किया है...' मैं दूसरे दिन पत्नी के साथ म.सा. के पास गया। अपने द्वेष के लिए क्षमा माँगी, तब म.सा. ने मुझे प्रायश्चित्त तो दिया, पर साथ में एक ही बात कही कि, 'भाई! आपकी ग़लती से ज़्यादा हमारी ग़लती है...' उस समय मेरे मन में साधुओं के प्रति आदर-भाव बहुत बढ़ गया...

(२९) म.सा.! दोनों बेटों की पत्नियाँ झगड़ालू निकलीं, मैं परेशान हो गई, बेटे उनकी बातों में आकर उन्हीं का पक्ष लेने लगे, दोनों अलग रहने चले गए। अब तो वे हमारे घर आते भी नहीं हैं। हम दोनों बिल्कुल अकेले रहते हैं। उनके घर पोतों से मिलने भी नहीं जा सकते। बहुओं को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। पोते-पोतियों को भी हमारे साथ रहना पसंद नहीं है। फोन पर बात करने को भी तैयार नहीं हैं। ज़िंदगी बिल्कुल अकेली

हो गई है... बेटों-बहुओं पर बहुत गुस्सा आता है, पर क्या करूँ? किसे कहूँ? मुझसे भी गलतियाँ हुई हैं, इससे इनकार नहीं। पर आखिरकार मैं भी एक माँ हूँ, क्या मेरे बेटों का इतना भी फ़र्ज़ नहीं कि, 'मुझसे मिलने आएँ, मेरा ख़याल रखें...' बचपन में मैंने कैसे उन्हें पाला-पोसा, वह सब आज याद आता है, और जैसे-जैसे याद आता है, वैसे-वैसे द्वेष बढ़ता है... क्या मेरे उपकारों का उन्होंने यह बदला चुकाया? समाज में उन चारों ने मुझे बहुत बदनाम कर दिया है, पर मैं ऐसा द्वेष-भाव नहीं रखना चाहती, मुझे इसे निकालना है... मुझे अपनी आत्मा को बिगाड़ना नहीं है... मिच्छामी दुक्कडं...

म.सा.! ऊपर का लिखने के बाद मैंने द्वेष को ख़त्म करने का एक रास्ता खोज लिया। एक ज़िम्मेदार, विश्वसनीय सज्जन को बुलाकर कहा कि 'ये मेरे सारे गहने दोनों बेटों को दे आओ... साथ में यह पत्र भी दे देना।'

वह भाई गहने दे आए, मैंने पत्र में लिखा था... 'मेरी ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं। मुझे अब इन गहनों का क्या काम? तो तुम्हें सौंपती हूँ। तुम्हें जैसा उचित लगे वैसा करना, खुश रहना... हमेशा तुम्हारी खुशी चाहने वाली माँ...' दो ही दिन बाद दूसरा लिफ़ाफ़ा भेजा। 'तुम्हारे पापा के पास कुछ प्रॉपर्टी थी, दो ज़मीनें हैं, एक फ्लैट है, यह सब अब तुम्हारे नाम कर दिया है, दस-पंद्रह करोड़ का होगा। पापा के पास जो एक-आध करोड़ हैं, उसके ब्याज़ से हमारा जीवन सुख से चल रहा है। वसीयत बनवा दी है कि हमारे मरने के बाद वे पैसे और यह अभी का घर तुम्हें मिले...' किसी भी अपेक्षा के बिना, सिर्फ़ द्वेष का नाश करने के लिए उठाए गए मेरे इस कदम का अपेक्षित प्रभाव हुआ। दो-चार दिन बाद दोनों बेटे पूरे परिवार के साथ घर आए, पैरों में पड़कर माफ़ी माँगी, मैंने भी अपनी बहुओं से ख़ूब माफ़ी माँगी... म.सा.! आज हम सब फिर से एक ही घर में रहने लगे हैं। मेरा स्वभाव बदल गया है, घर के किसी भी मामले में दखल नहीं देती। सबकी प्यारी मम्मी, मम्मीजी, दादी बनकर बैठी हूँ। 'आप भले, तो जग भला।' यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई है। स्वभाव अच्छा हो, तो सारी दुनिया हमें प्रेम करती ही है। प्रेम दो, तो प्रेम मिलता ही है... अब मेरे मन में किसी के भी प्रति लेशमात्र भी द्वेष नहीं रहा है,

धर्म-आराधना में दिन बिताती हूँ, बस, समाधिमरण पाकर जल्द ही मोक्ष प्राप्त करूँ,
ऐसा आशीष दीजिएगा..

- X - X -

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१२ : कलह

मैंने व्याख्यान में सुनकर और पुस्तक में पढ़कर जाना है कि कलह यानी झगड़ा!
आमने-सामने कुछ भी शब्द बोलना, ज़ोर-ज़ोर से चीखकर बोलना, गालियाँ देना,
अपशब्द बोलना ही कलह है! मैंने अपने जीवन में क्रोधादि कषायों से प्रेरित होकर ऐसे
अनेक कलह किए हैं... उसमें दूसरों के लिए पशुओं के नामों का उपयोग अनगिनत
बार किया है। और उसके अलावा अत्यंत गंदे अर्थ वाली गालियाँ भी अनेक बार दी
हैं।

(१) हमारे बाथरूम में कुछ लीकेज हो रहा था, उसके कारण नीचे के फ्लैट के बाथरूम में
पानी टपकता था। उस भाई ने आकर मुझसे कहा कि, 'आपको अपने बाथरूम में
रिपेयरिंग करवानी पड़ेगी।' मैंने कहा कि 'हमें तो कोई प्रॉब्लम नहीं हो रही है, प्रॉब्लम
आपको है, तो भले ही रिपेयरिंग करवा लूँ, पर खर्चा आपको देना पड़ेगा...' इस पर वह
भाई भड़क गए, 'तुम्हारे बाथरूम की रिपेयरिंग का खर्चा मैं क्यों दूँगा?' तो मैंने भी कह
दिया 'तो मुझे रिपेयरिंग नहीं करवानी है...' वह बोले 'ऐसी धूर्तता करते हुए शर्म नहीं
आती?' मैंने कहा 'धूर्त तो तुम हो...' वह बोले 'अरे, तेरा बाप धूर्त! तेरे सारे पूर्वज धूर्त...'

हम दोनों की पत्नियाँ बीच में पड़ीं, पड़ोसी भी इकट्ठे हो गए, पर हम शांत ही नहीं हो रहे
थे। लोगों ने हम दोनों को पकड़ रखा था, इसलिए हमने हाथापाई तो नहीं की, पर

अपशब्द तो बोलते ही रहे... लोग उस भाई को खींचकर नीचे ले गए। आखिरकार दोनों आधा-आधा खर्च देंगे, यह फैसला हुआ, और दोनों ने मज़बूरी में मान लिया।

आज यह सब याद करते हुए, लिखते हुए भी मुझे शर्म आ रही है, मैंने अपने ही जैन भाई के साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? सिर्फ़ १०००, २००० रु. के खर्च के लिए मैंने अपनी अमूल्य शांति का सत्यानाश कर दिया, अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(२) हम चार भाई-बहन थे! मैं तीसरे नंबर पर था। हर बात में दादागिरी करके छोटे भाई को दबाना मेरा स्वभाव था! एक बार मैंने छोटे पर गलत तरीके से दादागिरी की, बड़ी बहन से यह सहन नहीं हुआ, उसने मुझे धमकाया, मैंने कह दिया 'ऐ, तुझे बीच में नहीं पड़ना है। यह हम दोनों का मामला है।' वह बोली 'एक बार नहीं, हजार बार पड़ूंगी, मेरा भाई है।' मैंने कहा 'ऐ भाईवाली! बकवास बंद कर, तू अपना काम कर... ज़्यादा होशियार बनने की ज़रूरत नहीं है, इंदिरा गाँधी...' वह बोली... 'तुझे जो बोलना है बोल, पर उसे परेशान मत कर...' मैंने छोटे को पकड़ा, और उसके सिर पर ज़ोर-ज़ोर से टपली मारने लगा, 'ले, अब तू क्या कर लेगी बोल...' बेचारा छोटा रोने लगा, बहन बीच में पड़ी। 'छोड़, छोड़ उसे! गधे...' और मेरा पारा चढ़ गया, मैंने छोटे को छोड़कर बड़ी बहन का गला दबा दिया 'ले, कुतिया...' वह गला जान से मारने के लिए नहीं दबाया था, पर मुझे गुस्से में होश नहीं रहा और वह इतनी ज़ोर से दब गया कि बहन की आँखें फटने लगीं। अचानक मुझे होश आया, मैंने ज़ोर कम किया, हाथ छोड़ दिए... बहन बड़ी मुश्किल से बची, पर उसे वापस साँस लेने में दो-पाँच मिनट लग गए! उसे बहुत गहरा सदमा लगा। एक भाई ने अपनी बहन का गला दबाया था, वह मुझे भी चाहती ही थी, सिर्फ़ छोटे के साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ़ वह मुझे रोक रही थी... ग़लती उसकी थी ही नहीं... न उसने मम्मी-पापा को बताया, न किसी और को! पर लगभग एक महीने तक वह मुझसे पूरी तरह चुप हो गई... मुझे भी अपनी दीदी से प्यार तो था ही, पर उस समय कुछ होश नहीं रहा, इसलिए ग़लती कर बैठा था। एक महीने तक मैंने दीदी को सामान्य करने के लिए बहुत मेहनत की, बोलने-हँसाने की कोशिश की। पर वह न

बोली, न हँसी... मम्मी न होतीं, तो वह रसोई बनाती, खाना परोसती... सब कुछ करती थी... परंतु उसका चेहरा साफ़ बता रहा था कि 'उसे सदमा बहुत गहरा लगा था।'

आख़िरकार समय सभी रोगों का चिकित्सक है... रक्षाबंधन का दिन आया, उसने मुझे राखी बाँधी, मुँह में मिठाई रखी, मैंने उसके पैरों में गिरकर रोते-रोते कहा, 'दीदी! भाई का फ़र्ज़ है कि रक्षाबंधन के दिन वह बहन को वचन देता है कि 'वह तुम्हारी रक्षा करेगा।' मैंने दूसरों से तुम्हारी रक्षा करने के बजाय, अधम बनकर खुद ही तुम्हारी रक्षा को ख़तरे में डाल दिया। मैं भाई कहलाने के लायक नहीं हूँ। पर मेरी यह एक ग़लती माफ़ कर दो। अब मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि तुम्हारी रक्षा करने के लिए मरने को भी तत्पर रहूँगा...'

बहन की आँखों से आँसू बरस पड़े, उसने मुझे उठाया। मुझे गले लगा लिया... 'भैया! फिर कभी ऐसी ग़लती मत करना... तुझे माफ़ी देती हूँ।'

मैंने जो झगड़ा किया... उसके लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(३) सूरत से मेरा चचेरा भाई कुछ दिनों के लिए मुंबई हमारे घर रहने आया था। मेरा छह सहेलियों का समूह था। हम १७ मंज़िला इमारत में रहते थे। भाई की वहाँ उसी की उम्र के एक लड़के से (जो मेरी सहेली का ही सगा भाई था) दोस्ती हो गई। एक रविवार को हम छह सहेलियाँ साथ बैठी थीं। तभी उन दोनों ने हमारे बीचों-बीच पानी से भरा एक बड़ा गुब्बारा फोड़ दिया। अचानक गुब्बारा फूटने से हम सब बहुत डर गईं, और वे दोनों हँसते-हँसते भाग गए। पंद्रह मिनट बाद अचानक वे दोनों पीछे से आए और ज़ोर से कुत्ते के भाँकने की आवाज़ निकालकर हमें बहुत डरा दिया, और फिर हँसते-हँसते भाग गए...

सहेलियों ने मुझसे शिकायत की 'तुम्हारा भाई बहुत अजीब है...' हमारी बातें चल ही रही थीं कि धड़ाधड़ हमारे ऊपर तीन-चार बड़ी छिपकलियाँ गिरीं, (उन दोनों को छिपकली

पकड़ना आता था, पूँछ से पकड़कर उन्होंने हमारे ऊपर अचानक फेंक दी थीं...) इस बार हम बहुत डर गईं, दो सहेलियाँ ज़मीन पर गिर गईं, साँसें तेज़ हो गईं... हम सबको बहुत गुस्सा आया, पर वे दोनों भाग गए थे... हम सब अपने-अपने घर चली गईं, मैंने उसे छत पर आने को कहा, और वहाँ जाकर उसे खूब सुनाया 'तू अपने मन में समझता क्या है?' वह हँसा, 'तू इतनी गुस्से में क्यों है? यह तो एन्जॉय करने का खेल था।' मैं बोली 'भाड़ में गया तेरा खेल! तुझे शर्म नहीं आती लड़कियों के साथ ऐसा मज़ाक करते हुए।' वह बोला 'इसमें शर्म कैसी? मैं किसी की छेड़खानी थोड़े ही कर रहा हूँ? और तेरी सहेली का भाई भी तो था ही...' मैं बोली... 'तू अपनी ज़ुबान ज़्यादा मत चला। तुझ जैसे टपोरी, बदमाश को तो भाई कहते हुए भी मुझे शर्म आती है...' वह बोला, 'तो मेरी भी दो सगी बहनें हैं। मुझ जैसी किराए की बहन की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है...'

हम दोनों के बीच तू-तड़ाक की भाषा में काफ़ी बड़ा झगड़ा हुआ, छत पर हमें रोकने वाला भी कोई नहीं था... दोनों के मन बहुत खट्टे हो गए। हम दोनों ने एक-दूसरे के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया, मैं तंग आकर गुस्से में नीचे उतर गई... वह थोड़ी देर बाद आया, दूसरे दिन सुबह माँ ने बताया कि अचानक कुछ काम आ जाने से वह सुबह-सुबह ही सूरत के लिए निकल गया है।'

ग़लती उसी की थी, यह बात सच है... पर कुछ भी हो, वह मेरा लाड़ला चचेरा भाई था, मुझे बहुत दुःख हुआ, 'मैंने उसे एक-दो दिन बाद शांति से समझाया होता तो?...' ऐसे विचार आए, यह उम्र ही ऐसी थी कि 'धमाल-मस्ती करने का उसका मन होता था, बाक़ी वह कई मायनों में अच्छा था...'

म.सा.! वर्षों बीत गए, वह मुमुक्षु बना, दीक्षा निश्चित हुई। मेरे घर वायणा करने आया। मुझे वह पुरानी घटना याद थी। मैंने उन सभी सहेलियों को उस दिन अपने घर बुलाया, सबने उन्हें वायणा करवाया। मेरी इच्छा थी कि 'आख़िर में मैं उससे उस झगड़े के लिए

माफ़ी माँगूँ।' क्योंकि अब वह साधु बनने वाला था। अब तो वह बहुत अच्छे स्वभाव का हो गया था।

पर मैं कुछ बोलती, उससे पहले ही अत्यंत तीव्र बुद्धि वाले उसने हम सबसे नम्र भाव से कहा, 'वर्षों पहले एक रात मैंने आप सबको गुब्बारा फोड़कर, कुत्ते की आवाज़ निकालकर और छिपकली फेंककर बहुत परेशान किया था।' उसने हाथ जोड़कर सबसे क्षमा माँगी, मेरी सभी सहेलियाँ आश्चर्यचकित रह गईं... खुश हुईं... मुमुक्षु के प्रति उनके मन में सम्मान जागा...

फिर मेरी तरफ़ देखकर वह बोला, उस समय उसकी आँखें भीगी हुई थीं, और मेरी भी... 'बहन! उस रात तुमने मुझे सच्ची हितशिक्षा दी थी, पर अहंकार के नशे में मैंने तुमसे ही झगड़ा कर लिया। मुझे तुम्हारी कोई ज़रूरत नहीं है, तू मेरी बहन नहीं है, ऐसे शब्द कहे थे... इस मेरी गंभीर भूल के लिए मुझे माफ़ कर देना...' उसने मस्तक झुका दिया, मेरा गला रुँध गया। मैं कुछ बोल न सकी, पर मेरे आँसू सब कुछ कह रहे थे।

मैंने उसके माथे पर तिलक किया, और उसे गले लगा लिया... फूट-फूटकर रोने लगी... 'मुझे माफ़ कर देना भाई! और दीक्षा के बाद जब तू महान प्रभावक बने, तब इस बहन का उद्धार करने के लिए आना...'

वह विरल दृश्य देखकर मेरी सहेलियाँ भी रो पड़ीं...

मैंने भावावेश में बहुत ज़्यादा लिख दिया, सॉरी! मुझे तो बस, अपने किए हुए झगड़े के लिए क्षमा माँगनी है, मिच्छामी दुक्कडं कहती हूँ।

(४) मेरे पापा सबसे बड़े, तीन चाचा छोटे! उसमें अहमदाबाद में रहने वाले दूसरे नंबर के चाचा के पास हमारी सारी संपत्तियों के, ज़मीनों के कागज़ात थे, सत्ता थी। पापा बड़े होने के बावजूद शांत थे, वे चाचा मज़बूत थे... कुल ३००० करोड़ की हमारी प्रॉपर्टीज़ थीं, हमने कई बार चाचा से कहा कि 'इसके चार हिस्से कर दीजिए।' पर चाचाजी

बिल्कुल हमारी बात पर ध्यान नहीं देते थे... इधर पापा का देहांत हो गया, और हमें लगा कि 'अब अगर यह बँटवारा नहीं हुआ, तो अकेले चाचा सब कुछ हड़प लेंगे...' हम सुखी-संपन्न ही थे, पर ७०० करोड़ रु. क्यों जाने दें? कौन जाने देगा?

मैं और बड़ी बहन अहमदाबाद चाचा के घर पहुँचे।

मैं: चाचाजी, अब आप हमें हमारा हिस्सा दे दीजिए...

चाचा : (स्पष्ट शब्दों में...) तुम्हें जब भी खर्च के लिए पैसे चाहिए होते हैं, तब मिल ही जाते हैं न! तुम्हें कभी कोई तकलीफ़ हुई है, किसी भी काम के लिए तुमने माँगा हो, तो मैंने मना किया है? मैंने कम दिए हैं?... तो बँटवारा क्यों करना है...

मैं: पर क्या हमें हमेशा आपके सामने भीख ही माँगनी पड़ेगी? अरे, हमारे ७०० करोड़ हैं, वे हमें मिलने ही चाहिए।

चाचा : तुम्हारे-हमारे भूल जाओ, इतने सालों तक मैंने सब कुछ संभाला है, उसका क्या?

मैं: आपने संभाला है, तो ठीक है, दो-पाँच-दस करोड़ आप ज़्यादा ले लीजिए.....

चाचा : अब तू मुझे भीख देने निकला है? (ज़ोर से बोले।)

मैं: आप तो लुटेरे हैं, आप क्या भीख लेंगे? हमारे ७०० करोड़ लूटने ही तो बैठे हैं...

चाचा : सा...! तू दो कौड़ी का आदमी मुझे लुटेरा कहता है? (गुस्से में।)

मैं: अरे, सौ बार लुटेरे हो! आप इतने वर्षों से हमें तड़पा रहे हैं, राक्षस हैं आप...!

चाचा : खड़ा हो, खड़ा हो... निकल इस घर से बाहर...

मैं: अरे, यह चला। आप जैसे नीच व्यक्ति के घर में खड़ा रहना भी पाप है। पर मैं आपको छोड़ूँगा नहीं, कोर्ट में घसीटूँगा, मैं भले ही बर्बाद हो जाऊँ, पर आपको मैं शांति से जीने नहीं दूँगा...

चाचा : अरे, सुप्रीम कोर्ट तक जा, बेटे! तू मेरा बाल भी बाँका नहीं कर पाएगा...

मैं और बहन घर से बाहर निकल गए... मेरा मन बहुत अशांत हो गया। एक तरफ़ ज़बरदस्त गुस्सा, दूसरी तरफ़ 'मैंने अपने चाचा के साथ पैसों के मामले में क्यों झगड़ा किया' इसका खेद, तीसरी तरफ़ 'मैं उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाऊँगा...' इसकी हताशा... ये सभी बातें मेरे मन को परेशान कर रही थीं।

उस रात मैंने + बहन ने + माँ ने विचार किया, '७०० करोड़ के लालच में हमें अपनी शांति नहीं खोनी है। हम भूखे तो मर नहीं रहे... तो क्यों झगड़े करके अपनी शांति का हम खुद ही खून करें...'

दूसरे दिन हम तीनों ने चाचा को वॉइस मैसेज भेज दिया, 'मैंने कल आपके साथ बहुत गंदा बर्ताव किया है, उसकी माफ़ी माँगता हूँ। और हम ७०० करोड़ पर अपना अधिकार रद्द करते हैं। आपने उसे वर्षों तक संभाला है, तो आप ही उसके हक़दार हैं। कभी ऐसी कोई मुश्किल घड़ी आएगी, तो आपसे माँग लेंगे, सगे चाचा से माँगने में शर्म कैसी? उस समय आपको जैसा उचित लगेगा, वैसा कीजिएगा। आप देंगे तो ठीक, नहीं देंगे तो भी आपकी मज़ी... आपके पैसे देना या न देना, यह तो आपका ही फ़ैसला अंतिम माना जाएगा...'

'चाचा वापस जवाब देंगे, पिघल जाएँगे।' ऐसी किसी भी अपेक्षा के बिना ही हमने मैसेज भेजा था, उसके बाद पूछा भी नहीं कि 'आपका जवाब क्या है?' बस, डबल टिक से पता चल गया कि 'उन्होंने देख लिया है।'

इस बात को लगभग एक साल हो गया, हम तो यह बात भूल ही गए थे... और एक दिन महान आश्चर्य हुआ, चाचा वकील को लेकर सीधे हमारे यहाँ आ गए... सारे कागज़ात तैयार थे... चाचा ने कहा, 'तुम्हारा मैसेज पढ़ा, तब तो इतना असर नहीं हुआ था। पर धीरे-धीरे मेरी आत्मा मुझे डंसने लगी, बड़े भाई के बेटे मेरे ही बेटे हैं, मुझे उनके साथ धोखा-धड़ी नहीं करनी चाहिए... एक साल इस पूरी प्रक्रिया में लग गया, चार हिस्से हो गए हैं... तुम्हें ७०० करोड़ की प्रॉपर्टी मिल जाएगी... मुझे माफ़ कर देना...' चाचा रोए, क्षमापना हो गई, हम अब उन्हें पिता की तरह मानते हैं, अब कोई संघर्ष नहीं है, पर वह एक बार जो भयानक झगड़ा किया, उसके लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(५) मेरे बड़े भाई ने एक दिवसीय पैदल तीर्थयात्रा का लाभ लिया। वहाँ तीर्थ में दोपहर को संघ की ओर से बहुमान (सम्मान) शुरू हुआ, लगभग ३०० के आसपास लोग थे। बड़े भाई ने मंझले भाई को बहुमान के समय बुलाया, मैं सबसे छोटा वहीं बैठा था। पर मुझे नहीं बुलाया। संघ वालों ने भाई को मेरे लिए इशारा भी किया। पर भाई ने इशारे से ही मना कर दिया। और पूरे संघ के बीच दो सगे भाइयों का बहुमान हुआ, मेरा नहीं हुआ... और यह संघ तो हमारे गाँव का ही संघ था, इसलिए सभी हमारे गाँव-समाज के ही थे। उन सबके बीच मेरी इज़्ज़त चली गई। तब तो मैं कुछ नहीं बोला, पर बाद में जब हमारा पूरा परिवार इकट्ठा हुआ, तब मैंने भाई के साथ बड़ा झगड़ा किया।

मैं: आप पक्षपाती हैं, आपको मंझले भाई से अधिक प्रेम है, मुझसे नहीं...

भाई: यह सब ग़लत बात है।

मैं: तो आपने सिर्फ़ उन्हीं को क्यों बहुमान के लिए खड़ा किया, मुझे क्यों नहीं?

भाई: सीधी सी बात है, हम दोनों अहमदाबाद में एक साथ रहते हैं, और तू मुंबई में रहता है, तो मैं उसे तो बुलाऊँगा ही न।

मैं: बड़े भाई! आपने उन्हें बुलाया, उसके लिए मैंने कब मना किया है। पर मुझे बुलाने में आपको क्या आपत्ति थी? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?

भाई: खर्चा सारा मेरा है। तो मेरी मज़ी होगी, उसे बुलाऊंगा, तुझे क्या लेना-देना?

मैं: ऐ, तेरे पास ज़्यादा पैसा है, उसका अहंकार मत कर... नहीं तो दुर्योधन और रावण जैसी तेरी हालत होगी।

भाई: तुम्हें बोलने का होश भी है? तुम अपने बड़े भाई से बात कर रहे हो। तुम्हें मुंबई में काम पर लगाने वाला यह तुम्हारा बड़ा भाई ही है। तुम्हारी दोनों बेटियों की शादी में पैसों की तंगी के समय तुम्हारी मदद करने वाला यही तुम्हारा बड़ा भाई था। जब हम गाँव में मिलते थे, तब एक-एक महीने तक तुम्हें एक रुपये का भी खर्च नहीं करने देने वाला, सारा खर्च खुद उठाने वाला यही तुम्हारा बड़ा भाई था। और आज उसी भाई ने सम्मान के लिए तुम्हें खड़ा नहीं किया, सिर्फ इतनी सी बात पर तुम मुझसे झगड़ने चले आए, यह तुम्हारी नालायकी है...

मेरी और उनकी आवाज़ ऊँची होती जा रही थी, परिवार हमें शांत करने की कोशिश कर रहा था, लेकिन हम दोनों में से कोई भी चुप होने को तैयार नहीं था। उन्होंने 'नालायक' शब्द का इस्तेमाल किया। मैं तुरंत खड़ा हो गया, उन्हें एक थप्पड़ जड़ देने की खुन्नस सवार हो गई। पर मैंने ऐसा नहीं किया, हाँ! चेहरा गुस्से से लाल हो गया था।

मैं: तुम यह सब बोलकर मुझे नीचा दिखा रहे हो न, याद रखना, जिस दिन मेरे पास पैसे आएँगे, उस दिन ब्याज समेत तुम्हारे मुँह पर मारूँगा... और तब तक तुम्हारे घर का पानी भी मेरे लिए हARAM है...

पत्नी का हाथ पकड़कर मैं चलने लगा, उस वक्त बड़े भाई ने मेरा क्रूर मज़ाक उड़ाया, 'तुम अपने परिवार का पेट तो भर नहीं सकते, मेरे पैसे क्या चुकाओगे?' ये शब्द मुझे बहुत चुभ गए, मैंने उनकी ओर तीखी नज़रों से देखा, वे व्यंग्य से हँसे, 'अपनी पत्नी की

साड़ी देखो, उसका एकदम पतला सा मंगलसूत्र देखो, और पैरों में चाँदी की पायल देखो, हाथ में पहनी पतली सी अंगूठी देखो। हाथ की काँच की चूड़ियाँ देखो... फिर मुझसे कहना कि मैंने कुछ गलत कहा है? लोग तुम्हें मेरे भाई के रूप में पहचानते हैं, बस इतनी बात याद रखना... और सीधे-सादे बनकर अपने परिवार को संभालो।'

मैं गुस्से में पैर पटकता हुआ वहाँ से निकल गया। दुःख तो बहुत हुआ, गुस्सा भी बहुत आया, पर अपनी कमज़ोरी के कारण मैं कुछ कर न सका। अब मुझे पछतावा होता है कि ऐसी तुच्छ बातों के लिए मैंने झगड़ा क्यों किया? पैसे उसी के थे, तो उसकी जैसी इच्छा होती, वैसा करता। मुझे कोई अपेक्षा क्यों रखनी चाहिए... मि. दुक्कड़। मैंने बड़े भाई से क्षमा-याचना भी कर ली है... और हमारे बीच सारा व्यवहार भी जारी है।

(नोट : अब आगे कलह के दृष्टांतों में क्या बातचीत हुई, यह लगभग नहीं दर्शाया जाएगा, पाठक स्वयं समझ लें। केवल किस परिस्थिति में किसके साथ झगड़ा हुआ... ज़्यादातर यही दर्शाया जाएगा।)

(६) ट्रेन में मेरा सामान हटाकर एक भाई ने अपना सामान वहाँ रख दिया, इस बात को लेकर उनके साथ धीरे-धीरे करते हुए भयंकर झगड़ा हो गया। फिर पत्नी ने मुझे बड़ी मुश्किल से रोका, और दूसरे यात्रियों ने उस भाई को! वह भी अपने परिवार के साथ ही थे, और सज्जन थे, पर जगह की कमी के कारण मेरा सामान थोड़ा हटाकर उन्होंने जगह बनाई थी, बस, इसी बात को लेकर मैंने बहुत झगड़ा किया। मिच्छामी दुक्कड़।

(७) ताश खेलते समय दोस्तों ने धोखा किया, मुझे ठगा। मुझे पता चला तो इस बात को लेकर मैंने उनसे झगड़ा किया।

(८) ऐसा ही क्रिकेट में हुआ! सामने वाली टीम के साथ छोटी-छोटी बातों को लेकर ज़बरदस्त झगड़ा हुआ।

(९) म.सा.! मेरा स्वभाव शुरू से ही बहुत बोलने और झगड़ा करने का रहा है! इसीलिए मेरी शादी के बाद पति के साथ अनगिनत झगड़े हुए। मेरे पति शांत, कम बोलने वाले, बिल्कुल गुस्सा न करने वाले, हर बात को सह जाने वाले थे...

शादी के करीब एक साल बाद सास के साथ खटपट शुरू हो गई। मैं रात में उनसे शिकायत करती, पर उनका अपनी माँ के प्रति बहुत लगाव था! तो वे मेरी बात पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते थे। धीरे-धीरे मेरा गुस्सा बढ़ने लगा। और इस वजह से उनके साथ झगड़े बढ़ने लगे...

‘तुम एकदम डरपोक हो... जाओ, अपनी माँ की गोद में जाकर बैठ जाओ... ‘मम्मी! मम्मी!’ ही करना था, तो मुझसे शादी करके मेरी ज़िंदगी क्यों बर्बाद की... मुझे एक भी बच्चा नहीं चाहिए था, तुम खुद बच्चे जैसे हो, अब दूसरा बच्चा पैदा करके मुझे परेशान नहीं होना है... तुम्हारे मुँह में दही जमा है, अपनी माँ को कुछ कह नहीं सकते... बेवकूफ! तुम तो दिन भर ऑफिस में पड़े रहते हो, यहाँ तुम्हारी माँ मुझे अपने वचनों के बाणों से बेधती रहती है... इससे तो नरक अच्छा है...’

पति मुझे शांत रखने के लिए बहुत कोशिश करते, पर वैसे भी मेरा स्वभाव धड़ाधड़ बोलने का तो था ही, उस पर यह कारण भी मिल गया... आग में घी पड़ गया, मेरे इस झगड़ालू स्वभाव के कारण मैंने पति को और सास को बहुत दुःखी किया... उसके लिए भी मि. दुक्कंड। अब तो कई साल बीत गए, जब सुधरना था, तब मैं नहीं सुधरी... अब सुधरी हूँ, तो उसका ज़्यादा लाभ तो नहीं है, फिर भी अपनी आत्मा का स्वभाव सुधारने का प्रयास करती हूँ।

(१०) मुझमें कामवासना बहुत थी, पर उन्हें इसमें कम रुचि थी, धर्म की ओर मुड़ने के बाद तो वे लगभग ब्रह्मचर्य का ही पालन करते थे। इस वजह से मेरे उनके साथ बहुत झगड़े हुए। ‘तुम तो बेकार हो, नपुंसक हो, तुममें कोई दम नहीं है।’ ऐसे-ऐसे शब्द मैं उन्हें सुना चुकी हूँ... मि. दुक्कंड।

(११) मेरी पत्नी को वैसे तो धर्म में विशेष रुचि नहीं थी, पर एक चातुर्मास में उसे म.सा. के व्याख्यान बहुत पसंद आ गए, दिन में तीन-तीन घंटे व्याख्यान सुनने जाती, तप करती, पूजा करती... मुझे धर्म में ज़्यादा रुचि नहीं थी। बस, पूजा कर लेता था... वह मुझे म.सा. के पास भी ले गई। उन्होंने मुझे व्याख्यान सुनने के लिए प्रेरित किया, मैंने मना तो नहीं किया, पर गया भी नहीं।

पत्नी ने मुझसे कहा, '५० दिन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।' मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी। पर उसे खुश रखने के लिए मैंने यह बात मान ली। ५० दिन बाद उसने पूरे चौमासे के लिए मुझे ब्रह्मचर्य का पालन करने को कहा। मैंने पूरी तरह अनिच्छा से भी वह बात मान ली... मैं उसे खोना नहीं चाहता था...

चौमासा पूरा हुआ, चौमासी चौदस की रात को मुझसे कहती है कि 'म.सा. का दस दिन बाद विहार है, तो उतने दिन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं...' बस, अब मेरा नियंत्रण खो गया। मैं बहुत ही गंदा बोल गया...

मैं: वो महाराज तेरा कोई लवर है क्या? कि जब तक वह यहाँ है, तब तक तू मेरे साथ सुख नहीं भोग सकती?

पत्नी: आप क्या बक रहे हैं?...

मैं: मैं बक नहीं रहा, सच कह रहा हूँ। लगता है तुझे रात में उनकी सेज गर्म करने जाना पड़ता है।

पत्नी: चुप! चुप रहिए! वो मेरे गुरु हैं...

मैं: तो मैं तेरा पति हूँ, कोई बदमाश-शैतान-हैवान नहीं। तुझे चार-चार महीने तक धर्म करने दिया, उसका यह फल है... (ज़ोर-ज़ोर से बोला।)

हम दोनों के बीच ज़बरदस्त झगड़ा हुआ, बेहद मतलब बेहद!

दूसरे दिन दोपहर में अचानक मेरे मन में आया कि 'मुझे घर जाकर देखना चाहिए कि मेरी पत्नी कहाँ है?' और मैं दुकान से दोपहर दो बजे घर पहुँचा, घर पर ताला लगा था, मैं उपाश्रय पहुँचा! मैंने देखा तो पत्नी मेरे बेटे को लेकर म.सा. के पास बैठी थी, और झगड़े की बात कर रही थी... मेरा पारा सातवें आसमान पर पहुँच गया... मैंने ज़ोर से कुर्सी उठाकर ज़मीन पर पटक दी, अचानक मुझे आया देखकर पत्नी डर गई, 'हरामज़ादी! मैंने मना किया था, फिर भी तू इस हरामखोर म.सा. के पास आई?'

मैंने म.सा. से तू-तड़ाक की भाषा में बात करना शुरू कर दिया, म.सा. एक अक्षर नहीं बोले, लगातार दस मिनट तक मैं बोलता ही रहा... वे शांत रहे, फिर... फिर मैं रो पड़ा। रोते हुए उन्हीं म.सा. के चरणों में झुक गया... 'म.सा.! मेरा परिवार टूट जाएगा... मेरी दो बेटियाँ हैं, दो बेटे हैं... यह मूर्ख अगर ऐसे ही बर्ताव करेगी, तो मेरी ज़िंदगी का क्या होगा? मैं पुरुष हूँ, मेरी कामवासनाएँ हैं, क्या मुझे वेश्यागमन या परस्त्रीगमन करना है?'

म.सा. ने मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरा, मुझसे कहा, 'भाग्यशाली! क्या आप मेरी बात शांति से सुनेंगे? तो मैं आपको विस्तार से बात बताऊँ...' मैंने चुप रहकर ही सिर हिलाकर हाँ कहा। तब बहुत वात्सल्य के साथ उन्होंने मुझसे कहा... 'देखिए, भाई! इन बहन ने चार महीने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, यह तो मुझे आज ही पता चला। आप इनसे पूछिए, अरे! संघ में किसी से भी पूछिए... क्या मैंने कभी अकेले पति या अकेली पत्नी को ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा दिलाई है? कभी नहीं। दोनों हों, तभी प्रतिज्ञा दिलाता हूँ। अब कोई अपनी मज़ी से कुछ करे, तो उसमें हमारा क्या दोष? दूसरी बात... उन्होंने आपकी अनुमति लेकर ही ब्रह्मचर्य का पालन किया है... हालाँकि उनकी गलती यह हुई कि उन्हें आपकी प्रसन्नता देखनी चाहिए थी... आपने मज़बूरी में हाँ कहा है... यह सब तो उन्हें समझना ही चाहिए था। अभी मैं उन्हें यही डाँट रहा था कि 'जब पति गुस्सा हुए, उसी वक्त तुम्हें समर्पित होकर माफी माँग लेनी चाहिए थी...' म.सा. की बातों से मुझे बहुत शांति मिली। मुझे समझ आया कि म.सा. की कोई गलती थी ही नहीं...

और साहबजी! असलियत यह भी थी कि मेरे तीनों भाई बिज़नेस में बहुत आगे निकल गए थे। और मैं सबसे बड़ा भाई होने के बावजूद मेरा धंधा मुश्किल से चल रहा था। उसका तनाव तो मेरे सिर पर था ही, मेरे लिए एकमात्र सहारा मेरी पत्नी ही थी। मुझे ऐसा डर बैठ गया कि 'अगर इसने दीक्षा ले ली तो? तो मेरे चार बच्चों को कौन संभालेगा?' यह सब मिलकर एक हो गया, इसीलिए मैंने पत्नी के साथ भयंकर झगड़ा किया, म.सा. के सामने बहुत बुरा-भला कहा... बहुत-बहुत मि. दुक्कंड। अब तो वही म.सा. मेरे गुरु हैं। साल में एक बार उनसे मिलने जाता हूँ...

(१२) मैंने अपने पति के साथ छोटी-छोटी बातों पर झगड़े किए हैं। • वे मुझे रविवार को घुमाने नहीं ले जाते, छुट्टियों में बाहर घुमाने नहीं ले जाते... इस बात पर झगड़े... • वे मुझे समय नहीं देते, रात को घर आने के बाद माँ-बाप के पास एक घंटा बैठकर फिर बेडरूम में आते, इस बात पर झगड़े। • वे कहीं न कहीं कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा कर देते, इस बात पर झगड़े... • ननद का ससुराल में झगड़ा हुआ, तो उसे घर में रखने के लिए वे सक्रिय हो गए, तो इस बात पर उनके साथ झगड़े... (कि सारे गाँव का ठेका आपने ही ले रखा है...) • परिवार के लोग उनका इस्तेमाल करते, और वे भोले बनकर सबके तारणहार बनने दौड़ पड़ते, तो इस बात पर झगड़े... • देवर-जेठ दुकान पर कम समय देते, मेरे पति सारी ज़िम्मेदारी संभालते, इस बात पर झगड़े। • देवर-जेठ साल में दो बार घूमने जाते, और ज़्यादा खर्च करते। मेरे पति मुश्किल से एक बार घूमने जाते, वह भी छोटे-से सस्ते ट्रै में निपटा देते... धंधा एक होने से खर्च तो एक ही फर्म से होता, इसलिए मेरे पति की कमाई पर दो भाइयों की मौज जैसा माहौल बन जाता, तो इस बात पर झगड़े! • मैं जब झगड़ती, तब वे मेरी बात को मना नहीं करते, 'देखेंगे, देखेंगे' करते, और आखिर में करते अपनी ही मन की... इस बात पर भी झगड़े... • मैं बोलती रहती, वे कुछ न बोलते, कई बार तो हँसते, मेरा मज़ाक उड़ाते... इस बात पर झगड़े... • बीच में उन्होंने तंबाकू बहुत खाना शुरू कर दिया था, इस बात पर झगड़े... • दोस्तों की बुरी संगत से जुआ खेलने लगे, शराब पीने लगे, सिगरेट पीने लगे, इस बात पर झगड़े...

• रात को दो-दो बजे घर आते, कभी-कभी नशे की हालत में भी होते... इस बात पर झगड़े... • बच्चों की ज़रा भी ज़िम्मेदारी नहीं उठाते, सब कुछ मेरे सिर पर ही डाल देते, इस बात पर झगड़े। • रात को बेडरूम में आने के बाद भी मोबाइल पर बातें, कभी-कभी गेम... इस बात पर झगड़े। • मेरे मम्मी-पापा-भाई-बहन के साथ रिश्ते नहीं निभाते, उनके कार्यक्रमों में जाने में आलस करते, मुझे अकेले जाने को कह देते। इस बात पर झगड़े।

बाप रे! ३० साल की शादीशुदा ज़िंदगी में मैंने कम से कम ३००० झगड़े तो (छोटे-बड़े सब मिलाकर) किए ही हैं। मानो धक्के मार-मारकर शादी की गाड़ी चलाई है... मेरे इन ३००० झगड़ों का प्रायश्चित्त कम से कम ३००० उपवास तो बनता ही होगा। मिच्छामी दुक्कंडं।

(१३) बिज़नेस में पार्टनर ने धोखा किया, तो उसके साथ बड़ा झगड़ा किया।

(१४) मैंने दो-तीन रिश्तेदारों को करुणा और लगाव के कारण कम ब्याज पर पैसे दिए थे, पर बाद में उन्होंने पैसे लौटाने से मना कर दिया। तो उनके घर जाकर बड़ा झगड़ा किया, गालियाँ दीं, धमकियाँ दीं...

(१५) एक ग्राहक के साथ मेरा ८० लाख का बिज़नेस हुआ, मैंने तो उसे माल दे दिया। पर उसने समय बीत जाने के बाद भी पैसे नहीं दिए। मैं बार-बार तकादा करने जाता था। उसने मुझसे कहा कि 'मेरी बड़ी रकम आगे फँसी हुई है...' तारीख पर तारीख मिलती गई, आखिरकार मेरा धैर्य जवाब दे गया, और एक रात फोन पर उसके साथ भयंकर झगड़ा किया। माँ-बहन की गालियाँ दीं, अब तक उसने 'पैसे नहीं दूँगा' ऐसा नहीं कहा था, पर मेरी आज की गालियों के कारण वह बोला, 'तुम जैन होकर ऐसी गंदी गालियाँ देते हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। अब तो मेरे पैसे आ भी जाएँगे, तो भी तुम्हें नहीं दूँगा, जा... तुझसे जो होता है कर ले।' और उसने फोन ही काट दिया, अब मैं अपना गुस्सा किस पर उतारूँ? मुझे मज़बूरन चुप होना पड़ा। पर मैंने बहुत-बहुत बुरे शब्द बोले थे, 'मैं उसकी बेटी और उसकी पत्नी के साथ अभद्र व्यवहार करूँगा।' इस हद

तक के शब्द मैंने कहे थे... यहाँ मैंने वे गंदे शब्द लिखे नहीं हैं, पर उनका भावार्थ ऐसा ही था...

वर्षों बीते, और एक दिन वह ग्राहक मेरी दुकान पर आया, उसे देखकर ही मेरा गुस्सा बढ़ने लगा... पर उसने मुझे एकांत में ले जाकर २० लाख रुपये दिए... और कहा कि 'मुझे पैसे देने ही थे, पर उस वक्त मैं फँसा हुआ था, बाकी दोस्त! मेरी नीयत कभी पैसे हड़पने की नहीं थी... और बाकी के ६० लाख भी जैसे-जैसे मेरे लिए अनुकूलता होगी, वैसे-वैसे देता जाऊँगा।'

मुझे उसकी शराफत छू गई, मैंने तो वह नुकसान स्वीकार कर ही लिया था। और मैं तो वह बात याद भी नहीं करता था। अगर वह मुझे न देता, तो उसका कोई नुकसान नहीं होने वाला था। मैंने बाज़ार में उसकी पूरी बदनामी तो कर ही दी थी, वह अब मिटने वाली नहीं थी। इसके बावजूद उसने पैसे लौटाने शुरू कर दिए। मुझे अपना किया हुआ झगड़ा याद आया, मैंने उससे बाद में क्षमा माँग ली। मि. दुक्कडं... पैसे के लिए मुझ जैसे करोड़ों लोग कितना भयंकर पाप बाँधते होंगे...

(१६) मेरी सबसे अच्छी सहेली मेरी ड्रेस ले गई। पर जब लौटाई, तो वह कहीं फँस जाने से फट गई थी, मैंने उसे टोका, 'ज़रा ध्यान से इस्तेमाल करना था न, इतनी महँगी ड्रेस तुम्हें विश्वास से दी, और तुम...' वह तुरंत बोली, 'एक ड्रेस थोड़ी सी फट गई, इसमें तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही हो?' बस, इतनी सी बात पर झगड़ा बढ़ गया, और हमेशा के लिए बोलचाल बंद हो गई... जड़ वस्तुओं के लिए चेतन के हृदय को तोड़ देने वाली ऐसी वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ नष्ट हों, इतना आशीर्वाद दीजिएगा...

(१७) मेरा दोस्त मेरी नई-नवेली बाइक किसी काम से लेकर गया। शाम को लौटाने का कहकर गया था... पर रात तक नहीं लौटाया... मैंने फोन किया, तो कहने लगा 'कल शाम को दूँगा।' उसने मेरे साथ बदमाशी की, मैंने उसे खूब खरी-खोटी सुनाई, दूसरे दिन सुबह ही वह बाइक दे गया, और बस इतना ही कह गया कि 'दोस्त! माँ बीमार थी,

अस्पताल बहुत दूर था... इसलिए तुम्हारी बाइक ले गया। मेरी बाइक खराब है, मरम्मत के लिए दी है। डॉक्टर के कहने पर आज दूसरी बार भी माँ को ले जाना है, ऑटो में आने-जाने में महंगा पड़ता है। तुम्हारी बाइक थी, तुम पर विश्वास था। इसलिए आज भी रखने वाला था... पर अब कोई बात नहीं। ऑटो का खर्च होगा, वह चला लूंगा। पर दोस्त! बाइक से दोस्ती कहीं ज़्यादा महंगी है, यह मत भूलना।' इतना कहकर पानी पीने के लिए भी रुके बिना वह चला गया। मैं हैरान-परेशान सा उसे देखता रहा, उसे पैसों की कोई खास समस्या नहीं थी, पर फिज़ूलखर्ची क्यों करे? मैंने झगड़ा करके बहुत कुछ बिगाड़ दिया, एक दोस्त खो दिया। मिच्छामी दुक्कड़!

(१८) मेरी पार्किंग की जगह पर बिल्डिंग के दूसरे भाई ने अपनी गाड़ी पार्क कर दी थी। मैं बाहर से आया था, अब मैं अपनी गाड़ी कहाँ पार्क करूँ? मुझे गुस्सा आया! नीचे उतरकर मैंने उसके सारे टायरों की हवा निकाल दी... उसी वक्त वह भाई आ गए, वे मुझे भला-बुरा कहने लगे, तो मैं भी उन्हें भला-बुरा कहने लगा, हमारा झगड़ा बहुत बढ़ गया, वे अजैन भाई थे, अत्यधिक क्रोध में उन्होंने एक बड़ा पत्थर उठाया, और मेरे सिर पर मारने के लिए दौड़े, उस वक्त वहाँ मौजूद वॉचमैन आदि ने बड़ी मुश्किल से उस भाई को रोका, मैं भी घबरा गया था, इसलिए मैंने फिर बात को ज़्यादा नहीं खींचा। शांति से, समझाने-बुझाने से काम लेने के बजाय मैं जुनून में आ गया था। इसीलिए मैंने फिर बात को ज़्यादा नहीं खींचा। शांति से, समझाने-बुझाने से काम लेने के बजाय जब-जब मैंने जुनून में आकर काम किया है, तब-तब सब बिगड़ा ही है, अगर चौकीदार वगैरह बीच में नहीं आते, तो वह मेरा सिर फोड़ ही देते... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(१९) मेरी दीक्षा लेने की भावना थी। पर माता-पिता की 'ना' थी... मैंने उन्हें बहुत समझाया, पर वे तैयार नहीं हुए। रात में हम तीनों साथ में प्रतिक्रमण करने के बाद मेरी दीक्षा के बारे में ही चर्चा कर रहे थे, उस चर्चा में मेरा गुस्सा आसमान पर चढ़ गया, मैं और पापा ज़बरदस्त कहासुनी पर उतर आए। मैंने कहा, 'मैं अनाथ होता, मेरे माँ-बाप

मर गए होते, तो अच्छा होता। मैं दीक्षा तो ले पाता...' और पापा बोले, 'अगर तूझे अपने उपकारी माँ-बाप के मरने की ही इच्छा है, तो तू दीक्षा के लायक ही नहीं है। आज तू हमारे सामने जैसा मन में आए, वैसा बकवास कर रहा है, तो कल तू अपने गुरु के सामने, ट्रस्टियों के सामने, संघ के सामने भी बकवास करेगा... अब तो मैं ही तेरे गुरु से कहूँगा कि इस नालायक को दीक्षा मत देना।' यह सुनकर मैं और ज़्यादा गुस्सा हो गया। 'आप एक बार कहकर तो देखिए, फिर मेरी लाश ही आपके हाथ आएगी।'

वह मामला बहुत बिगड़ गया। प्रतिक्रमण के आखिरी २० मिनट बाकी थे, तब यह झगड़ा शुरू हुआ था, और वह एक घंटे तक चला... प्रतिक्रमण पाप धोने के लिए होता है, उसी में मैंने घोर पाप बाँधा, सामायिक समता के लिए होती है, उसी में मैंने क्रोध किया... वह भी अपने माँ-बाप के सामने!... अंत में और भी कई घटनाएँ घटीं, मेरे भाव गिर गए, और दीक्षा नहीं हुई... पर वह एक अलग बात है। मुख्य बात तो यही है कि मैंने अपने मम्मी-पापा के साथ, और उसमें भी मुख्य रूप से पापा के साथ, चालू सामायिक-प्रतिक्रमण में झगड़ा किया, मुझे उन्हें समझाना चाहिए था, मनाना चाहिए था, क्रोध के अलावा भी रास्ते थे...

उपाय तो अनेक थे ही। मुझे उन्हें अपनाना चाहिए था... उसकी जगह मैंने बहुत ही बुरा किया... पिताजी तो धार्मिक थे, फिर भी उन्हें ऐसा विचार आया कि 'क्या आजकल ऐसे ही सब झगड़ालू मुमुक्षु दीक्षा लेते होंगे... क्या इसीलिए दीक्षा के बाद भी ग्रुप में, गच्छों में, ट्रस्टियों के साथ झगड़े करते होंगे?... ' उनके इन सब विचारों का मैं निमित्त बन ही गया...

(२०) मेरा बेटा तपोवन में पढ़ा। मुझे भी उसमें अच्छे संस्कार आएँ, यह तो अच्छा लगता ही था। परंतु हुआ यह कि S.S.C. के बाद उसने मुझे बताया कि 'मुझे दीक्षा लेनी है।' इसके लिए मैं तैयार नहीं था। मैंने उसे साफ़ मना कर दिया। मैंने उससे कहा, 'तू सीधा घर आ जा...' पर वह नहीं आया, तो मैं और उसके दादा वगैरह दो-चार लोग

म.सा. के पास गए, मैंने वहाँ सीधा झगड़ा ही शुरू कर दिया, 'आपको तो अपने चले बढ़ाने की ही पड़ी है। यहाँ हमारा क्या होगा? बुढ़ापे में हमें कौन संभालेगा? मैंने उसे तपोवन में रखा, आप पर यह विश्वास करके कि आप उसे संस्कार देकर सच्चा श्रावक बनाएँगे, पर आप तो उसे सीधे दीक्षा ही देने लगे, इतने लालची क्यों बनते हैं, महाराज! हमें शांति से जीने तो दीजिए...' म.सा. ने मुझे शांति से समझाया कि 'आपकी अनुमति के बिना दीक्षा नहीं ही देंगे...' पर मेरा गुस्सा शांत नहीं हुआ, मैंने बेटे का कॉलर पकड़ा, और उसे घसीटा, म.सा. ने कहा 'ऐसा न करें, यह शोभा नहीं देता...'

लेकिन मैंने उनसे कह दिया 'ऐ! यह मेरा बेटा है। पूरी ज़िंदगी मैंने इसे बड़ा किया है। तू अपना देख...' तब किसी श्रावक ने कहा, 'म.सा. के साथ 'तू-तड़ाक' की भाषा में बात करते हुए आपको शर्म नहीं आती?' तो मैंने कहा 'उन महाराज को हम जैसे एक-एक बेटे वाले माँ-बाप पर दया नहीं आती...' लड़का मेरे साथ आ नहीं रहा था, तो मैंने म.सा. के सामने ही उसे मारा, श्रावक बीच-बचाव करने लगे, पर मैंने उसे मारना नहीं छोड़ा...

आखिर में म.सा. ने उससे कहा कि 'तुम इनके साथ चले जाओ...' वह मेरे साथ आ गया, उसके बाद मैंने उसे विदेश में ही पढ़ने भेज दिया, वर्षों बाद उसकी शादी की, और उसकी अच्छी मानी जाने वाली पत्नी भयंकर झगड़ालू निकली, वह मुझसे अलग रहने चला गया (उसकी इच्छा नहीं थी...) आज वह बेटा होते हुए भी न होने के बराबर है। उसका हमें फ़िजिकल सपोर्ट तो है ही नहीं, उल्टे, समाज में मेरा नाम बदनाम होने से मेंटल सपोर्ट भी नहीं। उल्टे मेंटली स्ट्रेस रहता है। उस समय मुझे एहसास हुआ कि मैंने म.सा. के साथ कितना गंदा व्यवहार किया था? उन्होंने स्पष्ट कहा ही था कि, 'वे या उनके गुरु कभी भी माँ-बाप की अनुमति के बिना दीक्षा देते ही नहीं हैं।' तो मुझे उन पर गुस्सा करने की ज़रूरत ही नहीं थी। और उनके १०० साधुओं का गुण है। उनमें सभी साधुओं की दीक्षा माँ-बाप की सहमति से ही हुई है। एक की भी दीक्षा सहमति के बिना नहीं हुई...

पर मैंने उनकी बात नहीं मानी, झगड़ा किया। म.सा. के साथ तुच्छ व्यवहार किया... उसके लिए बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं। मैंने उन म.सा. के पास जाकर भी माफ़ी माँग ली है।

(२१) कॉलेज में एक युवक के राग में मैं अंधी थी, पर वह मेरे साथ गेम खेल रहा था। मेरे साथ मीठी-मीठी बातें कीं, शादी करने के वादे किए, और एक दिन मुझे पता चला कि 'वह तो किसी दूसरी लड़की के प्रेम में है...' मुझसे सहन नहीं हुआ, कॉलेज के कंपाउंड में ही मैंने उसे थप्पड़ मार दिया, 'चीटर! तुमने मुझे खिलौना समझकर मेरे साथ खेल खेला है।' वह बोला, 'तुम खुद मेरे पास आई हो, मैं तुम्हारे पीछे पागल होकर नहीं भटक रहा था। इन सबको दिखाऊँ तुम्हारे प्रेम भरे मेसेज...' ऐसा कहकर वह मोबाइल निकालकर मेरे भेजे हुए लव-मेसेज पढ़ने लगा, मैंने मोबाइल छीनने की कोशिश की, पर वह सतर्क था, उस समय मैंने उसे मनचाही गालियाँ दीं, 'तेरी शादी किसी के भी साथ नहीं होने दूँगी...' मैंने धमकी दी, सामने उसने भी गालियाँ दीं... फिर मेरी सहेलियाँ मुझे वहाँ से खींचकर ले गईं...। बहुत समय तक मेरा क्रोध-द्वेष उस पर बना रहा, पर अंत में सही समझ आई, एक लड़के के पीछे पागल बनना मेरी भूल थी। उसकी भूल वह जाने, पर पुद्गलों से प्रेम करना तो मेरी सबसे बड़ी भूल थी ही। इसके लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं...

(२२) मैं ट्रस्ट मंडल में ट्रस्टी था, पर मैंने ट्रस्टियों की मीटिंग में अनेक बार झगड़े ही किए हैं। सब मुझसे तंग आ चुके थे, पर वोटिंग में मैं अपने समाज की ओर से हर बार चुनकर आता था, तो मुझे निकालने की ताकत किसी में नहीं थी। जो निर्णय मात्र पाँच मिनट में हो सकता था, वह निर्णय मेरे झगड़ों के कारण पाँच मीटिंगों तक भी नहीं होता था। मैं कुतर्क कर-करके दूसरों के काम अटकाता था। ऐसा मैं क्यों करता था, यह मुझे नहीं पता। बस, एक स्वभाव, अपनी बुद्धि-प्रतिभा दिखाने का भी स्वभाव... मेरे कारण संघ के अनेक कार्य अटक गए, बहुत कुछ बिगड़ गया... आज धर्म समझने के बाद यह पश्चात्ताप होता है कि मैंने ऐसा क्यों किया? मैंने समर्थन किया होता, तो

कितना अच्छा होता... मैंने घोर अंतरायकर्म बाँधा है। मैंने एक ट्रस्टी को 'गधी के पेट के' जैसे शब्द कहे हैं। मैंने एक ट्रस्टी को धक्का मारा है, और वह ट्रस्टी बड़ी उम्र के, धार्मिक, समझदार, सज्जन व्यक्ति थे, प्रमुख थे... पर मैंने उनकी सज्जनता का गलत फायदा उठाया है। बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कडं।

(२३) मैंने सास और जेठानी के साथ झगड़े कर-करके उन्हें परेशान कर दिया, तंग आकर उन्होंने ही कहा कि, 'तुम लोग अलग रहने चले जाओ।' मुझे बस इतना ही चाहिए था। और मैं पति को चढ़ाकर अलग रहने चली गई। पति को माँ-बाप के लिए बहुत लगाव था, परंतु पति मेरे डर से चुप थे। वे बहुत दुःखी रहते थे, वे माँ-बाप से मिलने जाते तो भी मैं उनसे झगड़ा करती, उसके बाद वे छिपकर मिलने जाने लगे... मैंने माँ-बाप और प्यारे बेटे को अलग करने का घोर पाप अपने झगड़ालू स्वभाव के कारण किया, उसके लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(२४) लड़के क्रिकेट खेल रहे थे, उन्होंने मेरे घर का काँच तोड़ दिया... मुझे बहुत गुस्सा आया, उन लड़कों में जिसने बैटिंग की थी, उसे पकड़ा, उसके घर जाकर उसके माँ-बाप से पैसे माँगे, वे कहने लगे 'लड़के तो खेलते ही हैं, और उसमें काँच टूट भी सकता है, इसमें इतना गुस्सा किस बात का? और पैसे तो माँगने ही नहीं चाहिए।' बस, इसी बात को लेकर मैंने उनके साथ बहुत झगड़ा किया। आखिर में उन्होंने पैसे दिए, तब मैंने उन्हें छोड़ा। पर उसके बाद अनेक बार उन लड़कों की गेंद मेरी छत पर या घर में आई, और मैंने वापस नहीं दी, लड़के मुझसे माँगते, 'अंकल! बॉल दे दीजिए ना।' पर मैंने उन सबको धमकाया, फिर वे भी सामने आ गए, एक लड़का तो बोला, 'अंकल! आप इस तरह लड़कों को परेशान करते हैं न, इसीलिए आपकी पचास की उम्र होने के बावजूद भगवान ने आपको एक भी लड़का या लड़की नहीं दी...' उसने मेरी दुखती रग दबा दी, मैं गुस्से में आ गया, आमने-सामने बहुत कहा-सुनी हुई...

आज उस बात को भी वर्षों बीत गए, अब तो मैं लगभग सेवानिवृत्त हूँ। अब वहाँ कोई खेलने वाला नहीं है। ट्रैफिक का शोर आता है, अब मन करता है कि 'मेरे घर के बाहर लड़के खेलते हों, तो उन्हें देखकर आनंदित होऊँ, उन्हें अपना बेटा समझूँ।' पर अब वह समय नहीं रहा। मन उदास हो गया, मैंने क्यों उन लड़कों से झगड़े किए, उन सबको खुश रखा होता तो? प्रेम से सूचना दी होती तो? घर में आ गई गेंद मैंने उन्हें खुशी-खुशी वापस कर दी होती तो?... तो कितना अच्छा होता...

मेरे किए उन झगड़ों के लिए अंतर से मि. दुक्कंड। उन लड़कों और उनके माँ-बाप के दिलों को दुःखी किया, उसके लिए मिच्छामी दुक्कंड।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१३ : अभ्याख्यान

मैंने प्रवचनों में सुनकर और पुस्तकों में पढ़कर अभ्याख्यान का अर्थ इस प्रकार समझा है। 'सार्वजनिक रूप से किसी पर झूठा आरोप लगाना ही अभ्याख्यान है।' कोई व्यक्ति जिसने हिंसा-झूठ-चोरी आदि कोई पाप नहीं किया है, और फिर भी क्रोध से प्रेरित होकर, ईर्ष्या से प्रेरित होकर, दुश्मनी से प्रेरित होकर, किसी की बातों में आकर, उतावले स्वभाव से प्रेरित होकर कई लोगों के बीच उस व्यक्ति के लिए यह कहा जाए कि इसने हिंसा, झूठ, चोरी... जैसा पाप किया है... उसका नाम अभ्याख्यान!

उस समय वह व्यक्ति उपस्थित हो या न हो, पर यह दोषारोपण यदि कई लोगों के बीच किया गया हो, तो वह अभ्याख्यान ही है।

यह जानने के बाद मैंने अपने जीवन में इस संबंध में जो-जो पाप किए हैं, उन सभी को याद कर-करके उनकी आलोचना करूँगा। हे प्रभु! मैं अपने पापों को ठीक से याद कर सकूँ, इतनी मुझे शक्ति देना। कुछ भी न छिपाऊँ, इतनी मुझे शक्ति देना।

(१) मेरे पास एक वीडियो गेम था, और मुझे बहुत प्रिय था। (हाथ में रखकर खेलने वाला गेम! वह सेल से चलता था, पापा एंटवर्प से लाए थे।) मेरी बहन को भी वह पसंद था, पर वह मेरे पास, मेरी अलमारी में ही रहता था। एक बार की बात है, मेरा दोस्त घर आया था, आधा घंटा रुका, बीच में मैं वॉशरूम गया था, उसके जाने के बाद सहज रूप से ही मैंने गेम खेलने के लिए अपनी छोटी अलमारी खोली, तो उसमें गेम नहीं था, मुझे मन में पक्का लगा कि 'दोस्त आया, तब तक तो गेम था... और उसके जाने के बाद गेम गायब! इसका अर्थ ही यह है कि 'वही उसे चुराकर ले गया है...' मुझे बहुत गुस्सा आया, क्योंकि वह मेरा प्रिय गेम था। और जिस पर मुझे विश्वास था, वैसे दोस्त ने ऐसा किया, इसलिए मेरा शक और भी पक्का हो गया। मैंने सभी दोस्तों से कहा कि 'वह दोस्त चोर है। उसने मेरे यहाँ से गेम चुराया है।' दोस्त मानने को तैयार नहीं हुए, एक ने कहा भी कि 'वह दोस्त तो ऐसा नहीं है। वह चोरी नहीं कर सकता...' पर मैंने तो दृढ़ता से यह बात कही।

यह बात दूसरे दिन उसके पास पहुँची। उसे गहरा सदमा लगा, उसने मुझे फोन किया, 'तुमने मुझ पर ऐसा आरोप लगाया? तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है?' मैंने कहा 'तुम्हारे पास ऐसा कोई गेम है नहीं। इसलिए तुम चोरी करो तो आश्चर्य नहीं...' वह बोला, 'मैं भले ही मध्यमवर्गीय परिवार से हूँ, पर चोरी का तो सपने में भी विचार नहीं किया... मेरी माँ ने मुझे गहरे संस्कार दिए हैं।' मैंने कहा, 'सोना देखकर संन्यासी भी चंचल हो जाता है, तो तुम्हारी क्या बात?...' वह बोला 'दोस्त! एक दिन तुम्हें ज़रूर एहसास होगा कि तुमने झूठा आरोप लगाया है।' उसने फोन काट दिया। मैं कमरे से बाहर निकला, और मेरी आँखें फटी रह गईं। मेरी बहन सोफे पर बैठकर गेम खेल रही थी, वह वही गेम था। जिसकी चोरी का आरोप मैंने दोस्त पर लगाया था।

‘तुम्हारे पास यह गेम कहाँ से आया?’

‘क्यों?’ वह मेरा चेहरा देखकर आश्चर्यचकित हुई। ‘तुम्हारी अलमारी से कल लिया था, उसके बाद से मेरे पास ही है...’

‘पर, तुमने कब लिया था?’

‘तुम वॉशरूम गए थे, तुम्हारा कोई दोस्त गैलरी में खड़ा था, उस समय लिया था... क्यों?’

मैं सब समझ गया, कि हकीकत क्या हुई थी, वह दोस्त बीच में दो-तीन मिनट के लिए गैलरी में गया होगा, उसी समय बहन आकर ले गई होगी, वह गेम लेकर निकल गई होगी, और दोस्त वापस गैलरी से कमरे में आया होगा, और उसी समय मैं वॉशरूम से बाहर आया होऊँगा... ऐसी विचित्र घटना का मुझे कोई अंदाज़ा नहीं आया और मैंने बिना सोचे-समझे आरोप लगा दिया। मुझे दोस्त से पूछना चाहिए था। कम से कम सार्वजनिक रूप से तो नहीं ही कहना चाहिए था...

मैंने तुरंत दोस्त को फोन लगाकर सच्ची बात बताई, शाम को सभी दोस्तों को भी सच्ची बात बताई, पर उसके बाद हमारी दोस्ती में एक बड़ी दरार पड़ गई।

मेरी इस जल्दबाज़ी-जन्य अभ्याख्यान की भूल के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कंड।

(२) वर्षों पहले की बात है, मैं और समाज के कुछ अन्य लोग गाँव के ट्रस्टियों के खिलाफ़ मनमानी बातें करने लगे थे। उसका कारण तो अभी याद नहीं, पर शायद यही हो सकता है। हमारा अहंकार आहत हुआ हो, ट्रस्टी के प्रति ईर्ष्या जागी हो, किसी की बातों में हम आ गए हों... और एक दिन की बात... किसी प्रसंग पर उपाश्रय में संघ के २००० लोग इकट्ठे हुए थे, और मैंने और हमारे ग्रुप ने खड़े होकर एक मुख्य ट्रस्टी पर आरोप लगा दिया कि ‘इन्होंने संघ के पैसे खाए हैं, गहने चुराए हैं।’

पगड़ी पहनने वाले उस ट्रस्टी को गहरा आघात लगा। उन्होंने खड़े होकर कहा 'म.सा.। इन २००० लोगों के सामने इन युवाओं ने मेरी इज़्ज़त पर दाग़ लगाया है। मैं इसे सहन नहीं करूँगा। अब तो यह मेरी पगड़ी का सवाल है।' और उस ट्रस्टी ने अपनी पूरी पगड़ी खोलकर उपाश्रय के दरवाज़े के पास बिछा दी।

'जिसे भी बाहर जाना होगा, उसे इस पगड़ी पर पैर रखकर, मेरी इज़्ज़त पर पैर रखकर जाना पड़ेगा। श्रीसंघ को मेरी सूचना है कि अभी ही सबकी उपस्थिति में मैं यदि श्रीसंघ की सभी वस्तुओं का साफ-सुथरा हिसाब न दिखाऊँ, तो पूरा संघ मेरी पगड़ी पर पैर रखकर बाहर जाए। और यदि मैं साफ हिसाब दिखा दूँ, तो आरोप लगाने वाले ही मुझे यह पगड़ी मेरे सिर पर बाँधकर मेरी इज़्ज़त सुरक्षित करेंगे।'

उनकी दहाड़ सिंह गर्जना थी, म.सा. ने भी उनकी बात स्वीकार की, लोगों ने भी मान ली। फिर तो वे बही-खाते ले आए, संघ के अन्य अग्रणियों को सारा हिसाब दिखाते गए, हद तो तब हो गई जब देरासर के गहनों की तो बात ही क्या, देरासर की पूजा करने वाली जर्मन सिल्वर की कटोरियों का भी उन्होंने हिसाब दिया... कटोरियाँ भी गिनवाईं। हिसाब में इतनी सटीकता थी कि हम सब पूरे संघ के सामने बिलकुल झूठे साबित हुए। आखिर में हमारे ग्रुप को खड़ा होना पड़ा। नेता के तौर पर मुझे ही उनके सिर पर पगड़ी बाँधनी पड़ी, लोगों ने उनकी जय-जयकार की, उसमें हमारी ओर का दुर्भाव स्पष्ट था। मुझे उस समय बहुत बुरा लगा था... पर आज ऐसा लगता है कि गलती मेरी ही थी। तो उसमें बुरा क्या था? मैं २००० लोगों के बीच आरोप लगाऊँ, वह भी बिलकुल झूठा... तो उसके सामने मुझे सबके सामने उनकी पगड़ी बाँधनी पड़े, इसमें अनुचित क्या है? उसके बाद तो मैंने उनसे व्यक्तिगत रूप से भी माफ़ी माँगी। आज तो मेरे उनके साथ बहुत अच्छे संबंध हैं, अरे, मुझे उनकी प्रामाणिकता, उनकी चुस्ती पर अत्यंत आदर है, सद्भाव है, बहुमान है। मुझे उनके जैसा बनने की तमन्ना है। वे मेरे आदर्श हैं, मैं उनसे ट्रस्ट के कार्यों की रीति-नीति सीखता हूँ... पर उस अभ्याख्यान के लिए मिच्छामी दुक्कंड।

(३) हमारे साथ ही व्यापार करने वाले एक भाई का अचानक पुण्योदय बढ़ा, और बहुत कम समय में वह बहुत आगे निकल गया, मैं और हम सब तो वहीं के वहीं रह गए। यूँ समझिए कि पहले हम सब ८-१० करोड़ के मालिक थे। और अब हम तो वहीं के वहीं रहे। पर वह ८०-१०० करोड़ का मालिक बन गया। स्वाभाविक है कि पैसे बढ़ने से उसका स्टेटस बढ़ा, घर बदला, विशाल बंगला लिया... इन सबके कारण मुझे उससे ईर्ष्या होने लगी, मेरे साथ के अन्य लोगों को भी हुई, पर मुझे दूसरों की बात नहीं करनी, मुझे तो केवल अपनी आत्मा की ही बात करनी है। मैंने सबके सामने कहा कि, 'यह तो भाई! दो नंबर का काम करके इतना ऊँचा आया है। भगवान जाने कितनी गोलमाल की है, ऐसा सब हम करें न, तो हम भी करोड़ों कमा लें, पर ऐसे रास्ते हम पकड़ते नहीं। स्मगलिंग, गोलमाल, मिलावट... यह सब तो उसी को शोभा देता है, उसके पास यह सब करने की बुद्धि भी है, साहस भी है, और इच्छा भी है। मेरे पास बुद्धि और साहस तो है, पर ऐसा करने की मेरी इच्छा ही नहीं है।'

इस तरह मैंने अपने अ-विकास को अपनी नैतिकता बताकर ढँका, और उसके विकास पर गोलमाल, स्मगलिंग आदि का आरोप लगा दिया।

हकीकत यह थी कि उसने अनीति की थी या नहीं, इसकी मुझे १% भी खबर नहीं थी, बस, ईर्ष्या से प्रेरित होकर आरोप लगा दिया था...

इसका नुकसान मुझे बहुत हुआ। वह तो आगे बढ़ता गया, पर इस तरफ मुझे धंधे में नुकसान हुआ। कर्ज़ तो नहीं हुआ, पर एकदम संकट में जीने का समय आ गया... अब मुझे समझ आया कि 'मैंने जो झूठा आरोप लगाया था, उसी के कारण मेरे सारे पैसे डूबे हैं।' नुकसान तो ठीक है। पर अब मुझे मेरा वह पाप खटकता है। उसके लिए मैं अंतर से मिच्छामी दुक्कडं कहता हूँ।

(४) मैंने अपने एक करीबी रिश्ते की महिला पर आरोप लगाया कि 'वैसे तो धर्म की सारी बातें करती है, सामायिक-पूजा आदि भी करती है। और फिर भी उसने एबॉर्शन

करवा दिया। इतनी घोर हिंसा करते हुए इन लोगों को दया नहीं आती? घर में उसके तीन संतान हैं, इसलिए चौथा नहीं चाहिए था तो कटवा दिया, पर ऐसा कैसे चलेगा? चौथा नहीं चाहिए था, तो अपने सुख भोगने पर कंट्रोल रखना चाहिए था न! वासनाओं को कंट्रोल में रखती नहीं और फिर अपनी ही संतानों को कटवाती है... यह कैसा धर्म है...'

हमारे पूरे सर्कल में यह बात फैल गई। लोग उसकी निंदा करने लगे, उस महिला को जब इस बात का पता चला, तब वह एक बार मेरे पास आई। उसने मुझे डॉक्टर की फाइल दिखाई। उसने कहा, 'आपको कोई भी आरोप लगाने से पहले कम से कम सोचना तो चाहिए था... कि सच्ची हकीकत क्या है? रिपोर्ट में गर्भस्थ शिशु एबनॉर्मल आया, और डॉक्टर ने एबॉर्शन की सलाह दी। तो भी मैंने जन्म देने का निर्णय किया। अपने पति से भी लड़ी, लंगड़े-लूले को भी पालने की तैयारी रखी, पर वह बच्चा गर्भ में ही मर गया, इसलिए उसे साफ़ करने के लिए डॉक्टर का ट्रीटमेंट लिया। क्या मृत बच्चे को साफ़ करना एबॉर्शन कहलाता है? आपने मेरी इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी।'

तब मुझे सच्ची हकीकत का पता चला, परंतु तब तक बहुत कुछ बिगड़ चुका था, मेरी इस भूल के लिए मि. दुक्कंड। मैंने उस महिला से क्षमा माँग ली है। पूरी बात जाने बिना मुझे कुछ भी बोलना ही नहीं चाहिए। और सचमुच उसने गलती की भी हो, तो भी मुझे उसे प्रचारित करने की ज़रूरत ही कहाँ है?

(५) मेरी ज़िंदगी में मैंने एक अति भयानक पाप किया है म.सा.! मुझे किसी भी तरह उससे छुटकारा दिलाइएगा... हुआ यह कि मेरे एक बेटे को एक म.सा. से दीक्षा की भावना हुई, पर मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। मैंने उसके गुरु से झगड़ा किया... उन्होंने मुझे शांति से सारी बात समझाई, 'आपका बड़ा बेटा है, आपके अनुकूल भी है। सेवा करता है... फिर क्यों मना करते हैं?' पर मैंने साफ़ मना कर दिया।

बेटे ने मुझे से कहा कि 'आप मना करेंगे, तो ये म.सा. तो दीक्षा नहीं ही देंगे। पर आपकी 'हाँ' तक मैं इन्हीं के पास रहकर आराधना करूँगा...'

वह घर नहीं आया, मुझे गुस्सा आया, मुझे वैसे भी साधुओं पर विशेष सद्भाव नहीं था, इस प्रसंग के बाद तो मुझे उस म.सा. के प्रति भयंकर द्वेष जागा। मैंने साधुद्वेषी जैनों को खोजा। उनका समर्थन लेकर व्हाट्सऐप पर उस म.सा. के लिए गंदी बातें फैलाने की शुरुआत की, उनके ऊपर झूठे आरोप लगाए। हजारों लोगों ने मेरे उन अनाम झूठे खराब संदेशों को देखा-

था... उन्होंने मेरे बेटे को वहां से विदा दी तो बेटा किसी वृद्ध आचार्य के पास गया, मुझे तो अब रास्ता मिल गया था, इसलिए मैंने अब व्हाट्सऐप पर उन आचार्य के ऊपर गंदे आरोप फैलाने शुरू किए... लेकिन मेरी धारणा यहां गलत पड़ी, वह आचार्य किसी से नहीं डरते थे। उन्होंने तो कुछ ही दिनों में मुझे पलटकर जवाब दे दिया, उन्होंने मेरे बेटे को दीक्षा दे दी... अब मुझे क्या करना चाहिए? मेरे परिवार वाले तो वडीदीक्षा में गए, लेकिन मैं नहीं गया, उसके बाद मैं बेटे से मिलने गया। मुझे बेटे के म. के लिए बहुत राग था... मैं उनके सामने बैठकर खूब रोया। उन्होंने मुझे समझाया कि 'आज आपके बेटे म. ऊपर कोई ऐसे झूठे आरोप लगाए तो? उन्हें कितना आघात लगेगा? आपको कितना आघात लगेगा?' मैं उनकी बात समझा, फिर तो मैंने व्हाट्सऐप के माध्यम से ही माफी मांगी कि 'ये सभी झूठे आरोप मैंने ही लगाए हैं, और मैंने घोर पाप केवल मेरे बेटे के अंधराग के कारण किया है। इसके लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।'

लेकिन म.सा.! आप मुझे इसका सख्त से सख्त प्रायश्चित्त जरूर दें...

(६) मेरे सातवें कक्षा के क्लासटीचर हमारे ड्रॉइंग सर के साथ कई बार बातें करते, कभी वह सर क्लास में आकर भी बातें करते, कभी हँसते भी सच में। उस समय मेरी उम्र केवल बारह साल की थी, लेकिन मैंने मित्रों में, घर में सभी जगह यह बात फैला दी कि 'ये दोनों का लव-एफेयर है। दोनों एक-दूसरे को लाइन मारते हैं...' केवल उनकी बातों-चीतों के आधार पर उनके लिए ऐसी गंदी बातें फैलाना अत्यंत अनुचित था। और अब ऐसा लगता है

कि मान लो कि वास्तव में उन दोनों के बीच लव-रिलेशन है, तो भी मुझे उनके उस दोष को चारों ओर फैलाने, प्रचार करने की आवश्यकता कहाँ है? मेरी यह गलती थी। वैसे, वह सर-टीचर दोनों के मैं प्रिय विद्यार्थी था, क्योंकि टीचर के साइंस विषय में और सर के ड्रॉइंग में... दोनों में मैं मास्टर था... ऐसे उपकारी लोगों के लिए इस प्रकार अपप्रचार करना अत्यंत गलत काम है, और मैंने वह काम किया है, मिच्छामी दुक्कडं।

(९) म.सा.! लगभग आठवीं कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक और फिर कॉलेज के तीन वर्ष ऐसे आरोप हँसी-मजाक में या कभी किसी के प्रति वैरभाव से या कभी किसी के प्रति ईर्ष्या से मैंने कम से कम पचास बार तो किए ही होंगे। अच्छे परिवार की, सीधी-सादी शांत लड़कियों के किसी ना किसी लड़के के साथ जैसे चाहे संबंध बना कर अपप्रचार किए, और बिचारी उन लड़कियों को रुलाया है, वे परेशान हुई हैं, कुछ नवयुवती लड़कियों ने तो कॉलेज ही बदल लिया है। कुछ ने पढ़ाई ही बंद कर दी है, एक लड़की अत्यधिक तनाव में आकर आत्महत्या कर गई है। इसके लिए मैंने जो झूठा प्रचार किया वह उसके माता-पिता तक पहुँच गया, और उसके पिता भयंकर सख्त थे। उन्होंने उसे बहुत डांटा... पहले बहुत कहा कि 'यह झूठी बातें हैं' लेकिन पिता ने नहीं मानी। मेरे कारण वह बहुत हताश हुई, और उसने फांसी ले ली... जो भी लड़कियां मुझे पसंद थीं, मैंने उन्हें मित्र बनाने की कोशिश की और उन्होंने नहीं माना, उन लड़कियों पर मुझे गुस्सा आया, और गुस्से से प्रेरित होकर मैंने उन्हें बदनाम किया... कुछ लड़कियों ने मुझे तिरस्कार किया, तब उनके प्रति वैरभाव जागा, और मैंने बदला लेने के लिए उन्हें बदनाम किया... कुछ लड़कियां दूसरे लड़कों के साथ प्यार में थीं, और उनकी ईर्ष्या से प्रेरित होकर मैंने उन्हें बदनाम किया, बदनाम करके उनके प्यार तोड़ा, इसमें मुझे खुशी हुई, मेरी ईर्ष्या को भोजन मिला। लेकिन ऐसा तो कितनी देर तक चलता? ऐसी कई लड़कियां दिखाई देतीं, जो दूसरे लड़कों के साथ खुश थीं... यह सब देखकर मैं जलकर राख हो जाता। लेकिन मुझे कौन सदबुद्धि देगा?... म.सा.! इसमें जब एक लड़की ने आत्महत्या की, और सारी जानकारी बाहर आई, उसके पिता ने उसे जिस तरह बेरहमी से मारा, वह सब सार्वजनिक हुआ... फांसी ली उसका फोटो देखा गया, और उसकी आखिरी चिट्ठी पढ़ी कि 'मैंने किसी के साथ लव-एफेयर नहीं किया था, मेरे अरमान थे कि 'बहुत पढ़ाई करके बड़ी डिग्री पाकर अपने पिता का नाम रोशन

करूँ...' पिता ने मेरे लिए बहुत बलिदान दिया है, नौकरी करते हैं, वेतन बहुत बड़ा नहीं है, फिर भी मुझे पढ़ाकर वह बहुत बड़ा हस्ती बनाना चाहते थे... जब उनके पास मेरे लव-एफेयर के झूठे समाचार पहुंचे, तब वे अपना गुस्सा रोक नहीं पाए, और मुझे मेरी... मुझे उनके मार का कोई खेद नहीं, मुझे उन पर कोई गुस्सा नहीं... लेकिन उन्होंने मुझे बहुत प्यार दिया है, मेरी सभी इच्छाएं पूरी की हैं। आज उनकी इज्जत समाज में मेरे कारण खत्म हो गई है। मैं मरकर भी उनकी इज्जत की रक्षा करना चाहती हूँ। मेरी बात आप पूरी सच मानो कि जो लड़के के साथ मेरे लव के झूठे संदेश आपने सुने हैं, वे बिल्कुल झूठे हैं। मैं उस लड़के से आज तक एक मिनट भी बात नहीं की... मैंने अपने पिता के संस्कार बनाए रखे हैं। पिता! आप मुझ पर कोई रंज नहीं, लेकिन आप इतना मुझ पर भरोसा रखो कि आपकी यह बेटी बिल्कुल भी गलत कदम नहीं उठाई...' बस, इस बार मुझे बहुत पश्चाताप हुआ कि 'मेरी इन गलत प्रवृत्तियों से कितना भयंकर नुकसान हुआ है।' मुझे उस लड़की के पिता से माफी मांगने का मन हुआ, लेकिन मुझे लगा कि 'अगर मैं ऐसा करूंगी, तो वह मुझे छोड़ेंगे नहीं...' इसलिए मेरी हिम्मत नहीं हुई। लेकिन मैंने इतना काम किया कि उसके पिता के पास जाकर कहा 'अंकल! आपकी बेटी इतनी सीधी और शुद्ध थी कि उसने एक मिनट भी कभी किसी लड़के से बात नहीं की। मैंने सामने उसकी बात करने की कोशिश की, तो उसने मुझे स्पष्ट कर दिया कि 'मेरे पिताजी को यह पसंद नहीं, और इसलिए मुझे भी पसंद नहीं! तो आप गलत मत लगाइए, लेकिन मुझे किसी लड़के से मित्रता करनी ही नहीं!... अंकल! मेरे लक्षण अच्छे नहीं हैं, लेकिन आपकी बेटी की उस बात ने मुझे इतना प्रभावित किया कि रोज मैं उसे देख कर देवी मानकर सिर झुकाता... और कोई भी लड़का उसके साथ बात करना चाहे, तो मैं न जाने देता कि 'उसे बिल्कुल परेशान न करो...' अंकल! वास्तव में वह निर्दोष थी, किसी पापी लड़के ने उस पर बिल्कुल झूठा आरोप लगाया है। अंकल! वह १००% निर्दोष ही थी।' उनके मेरे शब्दों के माध्यम से बेटी पर विश्वास अति दृढ़ हुआ, और साथ-साथ बेटी के झूठे आरोप बिना विचार किए ढेर मेरे मार्य का और उसके कारण उसने की गई आत्महत्या का दुख भी बढ़ गया... यह दोनों चीजें हुईं... म.सा.! वर्षों बीत गए उस बात को, आज भी उस पिता से माफी मांगने की मेरी हिम्मत नहीं है, आप मुझे ऐसे ढेरों अनुभवों का सख्त से सख्त प्रायश्चित्त दें...

(८) मेरा स्वभाव संदेहशील था, ईर्ष्यालु भी था... मेरी सगाई हो जाने के बाद मैंने अपनी फीयोन्सी पर संदेह किया, उसे कॉलेज में दोस्त थे। उनमें लड़के-लड़की सभी थे... उसमें एक लड़के के साथ उसकी बातचीत अधिक होती थी, इसलिए मुझे अधिक संदेह हुआ, उसके मन में ऐसे कोई भाव नहीं थे, इसलिए वह तो मुझसे भी बात करती, मुझसे कुछ छुपाकर नहीं रखती थी, लेकिन मेरी अनजानी शंका के कारण हमारे बीच के संबंध बिगड़ गए, सगाई मैंने ही तोड़ दी, उसने बहुत माफी मांगी, लेकिन मैंने उसकी बात नहीं मानी, और समाज में उसके लिए एक ही बात कही, 'उसकी चालचलन अच्छी नहीं है, उसका किसी के साथ अफेयर चलता है...' सगाई तो टूटी, लेकिन उसकी ऐसी छाप के कारण दो वर्ष तक उसकी सगाई नहीं हुई, वह बिचारी बहुत परेशान हुई, आज मुझे ख्याल आता है कि 'मैंने कितनी गंभीर गलती की है...' मेरी शादी तो जल्दी हुई, लेकिन कजियाखोर पत्नी के कारण दुखी हूँ, उसकी शादी भले दो साल बाद हुई, लेकिन प्रेमालु पति के कारण खुश हूँ। प्रकृति फल देती है। मेरी गलती के लिए मिच्छामी दुक्कंड।

(९) मेरे स्वभाव के कारण मुझे ही भयंकर नुकसान हुआ। मैंने अपनी पहली पुत्रवधू के लिए समाज में मसाला डालकर कई झूठी बातें फैलाई, उसने मेरी कोई बात नहीं मानी, इसमें मेरा Ego ठेस पहुंचा, इसलिए मैंने उसे बदनाम किया। 'यह तो एकदम झगड़ाखोर है, आलसी है। कुछ काम नहीं करता, सामने जवाब देता है, मुँह तोड़ देता है...' समाज के लोगों द्वारा यह सारी बातें उसके माता-पिता तक पहुंची, उन्होंने उसे डांटा कि 'तुम क्यों सासू को परेशान करती हो?' उसे उस समय सारी जानकारी मिली, उसने दोनों पक्षों को इकट्ठा किया, और एक-एक खुलासा करती गई, और मुझे झूठा साबित कर दिया। मेरे बेटे और पति ने मुझे ही डांटा, उसके बाद मामला शांत हुआ। लेकिन तब तक पुत्रवधू चारों ओर बदनाम हो चुकी थी... उसका दुख बहुत था। उसने कहा 'मम्मी! मैं ऐसी भावनाओं के साथ आई थी कि पति को कम खुश रखूँ, तो चलेगा। लेकिन मुझे तो मम्मी को खुश रखना है, लेकिन आप मेरी भावना नहीं समझ

पाए। मैं आपकी बेटी बनने आई थी। लेकिन आप मुझे बेटी या पुत्रवधु नहीं, बल्कि लोगों में डाकण के रूप में चित्रित किए...’ म.सा.। मैंने गंभीर गलती की है। अभी वह साथ है, लेकिन सांध तो सांध ही है। अंतर से मिच्छामी दुक्कड़म मेरा स्वभाव बदले, उसकी पूरी मेहनत करूंगी।

(१०) ससुराल में पति-सासू के साथ मेरा स्वभाव सेट नहीं हुआ, मुझे घरेलू स्त्री बनना नहीं था, मुझे नौकरी करनी थी, रसोई-झाड़ू-पोंछा... यह सब मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। मुझे नौकरानी जैसा महसूस होता था। अंततः इसके लिए झगड़े हुए, पति-सासू ने मुझे मेरी जिम्मेदारी समझाई, ‘तुम नौकरानी नहीं, बल्कि घर की रानी बनती हो... क्यों नौकरी करके नौकरानी बन रही हो?’ लेकिन मेरे मन में यह बात नहीं उतरी। मैं पीर गई, मुझे तलाक ही लेना था। इसके लिए मैंने पति + सासू पर झूठे आरोप लगाए, वे मुझे मारते हैं, टॉर्चर करते हैं, मेरी शक्ति न होने के बावजूद मुझे पशु की तरह काम में झोंकते हैं... वे मेरे पापा के पैसे लेने के लिए कहते हैं, बार-बार कहते हैं कि ‘तुम्हारे पिता से इतने हजार लेकर आओ, नहीं तो तुम्हें घर नहीं आने देंगे...’ इसलिए अब मैं त्रस्त हो गई हूँ। मेरे रडवाड़ी नाटक के कारण कोर्ट मान गई, समाज ने भी मेरी ही बात सही मानी, और अंत में तलाक हुआ। मां-बेटी ने मुझे समझाने बहुत कोशिश की, लेकिन उनकी बात मैंने नहीं मानी। इसके बाद मेरी नई शादी हुई, उसकी भी किसी अन्य लड़की के साथ हुई। नए ससुराल में मुझे नौकरी के लिए छूट तो मिली, लेकिन कुछ ही महीनों में मेरे स्वच्छंद स्वभाव के कारण संघर्ष शुरू हो गया। अब दूसरी बार पीर तो आई, लेकिन पापा ने कहा ‘अब दूसरी बार तलाक संभव नहीं। तुम्हारा ही खराब दिखेगा, तुम्हारा पहला पति तो उसकी घरेलू पत्नी के साथ अत्यंत खुश है। समाज के फंक्शनों में उनकी जोड़ी देखकर लोग दो-मीठे बोलते हैं। क्योंकि पत्नी बिल्कुल शांत-विवेकी है...’

अंत में मुझे ससुराल ही जाना पड़ा, समझौता करना पड़ा, लेकिन आज लगता है कि मैंने बहुत ही गलत किया.. इसके मेरे झूठे आरोप लगाने के पाप के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं माँगता हूँ...

(११) मैंने ऑफिस के स्टाफ पर चोरी का आरोप लगाया, पाँच लाख रु. गुम हुए, और कुछ प्रमाण ऐसे लगे कि जिसके कारण मुझे ऑफिस का स्टाफ-मैम्बर चोर लगा, मेरी ऑफिस में ३६ व्यक्ति काम करते हैं, मैंने पुलिस में शिकायत की, ऑफिस में भी सबको बताया। पुलिस ने बिचारे को रिमांड पर लिया, लेकिन कुछ नहीं मिला, मैंने उसे छोड़ दिया। लेकिन कुछ समय बाद मुझे अंदाज हुआ कि मेरी हिसाब में ही गलती थी, इसलिए मुझे ५ लाख कम लगे। हकीकत में हिसाब अनुसार वे पाँच लाख ही थे। मुझे पहले स्टाफमैम्बर के लिए बहुत पश्चाताप हुआ, उसने मुझे बहुत कहा कि 'शेठ! १५ साल से आपके यहाँ नौकरी कर रहा हूँ। मेरे लिए आज तक कोई शिकायत कहाँ आई है? मैं सामान्य व्यक्ति हूँ। पुलिस के रिमांड से सहन नहीं हो पाएगा...' लेकिन मैंने उसकी बात नहीं मानी, वह बहुत कर्कश, रोता, पैरों पर गिरता रहा... लेकिन मुझे दया नहीं आई। अब क्या मैंने जांच कराई, उसे अभी कोई सही नौकरी नहीं मिली थी, 'मेरी ऑफिस से निकाल दिया गया है।' इस इमेज के कारण कोई उसे रखने को तैयार नहीं था। छोटे-छोटे किसी काम से वह मां-बाप-पत्नी-छोटी बहन-दो बच्चों के परिवार को संभालता था। मैंने उसे फोन कर माफी मांगी, ऑफिस बुलाया, आधे वेतन के साथ उसे मेरी ऑफिस में रख लिया। इतना मैंने अपने मन से प्रायश्चित्त किया है। लेकिन मैंने जो झूठा आरोप लगाया, उसके लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(१२) मैंने एक बार अपनी देवरानी पर, एक बार पियर में भाभी पर, एक बार घर की नौकरानी पर पैसे-घराने की चोरी का आरोप सार्वजनिक रूप से लगाया है। देवरानी और भाभी दोनों के पियर पक्ष सामान्य हैं, इसलिए मैंने आरोप लगाया कि 'ये लोग पैसे-घराने की चोरी को पियर में समर्थन करते हैं।' मैंने दोनों को कहा और परिवार को भी कहा कि 'आपको जो समर्थन चाहिए, वह मांगो। हम करेंगे, लेकिन चोरी मत करो।'

दोनों ने परिवार के सामने रोती आँखों से कहा कि 'मेरे पिताजी भले सामान्य हैं, लेकिन एक रुपया भी बेटी का कमाया नहीं लिया, तो बेटी ने ससुराल से प्राप्त किया कहाँ से ले?' लेकिन मैंने उनकी बात नहीं मानी, और कई बार उनके ऊपर चोरी के आरोप को स्ट्रॉंग किया था। लेकिन सच्चाई पर कोई आंच नहीं होती, सत्य तो प्रकट होकर चिल्लाता है, 'सत्यमेव जयते' यह सूत्र बिल्कुल सही है। अंत में सभी बातें बिल्कुल स्पष्ट हुईं कि दोनों में से कोई भी चोरी नहीं की, मैं दोनों जगह गलत साबित हुईं। उस समय शर्म के कारण मैंने उनकी माफी नहीं मांगी। लेकिन अब मुझे सब समझ में आ रहा है कि अगर मैंने उनके ऊपर आरोप लगा दिया, तो भविष्य में मेरे ऊपर और भयंकर आरोप आ सकते हैं...' इसलिए म.सा.! आपकी पास प्रायश्चित्त मांगता हूँ, और उन दोनों से भी क्षमा माँग लूँगा। इसी तरह नौकरानी के लिए भी हुआ है। मिच्छामी दुक्कडं।

(१३) म.सा.! मैं A पक्ष का हूँ, B-C-D पक्ष में कोई मुमुक्षु दीक्षा ले, यह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, वहाँ प्रवचन आदि के लिए जाएँ, यह भी पसंद नहीं। इसलिए मैंने कई मुमुक्षुओं के सामने झूठी बातें की कि 'B-C-D पक्ष शिथिल हैं, सच्चे साधु नहीं, मिथ्यावादी हैं...' और इस तरह कई मुमुक्षुओं और आराधकों को B-C-D पक्ष में दीक्षा लेते, व्याख्यान सुनते, आराधना करते रोका है। म.सा.! A पक्ष के कुछ श्रावक और साधुओं ने मुझे यह सब करने के लिए प्रेरित किया। लेकिन उनकी भी क्या गलती? मैं ही कच्चे कान निकला, यह मेरी सबसे बड़ी गलती! दूसरों को क्यों दोष दूँ? कुछ समय बाद ऐसे कुछ प्रसंग बने कि जिसमें A पक्ष में भी कुछ में वही गलतियाँ देखने को मिली, फिर भी उन श्रावकों ने उसका बचाव शुरू किया, तब मुझे ख्याल आया कि मैं छलाया गया हूँ। B-C-D पक्ष के कई उत्तम महात्माओं पर मैंने पूरी तरह झूठे आरोप लगाकर कई मुमुक्षु और आराधकों को भ्रमित किया है... A पक्ष के कुछ डरते तो B-C-D पक्ष के कई महात्मा बहुत अच्छे हैं, उनके मुकाबले A पक्ष के कुछ बहुत नीचे हैं... मैंने अपनी अविवेक के कारण गंभीर गलतियाँ की हैं... A पक्ष कौन सा पक्ष है? आदि मुझे लिखना नहीं है।

क्यों मुझे किसी के लिए नाम के साथ कोई नकारात्मक बात खोलनी? A पक्ष और B-C-D पक्ष में दोनों तरफ कई अच्छे हैं, दोनों में कुछ उपेक्षायोग्य हैं। मैंने किसी की चढ़ामणी से जो बिल्कुल गलत झूठे आरोप लगाए, वह गंभीर पाप है, इसके लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(१४) एक सुंदर युवक के साथ अपनी भाभी की शादी करवाने की बहुत इच्छा थी, उसने मुझे कहा कि 'मामा! आप यह काम कर सकते हैं।' मैंने उसकी बात स्वीकार की। लेकिन बाद में पता चला कि 'एक अन्य लड़की की उसी युवक के साथ शादी की बातें चल रही हैं। सगाई तय होने की तैयारी है।' मैंने समाज में अपनी अच्छी छवि का दुरुपयोग किया। ऐसी बातें फैलाई कि 'उस लड़की का स्वभाव बहुत विचित्र है, और उसे कोई गुप्त रोग है, उसके परिवार ने यह बात किसी को बताए बिना यह जलता लकड़ी किसी को सौंपकर शांति चाहते हैं। यह बिचारा सुंदर युवक अपनी जिंदगी बर्बाद करेगा...' मेरे इस अपप्रचार का तीव्र असर हुआ। उस युवक का परिवार डर गया, उन्होंने उस लड़की को कैंसिल कर दिया, लड़की पक्ष ने बहुत कहा कि 'यह सभी अफवाहें हैं।' लेकिन साहस कौन करे? अंत में उनकी सगाई नहीं हुई, और मैंने चतुराईपूर्वक अपनी भाभी की सगाई उस युवक के साथ करवा दी... मैं बहुत खुश हुआ, मुझे अपनी चालाकी पर अभिमान हुआ, अपनी सफलता पर गर्व हुआ... म.सा.! आपको आश्चर्य होगा, लेकिन यह सत्य तथ्य है कि मैंने और भाभी ने इतना तीव्र पाप किया कि इस ही जन्म में वह पाप उभरा, मुझे एड्स हुआ और भाभी को भी कोई गुप्त रोग लगा, हम दोनों हैरान हो गए। दवाइयाँ-इंजेक्शन पर हमारे दोनों का जीवन टिका है, अब गहरा पश्चाताप होता है, जैसे आरोप लगाए, वैसे ही हम बने। भले, वह दुख अब सहन कर लेंगे लेकिन बिचारी बिल्कुल निर्दोष लड़की पर मैंने आरोप लगाकर उसका जीवन बर्बाद किया है। यह तो भयंकर गलती है, अंतर से मिच्छामी दुक्कडं। उस लड़की की तीन वर्ष तक शादी नहीं हुई लेकिन बाद में अच्छा परिवार मिला, उस परिवार को मेरी चालाकी का पता चल गया, इसलिए उन्होंने विश्वास किया, सामान्य

रिपोर्ट देखकर भी उन्हें भरोसा हुआ, और आज वह अपना जीवन प्रसन्नता से जीती है... साहेबजी! सच में, इस बात की मुझे अब बहुत शांति है कि वह लड़की खुश है... तीन वर्ष बाद भी उसकी लाइफ तो सेट हो गई... अंतर से मिच्छामी दुक्कड़म मेरी इस कृति के लिए!

(१५) मेरी बेटी ससुराल में रसोई में जल गई, मर गई। शादी को दो वर्ष हुए थे, छोटे-छोटे झगड़े होते थे, लेकिन इतनी हद तक होगा, इसका मुझे अंदाज नहीं था। मुझे कुछ लोगों ने उकसाया कि 'यह सब कारस्तान पति और यह सब सास का ही किया-धरा है, उन दोनों ने मिलकर इसे जला डाला है। और रसोई में गलती से साड़ी जल जाने का बहाना बना रहे हैं।' यह बात मेरे मन में बैठ गई। मैंने दामाद और समधन पर पुलिस केस कर दिया। दामाद को पता चलते ही वह दौड़ा आया, 'पापाजी! हम खुद अत्यंत आघात में हैं, आप हमें खूनी मान रहे हैं? उसे बचाने की कोशिश में मेरी भी थोड़ी चमड़ी जल गई है।' उसने अपनी जली हुई चमड़ी दिखाई। पर उस समय मेरा मन पूर्वाग्रह से ग्रस्त था। मैंने कहा, 'उसे बचाने में नहीं, बल्कि उसे ठीक से जलाने की कोशिश में तू जला है, बदमाश! अब तो तुझे फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर ही दम लूँगा...' कोर्ट में केस चला, पर दामाद निर्दोष बरी हो गया। मैं सुप्रीम कोर्ट गया, पर वहाँ भी वह निर्दोष छूट गया। मुझे हार माननी पड़ी।

एक साल बाद दामाद ने दीक्षा ले ली, मुझसे क्षमापना भी की, पर मैं क्षमा नहीं कर सका... उनकी दीक्षा को दस साल बीत गए, फिर जिन लोगों ने मुझे भड़काया था, वे ही मेरे पास आकर बोले, 'यार! हमें लगता है कि हमसे भूल हुई है, क्योंकि हमारे पास भी कोई प्रूफ नहीं था। बस, यूँ ही एक तुक्का लगाया था। अभी तो सुनने में आया है कि 'वे घोर तपस्वी, घोर संयमी मुनि बन गए हैं... मुझे लगता है कि हमें उनके पास जाकर माफी माँग लेनी चाहिए...'

मेरे पैर भारी हो गए, फिर भी मैं उनके साथ म.सा. के पास गया। उन मुनि ने प्रेम से मेरा स्वागत किया। मुझे लगा था कि 'वे मुझ पर गुस्सा होंगे, मुझे ताना मारेंगे।' पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उन्होंने हृदय से मुझसे माफी माँगी, 'मैं आपकी बेटी को बचा नहीं सका... रात में वह सिल्क के कपड़े पहने रसोई में पापा के लिए चाय बनाने गई। उसमें आग की एक चिंगारी कपड़े से छू गई, उसे पता नहीं चला, पर जब आग बढ़ी, तब उसे मालूम हुआ। तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उसके मुँह से चीख निकली, मैं फौरन दौड़ा, पर उसने मुझे साफ मना कर दिया, 'आप पास मत आना, जल जाएँगे।' पर मैं यह बात कैसे मान सकता था? मैंने दौड़कर कंबल लाकर आग बुझाने की कोशिश की, पर उसे बचा नहीं सका। बस, उसी दौरान मेरा हाथ जल गया था... वह दृश्य, उसकी सुनी हुई चीखें... आज भी याद आती हैं... आघात लगता है... मुझे उसी कारण वैराग्य हो गया था। केस चलने के कारण दीक्षा में विलंब हुआ, पर वैराग्य तो प्रबल होता ही गया। मैंने अपनी आँखों से वह भयानक पीड़ा देखी है। उसकी चीखें सुनी हैं, उसका जलता हुआ शरीर देखा है, और ऐसी परिस्थिति में भी 'मुझे कुछ न हो जाए' इसके लिए उसका प्रेम देखा है, और अपनी पूरी कोशिश के बावजूद मैं उसे बचा नहीं सका, अपनी यह निर्बलता मैंने अनुभव की है...'

उन दामाद-मुनि की हृदय से निकली बातें सुनकर मैं भी द्रवित हो गया। मैंने कहा, 'मैंने आप पर बिल्कुल झूठा आरोप लगा दिया..' दूसरों ने भी कहा कि 'हमने ही इनके कान भरे थे... वरना ये आप पर आरोप न लगाते...'

परस्पर क्षमापना हो गई, पर जो पाप किया, उसकी आलोचना तो लेनी ही पड़ेगी न! सर्वथा निर्दोष, मेरी बेटी की जान बचाने के लिए अपनी जान की बाजी लगाने वाले मेरे दामाद पर मैंने बेटी को जला डालने का आरोप लगाया, यह मेरी गंभीर भूल ही थी, अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(१६) हम दो भाइयों के बीच प्रॉपर्टी-जायदाद को लेकर झगड़े हुए। पापा का देहांत हो चुका था, मम्मी की बात मानने को हम दोनों में से कोई तैयार नहीं था। मम्मी ने कहा, 'कोर्ट में मत जाओ, बेकार में पैसे बर्बाद होंगे, और कोई फैसला नहीं आएगा। इसके बजाय समाज के प्रतिष्ठित लोगों को मध्यस्थ बनाओ, उनका निर्णय मानना...' हमने यह बात मान ली, पर अपना पक्ष मजबूत करने के लिए मैंने बड़े भाई पर झूठे आरोप लगाना शुरू कर दिया... कि 'इसने पहले से ही पापा के इतने पैसे हड़प लिए हैं। उस समय मैं धंधे में नहीं था, इसलिए मुझे इसकी यह चालाकी पता नहीं चली, और मैं उस पर अंधविश्वास करता था... अब मुझे सब सच समझ में आया है। वह सब मिलाकर ६ करोड़ रु. की प्रॉपर्टी वगैरह बताता है, पर जो चार करोड़ रु. वह हड़प कर बैठा है, उसका क्या? उसके हिस्से में तो $३ + ४ = ७$ करोड़ आएँगे, और मुझे मिलेंगे सिर्फ ३ करोड़!'

बड़ा भाई गुस्सा हो गया, 'तू मुझ पर जो आरोप लगा रहा है, उसका प्रूफ क्या है?' मैंने कहा, 'आप इतने होशियार हैं कि एक भी प्रूफ रहने ही नहीं दिया। और मैं कोई जासूस नहीं हूँ कि सारे प्रूफ इकट्ठा कर सकूँ... यह कोर्ट नहीं, महाजन है।'

हमारा केस काफी लंबा चला, चार-पाँच महीने में चार-पाँच मीटिंग हुई। बड़ा भाई इज्जतदार था, उसे लगा कि जैसे-जैसे केस लंबा खिंच रहा है, वैसे-वैसे उसकी इज्जत पर कीचड़ उछल रहा है, मुझे ऐसा कोई नुकसान नहीं था।

उसने मम्मी से कहा, 'उससे कह दो, अगर वह ४ करोड़ में मान जाता है, तो मैं उसे दे देता हूँ, भले ही मुझे उससे आधा मिले। पर पापा की और मेरी इज्जत पर जो कीचड़ उछल रहा है, वह मुझसे सहन नहीं होता।'

मैं मान गया, मुझे तो अतिरिक्त ही मिल रहा था। हमारा झगड़ा तो खत्म हो गया, पर संबंध खत्म हो गए। मम्मी को पता चल गया था कि, 'मैंने बड़े भाई पर बिल्कुल झूठे आरोप लगाए थे।' इसलिए मम्मी मुझ पर विश्वास नहीं करती थीं, वह बड़े भाई के साथ ही रहने लगीं।

मेरी ४ करोड़ की खुशी ज्यादा दिन नहीं टिकी। बिजनेस में भाई का साथ छूटा, मेरे पास हुनर नहीं था, सिर्फ अभिमान था। उस अभिमान के नशे में मैंने धंधे में जोखिम उठा लिया। बड़े भाई के साथ प्रतिस्पर्धा में उतर गया, 'उसे दिखा दूँ कि मैं तुझसे कहीं ज्यादा आगे निकल गया हूँ...' और मुझे नुकसान होने लगा। 'हारा हुआ जुआरी दूना खेलता है' इस न्याय से मैं नए-नए जोखिम उठाता गया, और अंत में मेरे पास ४ लाख भी नहीं बचे... उधर बड़ा भाई तो अपने हुनर और समझदारी भरे जोखिमों के कारण बहुत आगे बढ़ गया। वह २ करोड़ के १० करोड़ बना बैठा... अब पूरे समाज में सब कुछ साफ दिखने लगा... मेरी हालत तो ऐसी हो गई कि घर खर्च जितनी कमाई भी नहीं हो रही थी। अब क्या करूँ?... भाई से तो बात करने की हिम्मत नहीं थी, मैंने मम्मी से बात की। कुछ भी हो, वह माँ थी, उसने बड़े भाई से बात की। उसकी इतनी महानता कि वह सीधे मेरे घर आया, 'अरे! पागल! मुझे कहना तो था... मैं तेरे पिता के स्थान पर हूँ... चल, मेरी दुकान-ऑफिस तेरी ही है... हम साथ में ही धंधा करेंगे...'

मैं उनके पैरों पर गिरकर खूब रोया। मैंने समाज को इकट्ठा करके बताया कि 'मैंने पैसों के लालच में बिल्कुल झूठे आरोप लगाए थे... मेरा बड़ा भाई भगवान है...' पूरे समाज के सामने बड़े भाई के पैरों में गिरकर मैंने फिर माफी माँगी, और भाई ने मुझे गले लगा लिया। पूरा समाज भीगी आँखों से वह अद्भुत दृश्य देख रहा था। मेरा भाई कितने ही लोगों के लिए आलंबन बन गया था।

मेरी इस लालच भरी आरोपबाजी के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कंड।

(१७) उपधान में गए मेरे दोनों बच्चों को, एक बेटा-एक बेटी... दोनों को दीक्षा की भावना हो गई। मुझे तो दीक्षा देनी ही नहीं थी। मैंने सबसे एक ही बात कही कि, 'ये साधु-साध्वी मंत्र-तंत्र करते हैं, वशीकरण करते हैं, वरना मेरे शौकीन बच्चे सिर्फ ४५ दिन में दीक्षा की बात कैसे करने लगते? उन्होंने मेरे बेटे पर रोज सुबह ओघा घुमाया ही था...' हकीकत यह थी कि सुबह उठते समय साधु भगवंत उनके मस्तक पर ओघा

लगाते थे। यह सब मुझे पता चला था, और मैंने उस बात को मंत्र-तंत्र करने से जोड़ दिया। मेरे जबरदस्त प्रचार के कारण आखिरकार म.सा. को झुकना पड़ा... बेटे-बेटी की दीक्षा ही नहीं हुई। आज तो मैं दादा-नाना बन गया हूँ, पर अब धर्म को बहुत अच्छी तरह समझने लगा हूँ। सिर्फ मोहवश मैंने म.सा. पर मंत्र-तंत्र का आरोप लगाया। अगर सच में उन्हें मंत्र-तंत्र आते होते, तो मैं तो चाहता हूँ कि 'वे मुझ पर मंत्र-तंत्र करें।' हकीकत यह है कि साधु-साध्वी के पास ऐसे कोई मंत्र-तंत्र हैं ही नहीं। शायद, १००० में से किसी एक के पास होंगे, और जिनके पास होंगे, वे उसका दुरुपयोग करते ही नहीं। और मान लीजिए कि उन्होंने उपयोग किया, तो भी फायदा ही है, क्योंकि उसके प्रभाव से दीक्षा तो मिलती ही है न! संयमियों पर लगाए गए इस मंत्र-तंत्र के आरोप के लिए खास मिच्छामी दुक्कंड।

(१८) झूठे आरोप लगाने में मैंने भगवान को भी नहीं छोड़ा। हुआ यूँ कि मैं रोज अष्टप्रकारी पूजा करता था, साधु-साध्वी की वैयावच्च करता था, व्याख्यान सुनता था, चोविहार करता था... कई तरीकों से मैंने अपने जीवन में धर्म को अपना लिया था... पर मेरे जीवन में एक के बाद एक बहुत दुख आए... पापा के लाखों रु. कर्जदारों ने वापस ही नहीं दिए, कोरोना में मम्मी का देहांत हो गया, हमारी इस हालत के कारण मेरी सगाई टूट गई, मेरे दोस्त मुझसे अलग हो गए, मैं बिल्कुल अकेला पड़ गया, छोटी-मोटी बीमारियाँ मुझे परेशान करने लगीं... मुझे लगा कि 'यह भगवान-वगवान सब बकवास बातें हैं। अगर प्रभु होते, तो वे मेरी रक्षा तो करते... मैंने बहुत धर्म ही किया है, कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाया... तो फिर मुझ पर एक साथ इतने सारे दुख क्यों?'

मैंने प्रभु की भक्ति छोड़ दी, धर्म छोड़ दिया। सब मुझसे आश्चर्य से पूछते, 'तू रात में खाता है?... तूने पूजा छोड़ दी?' तो मैं बिंदास जवाब देता, 'प्रभु-धर्म यह सब बकवास बातें हैं। प्रभु हों भी, तो किसी काम के नहीं। धर्म सिर्फ टाइमपास है, टाइम वेस्ट है। तुम सब भी इन झूठी बातों में मत फँसना...'

मैंने ढेरों लोगों की श्रद्धा तोड़ दी, मैं बेकाबू होकर जैसे-तैसे बोलता था। समझदार लोगों की बातें मैंने सुनी ही नहीं... आखिरकार एक दिन... किसी ने मेरे हाथ में 'जेलर' पुस्तक दी। पू.आ. अभयशेखर सू.म. की उस पुस्तक के आधार पर मुझे पता चला कि 'सच्चा तत्त्व क्या है?' मेरे सारे भ्रम टूट गए। प्रभु तो श्रेष्ठ आलंबन हैं। मुझे मेरे पूर्वभवों के पापकर्मों का फल मिला था। मेरे इस भव के पुण्यकर्मों का फल मुझे आने वाले भवों में मिलेगा। प्रभु की भक्ति से, धर्म करने से श्रेष्ठतम पुण्य बँधता है, इसलिए प्रभु अत्यंत उपकारी हैं ही। प्रभु सूर्य जैसे हैं, वे स्वयं इच्छापूर्वक सुख या दुख नहीं देते। पर जैसे सूर्य के प्रकाश और गर्मी का हम अच्छी तरह उपयोग करें, तो हमें फायदा होता है। और सूर्य के सामने देखें, तो अंधे हो जाएँ, कड़ी धूप में खुले में चलें, तो जलने लगें... इसमें सूर्य ने जान-बूझकर हमारा भला या बुरा नहीं किया... पर हमारे उपयोग के अनुसार अच्छा-बुरा फल मिलता है। उसी तरह यदि प्रभु की अच्छी + सच्ची भक्ति करें, तो सुख ही मिलता है। और प्रभु की आशातना करें, आज्ञा तोड़ें... तो दुख ही मिलना है। इसमें प्रभु ने सुख-दुख नहीं दिए, पर हमें अपनी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों के अनुसार सुख-दुख मिले हैं... उसमें निमित्त के रूप में प्रभु हैं, प्रभु के वचन हैं... यह सारा सत्य मुझे समझ में आया, और मैंने तय कर लिया कि 'प्रभु का प्रभाव है ही, धर्म का प्रभाव है ही। पूर्वभव में प्रभु की आज्ञा तोड़ी है, उस कारण दुख आए हैं, इस भव में प्रभु की आज्ञा का पालन करूँगा, तो अगले भव में सुख आएगा ही...' म.सा. 'प्रभु में दम नहीं है, प्रभु का कोई प्रभाव नहीं है। प्रभु ने मुझे इतने सारे दुख दिए...' ऐसे-ऐसे आरोप मैंने प्रभु पर लगाए, उसके लिए अंतर से मि. दुक्कड़। दुनिया की नजर में यह अभ्याख्यान भले ही न कहलाए, पर मेरी नजर में तो अभ्याख्यान ही है।

- X - X -

MY BLACK DIARY भाग-६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१४ : पैशुन्य

दूसरों में जो दोष है ही नहीं, उस दोष को सार्वजनिक रूप से नहीं, बल्कि निजी तौर पर एक-दो लोगों से कहना, उसका नाम पैशुन्य! जो गलती दूसरे ने की ही नहीं, वह गलती उसके नाम कर देना, और एक-दो-चार लोगों को वह बात कहना, वह है पैशुन्य! ऐसा करने के पीछे ईर्ष्या, उतावला स्वभाव, बकबक करने का स्वभाव, उस व्यक्ति के लिए पूर्वाग्रह (यह ऐसा ही करता है, यही ऐसा करता है...) ऐसे कई कारण हो सकते हैं...

यह पूरी व्याख्या मैंने व्याख्यान सुनकर और पुस्तकें पढ़कर जानी है। इसके आधार पर मैं याद कर-करके अपने पैशुन्य के पाप कहूँगी... जीवन के ५० वर्षों में यह भूल हजारों बार की होगी, वे सभी भूलें याद तो नहीं आ सकतीं, फिर भी उन सभी भूलों के लिए अंतर से मि. दुक्कड माँगती हूँ।

(१) स्कूल के गणित के टीचर अच्छा पढ़ाते थे, पर मुझे उस विषय में रुचि नहीं थी। और इसीलिए मैं क्लास के समय भी ध्यान नहीं देती थी, होमवर्क भी नहीं करती थी... मुझे अंदाजा हो गया था कि 'इस विषय में मेरे मार्क्स कम आने वाले हैं...' और हकीकत में जब कम मार्क्स आए, तब पापा ने मुझे डाँटा और मैंने तुरंत टीचर पर आरोप मढ़ दिया कि 'वे ठीक से नहीं पढ़ाते हैं। रोज कुछ न कुछ इधर-उधर की बातें ही करते रहते हैं। ज्यादातर हमें ही सब कुछ करने के लिए सौंप देते हैं, हमें समझ न आए और पूछें, तो गुस्सा हो जाते हैं... इसलिए फिर मेरा गणित कच्चा ही रह गया, और मार्क्स कम आए।'।

मैंने यह आरोप तो लगा दिया। पर पापा बहुत चतुर थे। उन्होंने मेरे सामने ही मेरे सहपाठियों को धड़ाधड़ फोन करके गणित के टीचर के बारे में राय पूछी, सबने अच्छी राय दी, सबके मार्क्स भी अच्छे आए थे, पापा स्पीकर चालू रखकर मुझे सब सुना रहे थे... मेरा मुँह उतर गया... पापा ने मुझसे कहा, 'तू दोहरा पाप कर रही है, ठीक से न पढ़ना

एक पाप! और उसके बचाव के लिए टीचर को बुरा बताना, यह दूसरा बड़ा पाप! ऐसा क्यों करना?’

म.सा.! मेरे इस पैशुन्य के पाप के लिए मि. दुक्कंड।

(२) मैंने बचपन में कई बार ऐसा किया है कि मैं अपनी बड़ी बहन को मारता, फिर वह मुझे मारने आती, तो मैं मम्मी के पास जाकर रोने लगता, ‘मम्मी! दीदी ने मुझे मारा!’ एक तो मैं लड़का, और ऊपर से छोटा + लाडला... इसलिए मम्मी तुरंत मेरा पक्ष लेकर उसे डाँटतीं कि ‘तू इतनी बड़ी होकर अपने छोटे भैया को मारती है, तुझे शर्म नहीं आती?’ दीदी गुस्सा हो जाती, ‘मम्मी! यह मुझे मारकर भागा है, मैंने तो इसे मारा ही नहीं!’ पर मम्मी मेरा रोना देखकर मुझे ही सही मानतीं। ऐसा कई बार होने के कारण दीदी का मेरे प्रति प्यार कम हो गया... वह दुखी हो जाती... म.सा.! बात बहुत छोटी है, पर दीदी के मन को दुख पहुँचाने वाली बनी, और मेरी आत्मा तो पाप के रंग में रंगी ही... मुझमें और भी ज्यादा गलत संस्कार पड़े... मिच्छामी दुक्कंड।

(३) किसी दोस्त की स्कूल में बॉलपेन-पेंसिल खो गई, नहीं मिली... तो मैंने बिना सोचे-समझे कह दिया कि, ‘यह चीज उस लड़के ने ही चुराई होगी। वह कई बार ऐसा करता है...’ हकीकत में मुझे तो सच्ची बात का पता ही नहीं था, और सच्ची बात जाने बिना इस तरह किसी पर आरोप लगा देना अत्यंत अनुचित है, अंतर से मिच्छामी दुक्कंड।

(४) मैंने अपने मित्र से एक लड़के के बारे में कहा कि ‘यह लड़का नंबर १ का झूठा है, उसकी बात सच मत मानना। वह कहता है कि मेरे पापा करोड़पति हैं। पर उसका पहनावा देखते हुए, उसके पापा को देखते हुए तो साफ लगता है कि वह लखपति भी नहीं है...’

इस तरह मैंने उस लड़के को झूठा कहा। पर मेरी बात सच नहीं थी। क्योंकि सामान्य दिखने मात्र से कोई करोड़पति नहीं है, ऐसा तो कैसे कहा जा सकता है? और ठाट-बाट

से दिखने मात्र से वह करोड़पति है, यह बात भी कैसे सच हो सकती है? इसलिए मेरी बात उचित नहीं थी। और बाद में तो पता चला कि उस लड़के के पापा ने एक करोड़ आठ लाख में कोई चढ़ावा लिया, तो यह पक्का ही हो गया कि वे करोड़पति थे... बिना सोचे-समझे सिर्फ बाहरी दिखावे के आधार पर मैंने उस लड़के को अपने मित्र के सामने झूठा कहा, उसके लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(५) मेरा स्वभाव नारद जैसा था। दो लोगों को लड़ाने में मुझे बहुत मजा आता था। कॉलेज में एक लड़की-लड़का परस्पर बहुत प्रेम करते थे। मैंने एकांत में लड़की से कहा कि 'तुम जिस लड़के को चाहती हो, उसे तो मैंने कल किसी दूसरी लड़की के साथ बाइक पर जाते देखा, वह लड़की भी उससे चिपककर बैठी थी। मुझे तो इतना गुस्सा आया कि दो थप्पड़ मार दूँ, इस तरह किसी लड़की के साथ धोखा करता है, वह पापी!' लड़की ने बचाव किया कि 'वह उसकी कजिन बहन होगी...' मैंने कहा, 'हमारे कॉलेज की ही लड़की थी, और वह उसकी कोई रिश्तेदार नहीं है, यह मुझे पक्की खबर है... हाँ! अब वह उसकी कुछ लगती हो, तो पता नहीं। पर तुम सावधान रहना। मैं तो चाहता हूँ कि मैं गलत साबित होऊँ।' मैंने शक का एक बड़ा बीज उस लड़की के हृदय में बो दिया।

वही काम मैंने उस लड़के के हृदय में शक बोने का किया। मैंने उससे कहा कि तुम जिसे प्राणों से भी अधिक चाहते हो, उस लड़की को तो मैंने गार्डन में किसी से बहुत गहरे गले लगकर खड़े देखा। मैं तो चौंक गया, वहीं के वहीं उसे दो थप्पड़ मारने का मन हुआ। ऐसी बदचलन लड़की!... और आखिरकार उन दोनों का रिश्ता टूट गया।

इस तरह मैंने अपने विचित्र स्वभाव के कारण दोनों के बीच के संबंध तुड़वा दिए, मुझे आज उसका पश्चात्ताप है। वे दोनों कुछ गलत कर रहे थे, और उसे रोकने के किसी अच्छे इरादे से मैंने यह काम नहीं किया था। बस! दो लोगों को लड़ाने में मुझे मजा आता था, अंदर ही अंदर उन दोनों का गहरा प्रेम देखकर मुझे ईर्ष्या भी होती ही थी... ऐसा भी मुझे निश्चित रूप से लगता है... और किसी को सुधारना भी हो, तो भी यह

रास्ता, पैशुन्य का रास्ता तो उचित नहीं है... मेरे इस पाप के लिए खास मिच्छामी दुक्कडं।

(६) 'आज दूध ज्यादा पतला है, रोज जैसा स्वाद भी नहीं है।' मम्मी बोलीं, और मैंने तुरंत कह दिया कि 'दूधवाले ने आज इसमें ज्यादा पानी मिलाया होगा।' भले ही मैं मजाक में या जल्दबाजी में बोला, पर मैंने बिना कुछ जाने यह आरोप लगा दिया था, अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(७) 'तुम्हारी दीदी अभी तक क्यों नहीं आई? कॉलेज छूटने का समय तो कब का हो गया।' मम्मी चिंता से बोलीं। मैंने तुरंत कहा, 'मम्मी! तुम पुराने जमाने की हो। तुमसे किसने कहा कि दीदी कॉलेज में सिर्फ पढ़ने जाती है। उसे पढ़ना नहीं, मिलना है। उसके कई B.F बन ही गए होंगे। अभी भी मैं तुम्हें गारंटी के साथ कहता हूँ कि वह अपने B.F के साथ घूमने गई होगी... और जब वापस आएगी, तब तुम्हें झूठी-झूठी कहानियाँ गढ़कर मना लेगी...' मम्मी B.F. का मतलब नहीं समझीं, तो मैंने कहा, 'मम्मी! B.F मतलब बेस्ट फ्रेंड भी होता है और बॉयफ्रेंड भी।

होता है, लेकिन मैं वह अर्थ नहीं कह रहा हूँ, B.F. यानी बॉयफ्रेंड – वही अर्थ मैं तुम्हें बता रहा हूँ... तुम दीदी का ध्यान रखना, नहीं तो तुम्हें रोने का समय आएगा...

म.सा.! मुझे दीदी के लिए पहले से ही कोई सम्मान नहीं था, इसलिए उसके लिए जैसे मन में आया वैसे बोल देता था। बाकी उसका कोई B.F. था ही नहीं, वह सामान्य बातें करती होगी, लेकिन B.F. बनाए – इतनी बेवकूफ वह थी ही नहीं। मेरी दीदी बहुत समझदार थी! दीदी घर आई, तब मम्मी ने उसकी उलट-तपत्तीश ली। उसने कहा, 'सखियों के साथ बातें करते-करते समय निकल गया, तुम्हें बताना भी याद नहीं आया...'

मम्मी ने गुस्से में कहा, 'किस B.F. के साथ भटकने गई थी, सच बोल...' मम्मी के मुँह से B.F. शब्द सुनकर दीदी समझ गई कि 'यह मेरा ही कारनामा है। क्योंकि मम्मी को इंग्लिश शब्द बोलना आता ही नहीं था...' उसने मम्मी को तीन-चार सखियों के नाम दिए, नंबर दिए और कह दिया कि 'तुम इनमें से किसी से भी पूछ लो कि क्या हम सब कॉलेज कंपाउंड में ही पौन घंटे तक बातें कर रहे थे या नहीं?'

मम्मी ने कॉल किया, दीदी सही निकली... बात तो खत्म हो गई। लेकिन दीदी ने मुझे से कहा कि 'तू मुझे बदनाम क्यों करता है? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है?' मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

कुछ समय बाद मैं बीमार पड़ा। दस-बारह दिन दीदी ने मेरी बहुत केयर की। बहुत प्यार से की, सगी माँ की तरह की। उसके कारण मुझे घोर पश्चात्ताप हुआ, मैंने दीदी से माफी माँगी, आँखों से आँसू बह निकले... दीदी ने मुझे गले लगा लिया... 'भाई! भूल तो हो जाती है। बस, भविष्य में ध्यान रखना...' मेरे इस पाप के लिए अंतर से मिछामी दुक्कड़।

(८) नई पुत्रवधू आई, लेकिन उसके प्रति मेरे मन में अरुचि बढ़ने लगी। दोपहर में किसी न किसी काम से वह घर से बाहर निकल जाती। मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। हालाँकि वह मुझे बता कर ही जाती थी कि 'मैं कहाँ जा रही हूँ...' आदि। लेकिन बार-बार ऐसा होने के कारण मेरा मन डिस्टर्ब हो गया। मैंने एक बार अपने बेटे से कह दिया, 'तेरी बीवी रोज-रोज भगवान जाने किससे मिलने जाती है, मुझे तो कुलटा ही लगती है। उससे भी ज़्यादा वेश्या लगती है। रोज नए-नए पुरुषों के पास जाती होगी, कौन जाने...'

मैंने यह आरोप तो लगा दिया, लेकिन अच्छा यह हुआ कि मेरा बेटा समझदार था। उसने मेरी कोई बात नहीं मानी। उसने मुझे साफ़-साफ़ समझा दिया कि 'उसकी

पवित्रता पर मुझे पूरा विश्वास है, तुम्हारी ऐसी बातों पर मैं कभी भरोसा नहीं करूँगा।
तुम अगर नहीं सुधरे, तो तुम्हारा ही भविष्य बिगड़ेगा...'

मुझे उसका जवाब कड़ा लगा... मेरा अहंकार आहत हुआ, तो मैंने रात में पति के सामने
बेटे पर जैसे-तैसे आरोप लगा दिए... 'यह पूरा बीवी का गुलाम है। मैंने तो इसे बस
इतना ही कहा कि तेरी पत्नी रोज दोपहर कहीं न कहीं जाती है, यह ठीक नहीं है... तू
ध्यान रख...'

तो वह मुझ पर भड़क गया। मुझे धमकी दी कि 'तू किचकिच नहीं करेगी, नहीं तो हम
अलग रहने चले जाएँगे।' मैंने पूरी बात ही बदल दी। लेकिन मेरे पति भी समझदार
निकले। वे चुप रहे। अगले दिन उन्होंने मेरे बेटे से शांति से सारी बात पूछी। बेटे ने सब
बता दिया। मैंने की हुई चुगली, मैंने लगाए हुए झूठे आरोप, सब पकड़े गए...

बेटे और पति ने मुझे बहुत शांति से समझाया। 'तू बेटे के पास बहू के लिए झूठी बातें
करती है, और फिर पति के पास बेटे के लिए झूठी बातें करती है... यह सब करके तू
अपने ही दोनों हाथ काटने का काम कर रही है। यह अच्छा हुआ कि हमने तेरी झूठी
बातों पर विश्वास नहीं किया, नहीं तो कितने रिश्ते टूट जाते...'

मुझे पश्चात्ताप हुआ। मुझे एहसास हुआ कि मुझे अपना यह स्वभाव बदलने की
ज़रूरत है, लेकिन मेरे लिए यह आसान नहीं था। मैंने मेहनत तो शुरू कर दी है। मेरे इस
पैशुन्य के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

नए ज़माने की बहू अगर दोपहर में घर में बोर हो जाए, तो शॉपिंग के लिए, सखियों से
मिलने, सखियों के साथ घूमने या पार्टियों में जाए – यह सब कॉमन है। और मेरी बहू
को संगीत का शौक होने के कारण वह हफ्ते में तीन दिन संगीत सीखने जाती थी...
उसने बहू-मंडल में भी नाम दर्ज कराया था... यह सब बातें अच्छी थीं, लेकिन मेरे विचित्र

स्वभाव के कारण मैं यह सब अच्छे से स्वीकार नहीं कर पाई – अंतर से मिछामी दुक्कड़ें...

(९) मुझे संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं था। मन पर बंधन लगता था। दो जेठ, दो जेठानी, उनके बच्चे... सास-ससुर, दादी सास... इतने लोगों के साथ रहते-रहते मेरा टेंशन बढ़ने लगा। बच्चों का शोर, बार-बार मेहमान आने से कोई न कोई काम, बड़ों की अधिकता के कारण बहुत मर्यादित जीवन... और मैं सबसे छोटी होने के कारण मुझे तो चुप ही रहना पड़ता...

मैंने तय कर लिया कि 'मुझे अलग ही होना है।' लेकिन उसके लिए पति को तैयार करना ज़रूरी था। मैंने रोज़-रोज़ रात में पति के कान भरने शुरू किए। घर के सदस्यों की कोई गलती न हो तो भी गलती खड़ी करके बताती, और अगर कोई सामान्य गलती हो तो उसे बढ़ा-चढ़ा कर, मसाला डाल कर पति को कहती...

पहले तो पति मेरी बात नहीं सुनते थे, फिर उपेक्षा से सुनने लगे। रोज़-रोज़ की हथौड़ा मारने जैसी बातों के कारण उनके मन में भी सब बातें सही लगने लगीं। और एक दिन ऐसा आया कि मेरी वजह से घर में छोटा सा संघर्ष हुआ, जो बढ़ने लगा। कुछ समय बाद झगड़ा इतना बढ़ा कि मेरी इच्छा पूरी हो गई। मैं अपने पति के साथ नए घर में रहने आ गई... बाकी पूरा परिवार साथ ही रहा।

सालों बाद मुझे समझ आया कि मैंने अपने ही सगे-संबंधियों, हितैषियों पर कैसे झूठे आरोप लगाए थे। सास मुझसे ज़्यादा काम करवाकर पक्षपात करती हैं, जेठानियाँ बड़ी होने के कारण मुझे नौकर की तरह ट्रीट करती हैं, ससुर मेरी छोटी-छोटी गलतियों पर भी टोकते रहते हैं, दोनों जेठ मुझे गंदी नज़र से देखते हैं, बच्चे मुझे शांति से आराम नहीं करने देते... आदि।

इनमें सबसे बड़ा झूठ यह था – ‘जेठ-२ मुझे गलत नज़र से देखते हैं।’ यह मेरे पति सहन नहीं कर पाए और हम अलग हो गए। कुछ समय बाद पति की दोनों भाइयों से बात हुई। पति ने कहा, ‘क्या तुममें इतनी भी पवित्रता नहीं है? मेरी पत्नी पर तुमने गलत नज़र डाली? इसलिए ही मैं अलग हुआ।’

दोनों भाई भड़क उठे – ‘मूर्ख! हमने सपने में भी तेरी पत्नी के लिए गलत विचार नहीं किया। इन इतने वर्षों में क्या एक बार भी तुम्हें हमारा व्यवहार गलत लगा?’

बहुत सारी बातें हुई। मेरे पति को सब समझ में आ गया। उन्होंने मुझे समझाया। मैंने अपनी गलती स्वीकार की। सगे भाई समान दोनों जेठों पर हल्के आरोप लगाने वाली मैं घोर पापिनी हूँ... मिच्छामी दुक्कंड।

(१०) एक म.सा. ने व्याख्यान के दौरान मेरी अशिष्टता पर मुझे डाँटा था। बस, उसी समय से उनके लिए मेरे मन में खार बैठ गया। मैं किसी भी तरह उनकी बातों को काटने की कोशिश करने लगी।

उन्होंने व्याख्यान में कहा था, ‘आपको दो नियम लेने चाहिए – एबॉर्शन नहीं करवाना और गर्भनिरोधक साधनों का उपयोग नहीं करना...’ तो मैं उनके गच्छाधिपति के पास जाकर कह आई कि ‘आपके शिष्य कितनी गंदी प्रेरणा देते हैं। वे सेक्स की प्रेरणा देते हैं और उसके ज़रिये संतान पैदा करने की प्रेरणा देते हैं।’

गच्छाधिपति मेरी बात सुनकर परेशान हो गए, लेकिन वे समझदार थे। उन्होंने शिष्य से पूछा, ‘सच्ची हकीकत क्या है?’ तब शिष्य ने सब बता दिया और यह भी कहा कि ‘आपके कान में झूठी बातें भरने वाला श्रावक मेरा मामूली बात पर विरोधी बन गया है...’ आदि।

द्वेष-भाव से प्रेरित होकर मैंने उस म.सा. पर आरोप लगाया – मिच्छामी दुक्कंड।

(११) दो लोगों को लड़वाकर मारने का मेरा स्वभाव ही ऐसा है। पड़ोस में रहने वाली एक बहू के मैंने कान भरे कि 'आप तो बहुत गुणी बहू हैं, यह मैंने इतने समय के अनुभव से देख लिया है। लेकिन आप सास से बचकर रहिए। वह मुझे कहती हैं कि यह बहू बहुत नखरेबाज़ है। मेकअप में नखरे, काम में नखरे, सुबह जल्दी उठने में नखरे, रोज़ पूजा के नाम पर सज-धज कर हीरोइन बनकर जाती है... मुझसे तो न कहा जाता है न सहा जाता है...'

बहू! मैंने मन ही मन कहा कि मैं तुम्हें समझाऊँगी, लेकिन इतने दिनों के अनुभव के बाद मुझे साफ़ लगता है कि तुम्हारी सास बहुत ज़हरीली हैं। तुम उनसे बचकर रहना...'

इस तरह मैंने बहू के कान भरे। सास ने मुझसे ऐसी कोई बात नहीं की थी। ठीक है, थोड़ी बहुत शिकायत की भी होगी, लेकिन उस एक-दो प्रतिशत को मैंने दस प्रतिशत बना दिया।

उधर मैंने सास के भी बहू के खिलाफ़ कान भरे। 'मुझे तो आश्चर्य होता है कि बहू आपके लिए ऐसा कैसे बोलती है कि "मेरी सास मुझे शांति से जीने नहीं देती। लगातार कुछ न कुछ काम देती रहती है। मैं तो जैसे उनके लिए मुफ्त की नौकरानी हूँ।" लेकिन मुझे तो आप कभी आलसी नहीं लगीं। आप लगातार काम करती हैं और बहू से भी कम ही काम करवाती हैं। पता नहीं नए ज़माने की बहुओं को सास के दोष ही गाने की आदत क्यों लग जाती है...'

दोनों के बीच के भावनात्मक रिश्ते टूट गए। माँ-बेटी की तरह रहने वाली सास-बहू को मैंने अलग-अलग गलियों में रहने वाली दो कुतरियों जैसा बना दिया। अमृत से भरी उनकी आँखों में मैंने परस्पर द्वेष का ज़हर भर दिया। हँसी-मज़ाक की जगह अब झगड़ों के शब्द उनके घरों से सुनाई देने लगे। मैं परमानंद लेकर उनके दुःख में सुखी होती गई।

लेकिन सद्गुरु के संयोग के बाद अब मुझे समझ आया है कि सच में अगर सास और बहू बुरी भी हों, तो भी मुझे दोनों की बातें एक-दूसरे से कहकर भड़काना नहीं चाहिए, बल्कि एक-दूसरे की अच्छी बातें बताकर उनमें मिठास पैदा करनी चाहिए...

ऐसे घर-भंग के काम मैंने अनेक बार किए हैं। मेरे उन सभी पापों के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(१२) मैं ऑफिस में अच्छी पोस्ट पर थी, लेकिन मेरे मन में उससे भी ऊँची पोस्ट की आशा थी। उस पोस्ट के लिए दो-तीन लोग दावेदार थे, जिनमें एक लड़की मेरी कॉम्पिटीटर थी। मुझे पक्का विश्वास था कि 'अगर इसका चांस हटा दूँ तो नंबर मेरा ही लगेगा।'

मैंने सीधे बॉस से कुछ नहीं कहा, लेकिन अपने एक मित्र के ज़रिये उस लड़की के बारे में बॉस के कान भरे। वह मित्र मेरे प्रति प्रेम के कारण यह काम कर आया। नतीजा यह हुआ कि उस लड़की को हटाकर मुझे ऊँची पोस्ट दे दी गई।

उस लड़की को पूरा विश्वास था कि यह पोस्ट उसे ही मिलेगी, क्योंकि वह हर तरह से योग्य थी। सच यह भी था कि उसे ज़्यादा सैलरी की ज़रूरत थी। मेरी नौकरी तो केवल शौक के लिए थी।

बाद में मुझे पता चला कि उस लड़की के पिता हार्ट पेशेंट थे और कमा नहीं सकते थे। उसके दो छोटे भाई थे, जिनकी अच्छी पढ़ाई का सपना वह देखती थी। मध्यमवर्गीय परिवार की वह लड़की दिल लगाकर काम करती थी।

मेरी करवाई गई चुगली के कारण जब मुझे पोस्ट मिली और उसे नहीं, तो उसे गहरा आघात लगा। मैंने उसकी खुशियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

उस दिन ऑफिस में सब मुझे बधाइयाँ दे रहे थे। उसने भी दीं। उसमें मेरे लिए कोई ईर्ष्या नहीं थी, लेकिन उसे अपनी योग्यता के अनुसार न मिलने और परिवार की ज़िम्मेदारी निभाने की कठिनाई का गहरा दुःख था।

मैंने ताने में कहा, 'सॉरी! आपकी पोस्ट मुझे मिल गई...' वह कुछ कह नहीं पाई, लेकिन चेहरे पर उदासी छा गई।

दूसरे दिन मेरे मित्र ने बताया कि 'मैंने तो तेरा काम कर दिया, लेकिन मैंने उसे कल अकेले रोते देखा। उसके आँसू मुझसे सहन नहीं हुए। उसने अपने परिवार की हालत बताई...'

सब सुनकर मुझे लगा कि मैं तो सिर्फ़ शौक के लिए नौकरी कर रही हूँ और पद व पैसे के लालच में मैंने यह सब किया...

मैं मित्र को लेकर बॉस के पास गई, सारी सच्चाई बताई और उस पोस्ट के लिए उसी लड़की का आग्रह किया।

समझदार बॉस ने मुझे डाँटा और बाज़ी संभाल ली। उस लड़की को बुलाकर कहा कि 'यह अपनी पोस्ट तुम्हें देने पर ज़ोर दे रही है, और तुम योग्य भी हो। इसलिए अब यह पोस्ट तुम्हें दी जाती है।'

उसकी आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। वह मुझे कृतज्ञ नज़रों से देख रही थी, लेकिन मेरे लिए वह नज़र बोझ बन गई।

बाद में मैंने उसके घर जाकर सबको सच्चाई बताई और माफ़ी माँगी।

आज हम दोनों बेस्ट फ्रेंड हैं। उसे ऊँची पोस्ट पर बैठा देखकर मुझे अपार खुशी होती है। उसके परिवार को मैं अपना परिवार मानती हूँ।

म.सा.! स्वार्थ के कारण मैंने उस पर झूठे आरोप लगवाए – उसके लिए मुझे कठोर प्रायश्चित दीजिए।

(१३) हम सात-आठ दोस्त एक म.सा. के संपर्क में आए। एक रात उन्होंने मुझसे पूछा कि 'मेरी पाँच पेन गुम हो गई हैं, क्या तुम्हें पता है किसने ली होगी?'

दो मिनट सोचकर मैंने कहा कि 'बारह लड़कों में से किसी ने ली होगी।' मैंने अपने ही दोस्त पर आरोप लगा दिया।

बाद में पता चला कि पेन झाड़ू लगाने वाला लड़का ले गया था। मेरा दोस्त निर्दोष था। उस दोस्त के लिए लगाए गए दोष के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(१४) 'हमारे घर के बाहर केला का छिलका किसने फेंका? कल आइसक्रीम का डिब्बा था...' मम्मी गुस्से में बोलीं।

मैंने बिना जाने कह दिया, 'मम्मी, यह तो पास वाला शरारती लड़का ही होगा...'

बाद में पता चला कि वह लड़का तो कई दिनों से घर पर ही नहीं था। मुझे एहसास हुआ कि पूर्वग्रह से प्रेरित होकर किसी पर आरोप लगाना अत्यंत अनुचित है – अंतर से मिच्छामी दुक्कड़।

(१५) ट्रस्टियों के चुनाव में मैं हार गया, मेरा प्रतिद्वंद्वी जीत गया। सत्ता में आते ही उसने धड़ाधड़ कई अच्छे काम शुरू कर दिए... इसके लिए उसने सख्त हाथ अपनाया। जो साधु शिथिल थे, उन्हें उपवास में आने से रोक दिया... पुराने कर्मचारियों को निकाल दिया, क्योंकि वे पैसे खाते थे और काम नहीं करते थे... यह सब काम ईर्ष्या के कारण मुझे अत्यंत खटकता था, लेकिन उसके विरुद्ध बोलने की किसी की ताकत नहीं थी, क्योंकि वह सही काम कर रहा था।

इसी बीच एक म.सा. मुझसे मिले। वे शिथिल थे, इसलिए नए अध्यक्ष ने चतुराई से उन्हें रोक दिया था। उन्होंने मुझसे नए अध्यक्ष के बारे में पूछा। मुझे मौका मिल गया, बराबर की जोड़ी जम गई। मैंने कहा, 'वह तुंडमिजाजी है, हमारे संघ का हिटलर है। घर में अपने पिता को भी दबाता है। ऐसे जंगली आदमी को संघ ने अध्यक्ष क्यों बनाया, यही समझ में नहीं आता। उसे वोट देने वाले अब पछता रहे हैं और कह रहे हैं कि हमने बहुत बड़ी गलती कर दी... बंदर को शराब पिला दी... अब यह उपद्रवी संघ का सत्यानाश कर देगा।'

म.सा.! जैसे विरोधी पक्ष मोदीजी के विकास को सहन न कर पाने के कारण मोदी के लिए गंदी आरोपबाजी करता है, वैसी ही गंदी हरकत मैंने की। लेकिन इससे नए अध्यक्ष को कोई असर नहीं पड़ा, क्योंकि उस साधु का कोई मान नहीं था, उनके कहने से कोई फर्क पड़ने वाला ही नहीं था...

मुझे सच्चा बोध तब हुआ, जब मेरी बेटी ने मेरे सामने विधर्मी से विवाह करने की बात रखी। मेरे पैरों तले ज़मीन खिसक गई। मैंने उसे मारा, धमकाया, लेकिन वह अडिग रही... मैं परेशान हो गया। इधर नए अध्यक्ष ने प्रवचनकार साध्वीजी को बुलाकर विशेष शिविर रखा, ज़बरदस्त प्रचार किया। संघ की लड़कियाँ घर-घर जाकर प्रचार करने लगीं। वे मेरे घर आईं, मेरी बेटी को बहुत समझाकर तीन दिन के लिए शिविर में आने को तैयार कर लिया। बेटी अनिच्छा से भी गई... और चमत्कार हो गया। तीन दिन बाद वह साध्वीजी के पास निजी रूप से रोई, अपनी भूलों को स्वीकार किया... मुझसे माफी माँगी... मेरी इच्छा के अनुसार ही सब कुछ करने की प्रतिज्ञा ली। मेरी आँखों के सामने ही उसने विधर्मी को सख्ती से ना कह दी...

मुझे लगा कि 'मेरे जीवन की भयानक आपदा को दूर करने में इस नए अध्यक्ष ने उपकार किया है।' मैंने उनका बहुत आभार माना। निष्कपट हृदय से मैंने उन्हें अपनी भूल बताई कि 'मैंने आपके बारे में उस शिथिल साधु के पास कैसी गंदी बातें की थीं...'

वे हँसते ही रहे, मेरी पीठ थपथपाई, 'अरे, वह तो चलता रहता है। बस, आज मेरी मेहनत से मेरी बेटी बच गई (वे मेरी बेटी को अपनी ही बेटी मानते थे)... इससे मुझे अपार खुशी है। अब आपको मेरे साथ जुड़ जाना है। हमें कंधे से कंधा मिलाकर काम करना है।'

म.सा.! आज तो हम दोनों पक्के दोस्त हैं। मैं तो चाहता हूँ कि ऐसे अध्यक्ष हर संघ में होने चाहिए। जो दूरदर्शी विचारधारा रखते हों और उदार मन से सभी कार्य करें, दूसरों को भी करने दें। मैंने उनके प्रति जो पैशुन्य किया, उसके लिए मि. दुक्कड़। सभी ट्रस्टियों से मेरी विनती है कि आप ऐसे श्रेष्ठ ट्रस्टी बनें, और यदि आप हार भी जाएँ, तो भी जीतने वाले ट्रस्टी का समर्थन करें, खेलदिल्ली दिखाएँ, शासन-प्रेमी बनें...

(१६) मेरा सगा साला उम्र में मुझसे छोटा और व्यापार में भी मेरे बाद आया था। लेकिन उसने बहुत जल्दी प्रगति कर ली। मुझे उससे ईर्ष्या होने लगी। मैं उसकी सगी बहन यानी अपनी पत्नी से उसके बारे में उल्टा-सीधा बोलता रहता... 'देखो, तुम्हारा भाई अपनी दूसरी बहन को रक्षाबंधन में १०,००० की चीज़ें देता है और तुम्हें ५,००० की! दिवाली में भी ऐसा ही किया... वह तुम दोनों में भेदभाव क्यों करता है?... और मैंने पक्के तौर पर सुना है कि वह धंधे में भारी गोलमाल करता है, जिस दिन पकड़ा जाएगा, उसी दिन जेल की हवा खाएगा। मुझे तो दया आती है।'

मेरी पत्नी भेदभाव की बात से दुखी होती और जेल की बात से डर जाती। उसने एक बार हिम्मत करके अपने भाई से पूछ ही लिया। भाई समझ गया। 'बहन! जीजा को मेरी तरक्की जलाती है, और उसी आग में वह तुम्हें भी भड़काता है... बाकी सच्ची हकीकत यह है कि मैंने तुम्हें और उसे बराबर ही दिया है। देखो... ये दोनों साड़ियों के बिल!' पत्नी का भ्रम टूट गया। उसी तरह जेल का डर भी साले ने दूर कर दिया।

फिर पत्नी ने मुझे समझाया, 'आप उसकी ईर्ष्या करेंगे तो आपको कुछ भी नहीं मिलेगा। मिलेगा केवल विनाश! जिस चीज़ से ईर्ष्या करते हैं, वही हाथ से चली जाती है। आपको अगर भिखारी ही बनना है, तभी इस ईर्ष्या के, इस पैशुन्य के पाप करना...'

उसने हृदय को भेद देने वाले शब्दों में मेरी आँखें खोल दीं। 'सुख वह उसका ही भोगे भले, जलूँ क्यों मैं अपने हृदय में।' ये शब्द मुझे याद आ गए। म.सा.! ईर्ष्या से प्रेरित होकर किए गए पैशुन्य के लिए अंतर से मिच्छामी दुक्कडं।

(१७) मेरे मित्र का बेटा एक म.सा. के पास दीक्षा लेने वाला था। उस म.सा. के प्रति मेरे मन में दुर्भाव था और मैं उस युवक को अपने माने हुए गुरु के पास ही दीक्षा दिलवाना चाहता था। इस मलिन भावना से प्रेरित होकर मैंने अपने मित्र और मुमुक्षु को बुलाया... और कहा, 'मैं इस समुदाय को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हें अंदर की कोई जानकारी नहीं है। जिसे तुम गुरु बनाने जा रहे हो, वह बिल्कुल स्वच्छंद है, किसी की नहीं मानता... उसके अच्छे प्रवचनों से तुम मोहित हो गए हो, बस उतना ही। उसके पास दीक्षा लेने जैसी बात नहीं है...'

मैंने उन्हें बहुत सी बातें कहकर डरा दिया। उन्होंने मुझसे पूछा, 'हमें किसके पास जाना चाहिए?' तब मैंने अपने गुरु का नाम बता दिया। मेरे गुरु के पास उनकी झटपट दीक्षा हो गई। मुझे अंदर से खुशी हुई कि 'मैंने उस म.सा. को लटका दिया और अपने गुरु के पास एक दीक्षा करवा दी...'

लेकिन एक-दो साल बाद मेरे गुरु ने मुझे बुलाया... 'इसे यहाँ बिल्कुल नहीं जंचता। यह एक ही बात करता है कि वही म.सा. उसके सच्चे गुरु हैं। उसे वहीं जाना है... तुमने उस म.सा. की निंदा करके इसे डरा तो दिया, लेकिन अब तुम्हें और मुझे घबराना पड़ेगा...'

अंत में मैं खुद उस म.सा. के पास गया। उन्होंने बहुत उदारता से उस मुनि को स्वीकार करने की तैयारी दिखाई। उन्होंने मेरे साथ भी पूरी मधुरता से व्यवहार किया। उन्हें मेरे कारनामे की जानकारी थी, फिर भी उन्होंने अपने मुनित्व को नहीं खोया।

मुझे तब बहुत दुख हुआ कि 'मैंने कैसे एक उत्तम मुनि के बारे में निराधार बातें गढ़कर पिता-पुत्र के मन में ज़हर भर दिया। मैंने सचमुच घोर पाप किया।' मैंने उस म.सा. के पास अपनी भूल स्वीकार की। उन्होंने मुझे माफ़ कर दिया।

आज आलोचना में मैं यह पाप लिखकर संतोष अनुभव कर रहा हूँ। वह नवदीक्षित मुनि अब उसी म.सा. के पास स्थानांतरित हो गया है, अत्यंत प्रसन्न है। मैंने उससे भी माफ़ी माँग ली है और उसके पिता से भी माफ़ी माँग ली है। जैन शासन मिलने का आनंद है कि जिसमें मेरे जैसे पापी भी परम पवित्र बन सकते हैं... मेरे इस पाप के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक - १५ : रति - अरति

रति-अरति की व्याख्या मैं इस प्रकार समझा कि पाँच इंद्रियों के पाँच विषय हैं। शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श! यदि ये पाँच मनपसंद हों, तो इसमें मज़ा आता है, यही मज़ा रति है! और यदि ये पाँच नापसंद हों, तो इसमें मज़ा नहीं आता, मज़ा न आना, परेशानी होना यही अरति है!

मुझे लगता है कि यह पाप तो रोज़ाना सैकड़ों बार होता होगा। क्योंकि हमारी पाँचों इंद्रियाँ लगातार सक्रिय रहती हैं। और चारों ओर उनके विषय भी लगभग उपस्थित रहते हैं, इसलिए अच्छे शब्द आदि में राग रूपी रति और बुरे शब्द आदि में द्वेष रूपी अरति, दोनों पाप मैंने ढेर सारे किए हैं... इसका तो कोई अंत ही नहीं है... फिर भी जितना याद आएगा, और जिसमें मुझे विशेष रूप से रति-अरति हुई है, उसे मैं खास लिखूंगा...

(१) बचपन में मैं दादी-दादा के पास सोता था। रात को उनके नाकसकोरे इतनी भयानक तरह से चलते कि मेरी नींद उड़ जाती और फिर नींद नहीं आती। मुझे उस शब्द में सख्त अरति होती। (अरति = असहनीय = परेशानी = त्रास = हेरानगी...) दादी-दादा के प्रति तो प्रेम था, लेकिन इस नासकोरे के कारण उन पर भी दुर्भाव आ जाता... मैंने माँ से शिकायत की। फिर माँ-पापा के साथ सोने गया, वहाँ पापा की वही हालत! अंत में कान में कॉटन डालकर दादी-दादा के साथ ही सोना पड़ा।

(२) मुझे संगीत का बहुत शौक था। मैंने सोनी कंपनी की ६ ऑडियो केसट तैयार करवाई, उसमें अपने पसंद के गीत रिकॉर्ड कराए। १० मिनट की एक केसट, यानी कुल ५४० मिनट गाने मेरे पास थे। कई बार उन्हें सुनता। इसके लिए नया स्पेशल टेप-रिकॉर्डर खरीदा, उसके दो स्पीकर खरीदे, ईको साउंड आने की व्यवस्था भी की... और रोज़ दो घंटे सुनता। उस समय मोबाइल नहीं थे, इसलिए मेरा अधिकतम समय इसमें ही व्यतीत होता। फिर मैंने वॉकमैन खरीदी, रात में कान में वॉकमैन लगाकर देर तक सुनता, किसी को परेशानी न हो और मुझे जबरदस्त मज़ा आता। इस प्रकार संगीत का आनंद लिया... यह सब रित नामक पाप था।

(३) दादी को अंतिम उम्र में खाँसी बहुत बढ़ गई, पूरा दिन 'खो-खो' करती रहती। मुझे बहुत त्रास होता। मैंने माँ से कहा, माँ बोली 'इसका कोई उपाय नहीं। या तो रोग मर जाएगा, या वह... तभी यह आवाज़ शांत होगी। रोग तो नहीं मरने वाला, तुम्हारी दादी मर सकती है।' मैं भड़का, मेरा आशय दादी की मृत्यु नहीं था, लेकिन सास से तंग माँ के मन का भाव बाहर प्रकट हो गया। अब मुझे वह खो-खो सहना ही पड़ा। मैंने मन को बहुत मनाया, लेकिन नींद में, संगीत सुनते, दूसरों से बात में, सीरियल-मूवी देखते समय वह खो-खो शब्द बार-बार परेशान करता। चुपचाप मैंने वह शब्द सहा, लेकिन मन में कई बार अरति होती। कई बार बोल पड़ता, 'दादी! प्लीज...' लेकिन फिर मुझे एहसास होता कि 'इसमें दादी क्या करेगी?..' जिस दिन दादी का निधन हुआ, उस दिन दुख के बजाय एक तरह की शांति महसूस हुई कि 'हा! अब शांति से जिया जाएगा।'

मेरे इस अरति पाप के लिए अंतःकरण से मि. दुक्कड़। अति नामक पाप ने मुझे दादी की मृत्यु में हास्य अनुभव कराया, वह अरति कितना नीच पाप!

(४) रात को कुत्तों के जोर-जोर से भौंकने की आवाज़ के कारण नींद उड़ गई। सख्त अरति हुई, गैलरी में जाकर कुत्तों को भगाने के लिए 'ह-ह' किया, लेकिन वे नहीं गए। मन में ऐसे विचार आए कि 'इन सबको शूट कर देना चाहिए।' रात ऐसे ही बीत गई। सुबह सोसाइटी में बात चली कि 'चोर आए, इन्हें कुत्तों ने भौंककर भगाया।' तब मुझे समझ आया कि हमारे रोटले-दूध खाने के बाद उन कुत्तों ने अपनी वफादारी पूरी निभाई और हमारी रक्षा की। आए हुए चोरों ने कई बिस्किट वहाँ रखे, लेकिन एक भी कुत्ता नहीं खाया। उनकी हमारी प्रति वफादारी अद्भुत थी। चोरों ने उन्हें पत्थर मारे, एक-दो कुत्तों से खून भी निकला, लेकिन वफादार सैनिक की तरह सभी कुत्ते लड़ते रहे... अब मुझे समझ आया कि 'उनकी भौंकने की आवाज़ हमारी सुरक्षा के लिए थी।' मेरे रात के अति पाप और हिंसात्मक विचार के लिए खास मिच्छामी दुक्कड़।

(५) दीक्षाओं के विदाई समारोह का फ़ंक्शन था। रात के १०:३० बजे। मैं उस संगीत की आवाज़ से सख्त त्रास हुआ, मैंने पुलिस को फ़ोन करके कार्यक्रम बंद करवाया। इसमें लोगों की गलती होगी, लेकिन उस आवाज़ में अरुचि और कार्यक्रम बंद कराना... ये दोनों भूलें मेरी थीं। मेरा पसंदीदा DJ म्यूजिक बजता, कई लोग परेशान होते, लेकिन मैंने उस समय किसी की अरुचि पर ध्यान नहीं दिया। आज भी उससे कम आवाज़ थी, पर मुझे पसंद नहीं आया, इसलिए पुलिस का उपयोग करना किसका न्याय?

(६) दिवाली की रात पटाखों की आवाज़ से बहुत त्रास हुआ, मन में गुस्सा भी आया। पर कुछ करना संभव नहीं था। कान में कॉटन डाला। पर इतनी सारी धमाके हुए कि नींद खराब हो गई। तब मुझे अपनी युवावस्था + बचपन याद आए। उस समय मैं बहुत सारे सुतली बम और बड़े-बड़े लुम फोड़ता था। तब आसपास वाले तो ठीक, लेकिन घर के लोग भी परेशान हो जाते थे। मुझे रोकते थे, लेकिन मैं अपनी मस्ती में था। आज

पता चलता है कि उनका त्रास कैसा होगा? उस त्रास देने और वर्तमान त्रास के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

(७) गणपति विसर्जन के समय भयंकर करकश ढोल-नगाड़ों की आवाज़ से मैं बहुत त्रास पाता।

(८) महोरम समय के जुलूस में अत्यंत भयंकर करकश आवाज़ के कारण मैं बहुत त्रास पाता।

(९) जब मैं खुद नवरात्रि में खेलने जाता था। तब माता जी के पुराने गीत सुनते, तो सख्त कंताल आता, और मूवी के गीत चलते, तो मैं मस्ती में झूम उठता। ऐसे, रति और अरति दोनों साथ चलते। अब तो दोनों प्रकार के म्यूजिक में मुझे त्रास होता है, मैं समाधिभाव बनाए नहीं रख पाता। इस रति-अरति दोनों के लिए खास मिच्छामी दुक्कडं।

(१०) उतरण के दिनों में छत पर हम हिंदी मूवी के गीत बहुत बजाते, और रात में DJ म्यूजिक पर खूब नाचे। इस दोनों म्यूजिक में मैंने अति राग किया है... मिच्छामी दुक्कडं।

(११) कई कई विवाहों में संगीत संध्या रखी गई, उसमें बाहर से जेंट्स-लेडीज़ सिंगर्स को भी बुलाया गया, डांस के साथ उनके गीत-संगीत मुझे बहुत पसंद आए। इसमें तीव्रराग किया है।

(१२) तबला, वायलिन, सितार, फ्लूट (बांसुरी), पियानो, संतूर... इन सभी वाद्ययंत्रों के जो मास्टर हों, उनके प्रोग्रामों में भी मैं गया हूँ, और दिल देकर उन्हें सुना है, 'वाह वाह' भी किया है। हाँ! छोटी उम्र में टीवी पर चलते क्रिकेट के बीच-बीच में ऐसे संगीत प्रोग्राम आए। तो मुझे त्रास हुआ, 'यह क्या तानी-तान कर गाता है।' क्योंकि उस समय शास्त्रीय संगीत के प्रति कोई लगाव नहीं था... ये सभी ती-अति के खेल चलते ही रहे हैं।

(१३) कई साल पहले दूरदर्शन पर चित्रहार नाम की सीरियल आती। उसमें मूवी के ५-६ गीत बताए जाते। उसमें अच्छे गीतों में रति और नाकाम गीतों में अरति... यह सब मैंने किया है।

(१४) हमारे यहाँ छत पर कबूतरों के लिए दाना डालते होने से सैकड़ों कबूतर रोज आते, और सुबह उनका 'घु-घु' आवाज़ मेरी नींद बिगाड़ता, मुझे बहुत गुस्सा आता, मैंने दाना डालना बंद करवाने के लिए मेहनत की, लेकिन दाना + कबूतरों का घु-घु + मेरी नींद में बगाड़... यह चलता ही रहा। मुझे अब विचार आता है कि यदि केवल कबूतरों का घु-घु आवाज़ मुझे इतना त्रास देता है, तो दिवाली की रात में हम जो फोड़े गए फटाके, उनका अत्यंत भयानक आवाज़ उन पशु-पक्षियों को कितना त्रास देता होगा? हमने उनका विचार क्यों नहीं किया? कई पशु-पक्षी उस आवाज़ से अत्यंत त्रास पाकर वैसे ही मर गए होंगे। मेरी इस-घु के लिए अति के लिए खास मिच्छामी दुक्कंड।

(१५) जैनम वारिया, मनन संघवी, जयदीप स्वाडिया, उमंग भावसार, पारस गड़ा-ये सभी संगीतकारों के प्रोग्राम मुझे बहुत पसंद हैं। लेकिन समस्या यह कि मैं उनके धार्मिक गीतों के माध्यम से भक्ति में जुड़ने के बजाय केवल उनके गीत और इंस्ट्रूमेंट के संगीत में खो जाता। पहले मैं यह समझता कि 'मैं भक्ति करता हूँ,' लेकिन फिर मुझे मुनि से विवेक मिला कि 'विदेशी लोग आभूषण में दर्शन करते हैं, वे कोतरनी और प्रतिमा दोनों को देखते हैं। उनके लिए दोनों समान हैं। शायद कोतरनी में उन्हें आनंद अधिक है। इसका अर्थ यह कि प्रतिमा देखकर उन्हें धर्मबुद्धि नहीं, बल्कि जिज्ञासावृत्ति है, कलाकारी का दर्शन है। प्रतिमा के माध्यम से यदि आत्मा परमात्मा के गुणों तक नहीं पहुँचती, तो प्रतिमा दर्शन धर्म नहीं बनता। उसी प्रकार गीत-संगीत के माध्यम से यदि वैराग्य-भक्ति भाव तक आत्मा नहीं पहुँचती, तो गीत-संगीत केवल इंद्रियों के विषयराग को पोषित करता है...' इसके बाद मुझे भान हुआ कि गायकी और संगीत तक मेरा मन अटका रहता था। इससे आगे नहीं बढ़ता, और यह मेरा गंभीर भ्रम था कि

मैं इसे भक्ति मान लेता। मेरी इस रति-अति के लिए मि. दुक्कड़। ये गीत-संगीतकार तो मुझे भक्ति ही देना चाहते थे, लेकिन मैंने भक्ति प्राप्त नहीं की।

(१६) म.सा.!! कितना याद करूँ? • जोर-जोर से दरवाज़ा खड़काने की आवाज़ • किसी के फ्लैट में फ़र्नीचर बनता हो, तब पत्थर काटने वाले ग्रिलिंग मशीन की भयंकर आवाज़ • घर के कुछ लोग जोर-जोर से बातें करते (उनकी गले में प्राकृतिक स्पीकर की व्यवस्था है...) • देरासर के पूजा-पूजन का आवाज़ • स्वाग महोत्सव का आवाज़ • ट्रैफिक में लगातार बजता टी-टी... का आवाज़ • शाक आदि वितरित करने निकले फेरी वालों की तेज आवाज़ • हमारे अपार्टमेंट की लिफ्ट का संगीत • उपाश्रय की पुरानी लिफ्ट में दरवाज़ा खुला रह जाए, और मैं वहाँ समय में हूँ और 'प्लीज़ क्लोज द डोर' जैसी ऑटोमैटिक आवाज़ • पड़ोस में झगड़े के समय का जोरदार चिल्लाने का आवाज़ • टेक्सटाइल फैक्ट्रियों की लगातार आती खट-खट आवाज़... ऐसे ढेर सारे आवाज़ों के समय मैंने छोटी-बड़ी अरति की है, मैं मध्यस्थ नहीं रह सका... और अभी भी ऐसे ढेर सारे अति का भोग करता हूँ। अरे, कोई खाते समय चप-चप आवाज़ करे, तो इसमें अति होती है। कोई चाय-टमाटर सूप आदि पीते समय सीप-सीप आवाज़ करे, कोई कफ खांसते समय जो आवाज़ करे, कोई नाक से सर्दी निकालते समय जो आवाज़ करे, कोई वॉमिट करते समय जो आवाज़ करे, कोई बछूते समय जो विचित्र आवाज़ करे... कोई पेशाब करते समय जो आवाज़ करे... इन सभी आवाज़ों ने मुझे परेशान किया है। कभी अधिक तो कभी कम... मेरी इन हजारों-लाखों अरतियों के लिए खास मि. दुक्कड़। कान के प्रति प्रतिकूल शब्दों में द्वेष-अरुचि न करना, मध्यस्थ रहना... इस मामले में मैंने गलती की है।

(१७) • छोटी उम्र के मेरे बेटे-बेटियों की मीठी-मधुर आवाज़ • उसमें जब अलग ही लहजे में 'पापा' कहे, उसका आवाज़ • पत्नी अच्छा गाती है, तो उसका सुरिलो आवाज़ • मेरे मोबाइल की रिंगटोन में मैंने अपने फेवरेट गीत रखे हैं। जब भी रिंगटोन बजे, उसका आवाज़ • मैंने डोरबेल में भी मुझे बहुत पसंद आने वाला वह आवाज़ रखा है। कोयल

का... यानी जब डोरबेल बजे तो कोयल का आवाज़ • हमारे आसपास गार्डन है, वहाँ सुबह-सवेरे पक्षियों के मधुर कलरव की आवाज़ ० मुझे 'कल हो न हो' का प्रसिद्ध संगीत अत्यंत प्रिय है, कई बार मैं इसे सुनता हूँ... तो उसका आवाज़ • मोहम्मदरफ़ी, मुकेश, किशोर कुमार, लता जी, आशा भोंसले... सभी ने गाए पुराने गीत मुझे अत्यंत पसंद हैं। कार में वही गीत सुनता हूँ, और खुद भी गुनगुनाता हूँ... तो उसका आवाज़...

इन सभी आवाज़ों में मैंने ती अनुभव किया है। कहां वह आवाज़ें सामने से आती थीं, कहीं उन आवाज़ों को सुनकर शांति पाने के लिए मैं उन स्थानों पर गया, कहीं रिकॉर्डर आदि के द्वारा मैंने स्वयं ही वे आवाज़ें उत्पन्न कीं। आत्मा के गुणों में रति करने का यह अनमोल मानव-भव मैंने शब्द पुद्गलों में रति करने के पीछे बर्बाद कर दिया, यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

(१८) शब्दों में रति-अरति के मेरे अपराधों को दर्शाने के बाद अब रूप में रति-अरति के मेरे अपराधों को दर्शाता हूँ। जब मेरे बच्चे छोटे थे, तब वे गोरे-गोरे और मोटे-ताज़े थे, उनकी मुस्कान मुझे अत्यंत प्रिय लगती थी... उस समय के दौरान मैंने हज़ारों बार अपने बच्चों के चेहरे को, उनकी मुस्कान को, उनके अलग-अलग हाव-भावों को बहुत राग पूर्वक देखा है।

(१९) वे बच्चे जिस तरह घुटनों के बल चलते थे, जिस तरह बैठते थे, जिस तरह अपनी माँ से लिपट जाते थे, जिस तरह खाते-पीते थे,... उनकी ऐसी प्रत्येक अदा मन में रति उत्पन्न कर देती थी। 'यह पाप है' ऐसा कभी लगा ही नहीं। यह पुद्गलों के प्रति आकर्षण है... ऐसा कभी सोचा ही नहीं। मैंने इसमें अनंत पाप कर्मों का बंध किया है, वासना के विचार तो पाप लगते हैं, पर इन बच्चों के अलग-अलग रूपों के दर्शन तो मुझे कभी पाप लगते ही नहीं थे... पर अब यह सब समझ में आया है।

(२०) मेरा ब्लैक जीन्स + ब्लैक जर्सी + ब्लैक गॉगल्स वाला फोटो मुझे अत्यधिक पसंद था। और उपधान के समय का मेरा शांत फोटो भी मुझे अतिप्रिय था, मैंने वे दोनों

फोटो अपने मोबाइल में रखे थे, और विपरीत भाव वाले उन दोनों फोटो को मैं अनेक बार ध्यान से देख-देखकर अत्यंत प्रसन्न होता था।

(२१) बचपन से लेकर आज तक के मेरे सैकड़ों फोटोज़ का मैंने कलेक्शन कर रखा था। उन्हें देखने में मुझे बहुत मज़ा आता था... मैं रागी बनता था।

(२२) मेरी पत्नी को हेयरस्टाइल और मेकअप का बहुत शौक था और वे इसमें कुशल भी थीं... और मुझे उन्हें अलग-अलग स्वरूपों में देखने में बहुत आनंद आता था। विशेष रूप से उनकी अलग-अलग हेयरस्टाइल मैं ध्यान से देखता था, मुझे अपनी ओर आकर्षित रखने के लिए वे भी ऐसे नज़ारे अनेक बार करती थीं... कान में लटकते कुंडल, कलर मैचिंग वाले कपड़े + बिंदी + सिर में रिबन... यह सब मैंने तीव्र राग से देखा है... मैं उसमें डूबा हूँ... अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(२३) हीरो-हीरोइन की एक्टिंग देखने में बहुत मज़ा आया है। हीरो की फाइटिंग स्टाइल देखकर मन में रति हुई है, और हीरोइन के इमोशन देखकर मज़ा आया है... इस सब रति में मैंने घोर पाप बाँधे हैं!

(२४) विष्ठा देखकर भयंकर अरति हुई है। उसी प्रकार उलटी, कफ देखकर भी! मुझे अपने ही ऐसे अशुचि तत्त्वों में भी भयंकर अरुचि हुई है, तो दूसरों के अशुचि तत्त्वों में तो होनी ही है।

(२५) छिपकली, कॉकरोच... ऐसे जीवों को देखकर अरति हुई है। उनका स्वरूप ही एकदम विचित्र लगता है...

(२६) एक भाई एकदम साँवले थे, और साथ में चेहरा भी विचित्र था, तो उन्हें देखकर मुझे अरति होती थी।

(२७) एक बहन को पूरे शरीर पर बड़े-बड़े फोड़े हो गए थे, उन फोड़ों के कारण वे ६० वर्ष की माँजी एकदम विचित्र दिखती थीं, और हमारे इलाके में ही रहती होने के कारण वे

मुझे बार-बार दिख जाया करती थीं। हर बार मुझे भयंकर घिन आती थी। बाद में किसी ने कहा कि, 'यह बहन एक समय में इतनी रूपवान थी कि उनसे विवाह करने के लिए पुरुष होड़ लगाते थे... परंतु आज कर्म ने उनकी यह दशा कर दी।' तब मुझे संसार की असारता का बोध हुआ। पर वह अरति तो मेरे मन में लगातार होती ही रहती थी।

(२८) मेरे मुँह पर कुष्ठ का सफेद दाग हो गया था। मुझे उस दाग को देखकर बहुत दुःख होता। मैं जब-जब उस दाग को देखता, तब-तब मुझे बहुत कष्ट होता। अनेक दवाइयाँ करवाईं। पर वह दाग बढ़ता ही गया, धीरे-धीरे पूरे मुँह को ढक लिया। मैंने आईने में देखना ही बंद कर दिया, पर फिर भी दूसरों की आँखों से ही मुझे मेरे उस बुरे रूप का स्मरण हो आता और कष्ट उत्पन्न हो जाता।

(२९) रास्ते पर खुली गटर देखकर कष्ट हुआ। उसमें बहती गंदगी सहन नहीं होती थी।

(३०) वॉशरूम का छेद उफन आया, मल अंदर पास नहीं हो रहा था, उल्टा वह बाहर आ रहा था... उस समय तो अति भयंकर अरति हुई। प्लंबर को बुलाकर बड़ी मुश्किल से ठीक करवाया... सचमुच पुद्गलों की दुनिया कैसी है न? जिन पुद्गलों को देखकर मुझे अति-अति-अति कष्ट होता था, उन्हीं पुद्गलों को मैंने खाया था, ध्यान से देखा था... यह कैसी विषमता! पर मुझे सच्चा वैराग्य कब आएगा? यही पता नहीं...

(३१) किसी की आँखें कीचड़ से भरी हुई थीं, एकदम गंदी लग रही थीं, उसे देखकर कष्ट हुआ।

(३२) किसी के नाक के दोनों छिद्र सर्दों से भरे हुए दिख रहे थे, नाक बह रही थी, नाक से मुँह तक वह सर्दी नीचे आ रही थी... वह वीभत्स दृश्य देखकर अत्यंत अरुचि हुई।

(३३) बीमार दादी के मुँह से बार-बार लार टपकती थी, उसे देखकर अत्यधिक कष्ट हुआ। ऐसा ही दादाजी के मामले में भी हुआ।

(३४) मेरे संतानों के पेशाब-मल, बूढ़े दादा-दादी के पेशाब-मल से बिगड़े कपड़े और चादरें... यह सब देखकर मन बहुत त्रस्त होता था। मेरी पत्नी ने दादा-दादी का काम करने से स्पष्ट मना कर दिया, उसे तो उलटी ही हो जाती थी... मुझे अपनी माँ को इस कार्य में सहयोग करना पड़ता था, पर हर बार मुझे सख्त कह हुआ ही...

(३५) मैंने दूसरे घरों का फर्नीचर देखा, उसके बाद मेरे घर की पुराने ज़माने की टाइल्स देखकर, पुराने ज़माने के सोफे देखकर, घर को अँधेरा देखकर, बिल्डिंग की चढ़ने की थोड़ी टूटी-फूटी सीढ़ियाँ देखकर, उन सीढ़ियों के कोनों में पान के थूके हुए दाग देखकर सख्त अरुचि हुई... उसके बाद मैंने जल्द से जल्द नया व्यवस्थित फ्लैट ले लिया।

(३६) तीर्थभूमियों में गंदे वॉशरूम देखकर बहुत कह हुआ। उपाश्रयों के वॉशरूम में भी ठीक से सफाई न होने के कारण वहाँ भी गंदगी देखकर कह हुआ। ऐसा ही अनुभव मुझे कुछ होटलों में भी हुआ। सार्वजनिक शौचालयों में भी मैंने वही हालत देखी... ट्रेनों में तो मुझे वॉशरूम देखकर एक-दो बार उलटी जैसा हो गया था... पुद्गलों के वीभत्स स्वरूप को अपना लेने की योग्यता मैं अभी तक प्राप्त नहीं कर सका हूँ... यह मेरे आत्मा की अधमता है... इसके लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंड।

(३७) अब गंध के विषय में मेरी रति-अरति आपको बताता हूँ... महाराज साहेब! Lux, हमाम, ये सब साबुन मैं सूँघता था, और मुझे अच्छा लगता था। उससे स्नान करने के बाद अपने शरीर को भी सूँघता और मुझे अच्छा लगता। ऐसी ही सारी नौटंकी मैंने शैम्पू में भी की...

(३८) पाउडरों की सुगंध भी मुझे अच्छी लगती थी, विशेषकर पोंड्स पाउडर मेरा पसंदीदा था। रोज़ वह पाउडर लगाता, उसकी सुगंध से खुश होता।

(३९) समारोह आदि में मैं इत्र = परफ्यूम का उपयोग करता था। मेरे पास अलग-अलग प्रकार की १५ बोतलें हैं, सुगंधित बनने का नशा था मुझे! जिसका स्वभाव ही दुर्गंधित पदार्थ देना है, ऐसे शरीर को मैं सुगंधित बनाने निकला था... आज तो शर्म आती है मुझे!

(४०) गुलाब-मोगरा... ये सब मेरे पसंदीदा पुष्प! मुझे फूलों के बगीचे में घूमना अच्छा लगता है। मैसूर के वृंदावन गार्डन में तो मैं सुगंध के पीछे पागल हो गया था। तीन घंटे मैंने उस बगीचे में बिताए थे।

(४१) रूप के लिए मुझे याद आया कि बगीचे में पुष्पों का रूप देखकर, उगे हुए पेड़ों की व्यवस्थित कटिंग देखकर (एकदम सुंदर आकार बने उस तरह की कटिंग देखकर), मुझे अत्यंत राग हुआ है। बगीचे की बेंच पर बैठकर मैं वह सब ध्यान से देखता था। कई रंग-बिरंगे पक्षियों को देखता... और खुश होता था।

(४२) समुद्र किनारा भी मेरा पसंदीदा है। जहाँ कम भीड़ हो, वहाँ जाना... समुद्र देखते रहना, उसकी उछलती लहरों को देखते रहना, उसके पानी में छपछपाना... इस सब में मैंने खुद रति की है। मुझे अब समझ में आया कि यदि ऐसी रति के समय आयुष्प बंध जाए, तो मुझे जल का जीव बनना पड़े, एकेन्द्रिय बनना पड़े। पुष्पों में राग के समय आयुष्प बंध जाए, तो वनस्पति में मेरा जन्म हो... भगवान जाने मेरा क्या होगा?

(४३) मेरे घर पर तो मैंने मछलीघर नहीं रखा था, परंतु डॉक्टर के क्लीनिक में, अस्पतालों में या किसी के घर मैंने मछलीघर देखे थे, उसमें तैरती रंग-बिरंगी मछलियाँ, रंगीन पानी, रंगीन पत्थर... यह सब देखकर मुझे बहुत मज़ा आता था... पर अब बोध होता है कि उन मछलियों को जीवित रखने के लिए उनके भोजन के रूप में कीड़े डाले जाते हैं... मछलीघर में कछुए भी देखे थे... बेचारे उन जीवों के लिए तो यह एक बड़ी जेल ही थी, और उस जेल में बंद इन निर्दोष जलचरों रूपी कैदियों को देखकर मैं खुश होता था... यह मेरी अधमाधमता थी। पर उस समय मुझे ऐसा कोई विवेक

आया ही नहीं... अंतःकरण से मिच्छामि दुक्कडं। अब तो मछलीघरों को देखता ही नहीं...

(४४) पत्थरों का भी मुझे बहुत राग था! अनेक हीरे, मोती, रंग-बिरंगे पत्थर, समुद्र या नदी किनारे पड़े पत्थर... इस सब में मुझे बहुत राग हुआ। अंगूठी में, अंगूठी में जड़े हीरे में, हीरे वाले सोने के ब्रेसलेट में, चेन में (स्त्रियों को गहनों की डिज़ाइन में राग होता है...) इस सब में मुझे रति हुई ही है। उसे देख-देखकर मैं मुस्कुराया हूँ, मुरझाया नहीं... हाँ! ऊपर की सभी बातों में जब अनचाहा हुआ, तब मुझे कष्ट भी हुआ है... इस बंदर जैसी चंचलता के लिए मिच्छामी दुक्कडं...

(४५) उपधान में सबके शरीर से दुर्गंध आती थी, उसके कारण मुझे कष्ट हुआ। कोई मेरे नज़दीक आए यह मुझे अच्छा नहीं लगता था, पर मैं स्पष्ट मना नहीं कर सकता था। कई बार तो मुझे नाक बंद कर लेनी पड़ती, मुँह बिचक जाता... वह दुर्गंध शरीर की थी, पर मैं उन आराधकों की आराधना की सुगंध का अनुभव नहीं कर सका... यही मेरी गंभीर भूल थी...

(४६) मेरी पत्नी के मुँह से बहुत दुर्गंध आती थी। वह रसोई में खड़ी होती, तो पूरे रसोईघर में वह दुर्गंध फैल जाती। मैं, मेरे बच्चे त्रस्त हो गए। बहुत दवाइयाँ करवाई, पर किसी प्राकृतिक खराबी के कारण वह दुर्गंध दूर नहीं हो रही थी। अब तो किसी कार्यक्रम में उसे साथ ले जाने में भी मुझे शर्म आने लगी थी, हर बार हर किसी से यही सुनना पड़ता कि 'बाप रे! कितनी दुर्गंध आती है, आप इनके साथ रहते कैसे हैं?' बेचारी मेरी पत्नी भी अपनी बार-बार की निंदा से बहुत त्रस्त हो गई, मैं उससे प्रेम करता था, पर उसकी दुर्गंध से नहीं... यह सब पहले नहीं था, पर कुछ वर्षों से ही शुरू हुआ था। बच्चे भी माँ के पास जाने से मना कर देते थे... पत्नी अंदर से बहुत आहत हुई, पर वह भी क्या करे? उसे आत्महत्या के विचार आने लगे, मैंने उसे समझाया... बेशक, बहुत समय से हमारा देह-संबंध भी रुक गया था, मैं उससे बात करता, पर थोड़ा अंतर रखकर... वह समझ गई थी

कि 'मैं भी उसकी दुर्गंध से त्रस्त हूँ...' यह परिस्थिति ऐसी थी कि मायके में भी उसे कोई न रखे... कोई उसे न रखे। शायद मदर टेरेसा वाले रख लें, शायद मानवसेवावादी रख लें... पर क्या उस तरह उसे वहाँ रहने दिया जा सकता था?... मैंने कुछ निर्णय ले लिए, उसके लिए अलग कमरा! वह रसोई बनाए, पर जब वह कमरे में जाए, उसके बाद ही हम सब खाते-पीते... और सबसे मुख्य बात, मैंने महाराज साहेब के पास जाकर मन को दृढ़ बनाया, दुर्गंध सहने की ताकत इकट्ठी की, और रात को उसी के साथ सोता था... भले ही देह-संबंध नहीं, पर मन का संबंध तो मैंने जोड़कर ही रखा। उसे शब्दों से बहुत प्रेम दिया, उसे बहुत शांति मिली, वह बोली 'आप न होते, तो मेरा क्या होता? पता नहीं।' आँसुओं के साथ कहे उसके उन शब्दों ने मुझे भी रुला दिया... मेरे जीवन की सबसे भयंकर दुर्घटना यह थी, और उसमें से मैं सकुशल पार होकर बाहर निकला। लगभग चार साल तक मुझे यह यातना सहनी पड़ी, मुझसे भी ज़्यादा उसे यह सहना पड़ा, उसके बाद कोई दवा लग गई और उसकी दुर्गंध मिट गई... हमारा जीवन पहले की तरह गुज़रने लगा। पर वे चार साल मैंने दुर्गंध की भयंकर अरति में ही गुज़ारे हैं... मन से स्वस्थ नहीं रह सका... उसके लिए अंतःकरण से मिच्छामि दुक्कडं... भगवान किसी को ऐसा एक दिन भी न दिखाए...

(४७) कई बार ऐसा हुआ है कि लोगों ने अधोवायु छोड़ी, और उसकी दुर्गंध अत्यधिक थी। उसके कारण मुझे अरति हुई। मन बिगड़ा। कभी-कभी तो गुस्से में कह भी दिया कि 'खाने का ध्यान रखो! पचता नहीं, तो खाते क्यों हो? उतना ही खाओ, जितना पचे... और वही खाओ जिससे ऐसी गैस न बने।' ऐसा मैंने माँ-बाप, दादा-दादी, पत्नी, बच्चों, मित्रों आदि अनेक लोगों के साथ किया है। और महाराज साहेब! मुझे कहते हुए भी शर्म आती है कि मैं अपनी ही अधोवायु को हाथ में लेकर सूँघता था, और मुझे उसकी दुर्गंध भी अच्छी लगती थी... यह मेरी बहुत बुरी आदत थी। कभी-कभी तो किसी ने मुझे टोका भी कि 'यह क्या कर रहे हो? शर्म है या नहीं?' उसके बाद किसी के देखते हुए नहीं सूँघता, जब कोई न देखे, तब सूँघता हूँ... पर यह बहुत ही गंदी चीज़ है... अंतःकरण

से मिच्छामि दुक्कडं। उसी तरह मेरी बगल में पसीना होता, तो नाक उसके पास ले जाकर वह पसीना भी सूंघता था... छी!... पर मुझे यह अच्छा लगता था, इस विचित्र प्रकार की रति के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(४८) हमारे नीचे ही होटल है, उसमें जब पाव-भाजी आदि चीजें बनती हैं, तब उसकी सुगंध घर तक आती है, और एकदम स्पष्ट आती है, वह सुगंध मुझे अत्यधिक पसंद भी है... अलग-अलग चीजों की गंध भी अलग-अलग होती है। वर्षों के अनुभव से मुझे पता चल ही जाता है कि 'कौन सी चीज़ बन रही है...' उसके बाद मुझे उस चीज़ की इच्छा भी हो ही जाती है... यह सब रतियाँ हज़ारों बार हुई हैं।

(४९) उपवास आदि के पारणे में घर पर शीरा आदि बनता, तब घी में आटा भुनने की सुगंध मन को बहुत प्रसन्न कर देती, महाराज साहेब! इन छोटे-छोटे पापों में मैंने कितना कर्मबंध किया होगा?...

(५०) बाम आदि की सुगंध में भी रति की...

(५१) मुझे डीज़ल, पेट्रोल, केरोसीन की गंध भी बहुत पसंद है। सामान्यतः तो लोगों को इससे उलटी भी होती है, पर मैं तो इन चीज़ों को नाक लगाकर सूंघता था... इसी तरह, ताज़ा घी भी सूंघता था... इस सब में आनंद होता था...

(५२) रबर की सुगंध और बॉलपेन की सुगंधित स्याही की सुगंध में भी रति की। अब कुछ बॉलपेन ऐसी आती हैं जिनकी स्याही से सुगंध निकलती है...

(५३) दूध या सब्जी जल जाए, तार जल जाए... तो उस समय एक विशेष प्रकार की दुर्गंध आती है, उस दुर्गंध में मैंने अरति की... मुझे वह दुर्गंध पसंद नहीं थी...

(५४) अलग-अलग पत्तेवर वाली अगरबत्तियों की सुगंध में मुझे बहुत मज़ा आया... सुगंध-दुर्गंध में रति-अरति के ऐसे कितने उदाहरण हैं... मुझे तो आत्मा के गुणों की

लोकोत्तर सुगंध में मस्त बनना था। आत्मा के दोषों की लोकोत्तर दुर्गंध में मुँह बिगाड़ना था... पुद्गलों की सुगंध-दुर्गंध में नहीं। पर मैंने यह ध्यान नहीं रखा। और इन छोटे-छोटे पापों के कारण ढेरों पाप कर्म बाँधे। 'यह पाप कहलाता है' यही नहीं माना, यही मेरे जीवन का सबसे बड़ा पाप है... उसका अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं।

अब मैं रस = स्वाद के संबंध में मेरे रति-अरति के पाप को बताऊँगा... यह पाप भी मैंने रोज़-रोज़ किया है। हज़ारों-लाखों बार किया है। जो मिले वह चला लेना, यह तो मेरा स्वभाव ही नहीं। बल्कि जो मुझे पसंद हो वही चलाना। जो पसंद न हो, उसे फेंक देना... ऐसा ही मेरा स्वभाव! इस स्वभाव के कारण मैंने अनेक बार गुस्सा किया है, अनेक लोगों को दुःखी किया है, उसमें भी माँ को तो सबसे अधिक दुःखी किया है।

(५५) बचपन में सादा दूध कभी नहीं पीता था, मीठा ही चाहिए... मुझे कृमि हुए थे इसलिए माँ चीनी के लिए मना करती, पर मैं मानूँ तब न? माँ ज़बरदस्ती पिलाती, तो कष्ट होता। तंग आकर माँ ने चीनी डालकर पिलाया, तो मज़ा आया। उसी तरह बोरनविटा-हॉर्लिल्स में राग किया। वे चीज़ें दूध में डालकर तो पीता ही, साथ-साथ उन्हें अकेले भी चाटता था... उसमें मज़ा आता था।

(५६) रोज़ दोपहर के भोजन में गुड़ तो चाहिए ही, माँ मना करती थी। पर मैं ज़िद करके लेता, और उसमें मज़ा लेता था।

(५७) घर में गेहूँ के आटे की सुखड़ी, मुरमुरे-तिल-मूंगफली की चिक्की... यह सब मेरे लिए माँ बनाकर ही रखती थी, और मुझे वही पसंद आता था। रोटी वगैरह बहुत ही कम... यह सब इतना खाता कि पाँच-सात दिनों में तो सारे डिब्बे खाली हो जाते।

(५८) कभी सुखड़ी में गुड़ कम रह जाता, तो मुझे मज़ा नहीं आता। तुरंत माँ से शिकायत करता 'माँ! गुड़ ज़्यादा डालो न...' वह हँसकर मेरी बात टाल देती...

(५९) स्वामीवात्सल्य आदि में मूँग की दाल का शीरा अनेक बार खाया, उसमें शुरुआत में तो मज़ा आया, पर चीनी + घी ज़्यादा होने से मुँह भर गया, अब शीरा जूठा हो गया था, वहाँ जूठा छोड़ने की मनाही थी। मुझे ज़बरदस्ती बचा हुआ शीरा खाना पड़ा, उस समय भयंकर अरुचि हुई... उलटी जैसा हुआ, फिर भी बड़ी मुश्किल से पूरा किया।

(६०) दोस्त के साथ सबसे ज़्यादा रसगुल्ले खाने की शर्त लगाई थी, होटल में मैंने २५ रसगुल्ले खाए, वहाँ भी यही हालत! शुरुआत में मज़ा और फिर मुँह भर जाने से सज़ा!

(६१) महाराज साहेब! मेरी ज़िंदगी का बड़ा पाप है मांस-अंडे खाना! मित्रों की संगत खराब थी और टीवी पर अंडे के विज्ञापन का मन पर असर हुआ। मैंने आमलेट खाया, चिकन खाया, बीफ खाया... मैं जैन शब्द के लिए बिल्कुल नालायक हूँ। मैं इंसान भी नहीं हूँ। मुझे यह सब बहुत अच्छा लगा। मैंने उसके बाद डोसा भी अंडे के घोल वाला खाया... एक बार मैंने मोबाइल में देखा कि उन पशुओं को कितना भयंकर कष्ट होता है, बस, उसके बाद मैंने यह नॉनवेज छोड़ दिया। बहुत-बहुत मिच्छामि दुक्कंड। मुझे कठोर प्रायश्चित्त दीजिएगा। मैंने हर महीने पाँच आंबिल तो शुरू कर दिए हैं... पर वह तो मैंने खुद अपने पश्चात्ताप के लिए स्वीकार किया हुआ प्रायश्चित्त है। आप ही मुझे सच्चा प्रायश्चित्त दें।

(६२) मैंने सीधे तौर पर नॉनवेज भले ही बंद कर दिया, परंतु नॉनवेज वाले बिस्कुट, चॉकलेट, कैडबरी, आइसक्रीम... यह सब तो बहुत ही रस लेकर खाया है... उनमें नॉनवेज आता है, यह पता होने के बावजूद मैंने अभी तक छोड़ा नहीं है। हाँ! पहले जितना खाता था, उसकी तुलना में तो ५% ही है, पर फिर भी संपूर्ण त्याग तो नहीं ही है।

(६३) मेरे दिमाग में कौन सा भूत सवार हो गया था, यह मुझे पता नहीं... पर कॉलेज के दो साल मैंने रोज़ कम से कम ५० चॉकलेट-कैडबरी खाई हैं। वह भी किस तरह? मैं अपने मुँह में एक च्युइंगम डालता, उसका रस तो निगल जाता, उसके बाद उसी च्युइंगम के साथ चॉकलेट-कैडबरी चबाता... अंत तक च्युइंगम एक ही खाता, और

चॉकलेट-कैंडबरी ५० खा लेता... इस सब में अंडे का रस आता ही था। मेरे दाँत बिगड़ने के डर से माँ बहुत डाँटती, तब तीन-एक दिन ५० की जगह २५ चॉकलेट होतीं, परंतु उससे कम नहीं।

तो मैंने कभी खाया ही नहीं। लेकिन उसके बाद छोटी उम्र में ही दाँत खराब हो गए, भयंकर पीड़ा होने लगी, तो मुझे यह छोड़ना पड़ा। फिर तो अंडे के रस वाली चीजें खाने का भयंकर पश्चाताप भी हुआ। क्योंकि मैंने पंचेन्द्रिय जीवों को खाया। मुर्गियों को इलेक्ट्रिक शॉक दे-देकर कैसे अंडे लिए जाते हैं, और जब वे अंडे देना बंद कर देती हैं, तब उन्हें खत्म कर दिया जाता है... यह सब मेरे ध्यान में आया। अंतर से बहुत-बहुत मिच्छामि दुक्कंडं। जीभ के स्वाद के लिए मैंने जीवों के प्रति कैसी क्रूरता की...

(६४) स्कूल-जीवन में ही मैं बुरे दोस्तों की संगत में पड़कर गलत रास्ते पर चला गया। सिगरेट शुरू की, तम्बाकू-पानपराग-गुटखा शुरू किया, चरस-गांजा-कोकीन शुरू किया, इन सब में वैसे तो कोई स्वाद नहीं था, फिर भी मुझे इसमें मजा आता था। शराब भी मैंने कई बार पी... क्या वर्णन करूँ? म.सा.! मैं नशों के पीछे पागल हो गया, पिताजी के लाखों रुपये उड़ा दिए, माता-पिता की कोई सलाह नहीं मानी। अंत में २२ साल की उम्र में शरीर ने धोखा दे दिया, फिर छोड़ने की इच्छा तो हुई, लेकिन भयंकर लत लग चुकी थी... अंत में, मुझे व्यसनमुक्ति-केंद्र में भर्ती कराया गया। छह महीने की कड़ी मेहनत के बाद मैं इससे मुक्त हुआ। मेरे इस पाप को जिह्वा (इंद्रिय) के पापों में गिनना चाहिए या नहीं? यह पता नहीं। क्योंकि स्वाद से ज्यादा नशा पसंद था। फिर भी, खाने-पीने की वस्तु होने के कारण इसे जिह्वा के पापों में गिना है... बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कंडं।

(६५) आम के प्रति अतिराग किया है। पायरी आदि आमों को चूसना, हापुस आम के टुकड़े खाना, मँगो जूस पीना... जैसे अकाल से आया हुआ व्यक्ति भोजन पर टूट पड़ता है, वैसे ही मैं आम पर टूट पड़ता था। घर पर तो दो-तीन कटोरी रस ही पीने को मिलता

था, लेकिन शादी-ब्याह की दावतों में तो मैं मात्रा की सारी हदें पार कर देता था, १०-१२-१५ कटोरी तक पी जाता था। जान-बूझकर दूसरों के साथ शर्त लगाता, जिससे शर्त के बहाने ज्यादा पीने को मिले। बिना शर्त पीने में थोड़ी शर्म आती थी। शिविरों में गया तो वहाँ भी आम पर टूट पड़ता था। कई बार उनके यहाँ रस कम पड़ जाता था। प्रवचन में सुना कि 'दावतों में तो आम के रस में कच्चा दूध मिलाते हैं, और फिर उसे दाल आदि के साथ खाया जाता है, जिससे द्वीन्द्रिय जीवों की विराधना होती है...' लेकिन मैंने इन सब बातों को गौण कर दिया... नहीं माना... और खाता ही गया...

एक बार माता-पिता के साथ किसी के घर गया, तो वहाँ और कुछ नहीं खाया, सिर्फ आम के टुकड़े ही खाए, तो उन लोगों ने कहा कि 'अरे, तुम ही सारे आम खा जाओगे, तो दूसरों को क्या मिलेगा?...' तब मेरी इज्जत उतर गई, मुझे बुरा भी लगा। मम्मी बोलीं 'यह है ही ऐसा...' यह सब मैंने अनुभव किया, फिर भी आम छोड़ दूँ, ऐसा मैं तो नहीं था।

आर्द्रा नक्षत्र के बाद भी मैं आम खाता था, मम्मी ने बहुत मना किया, पर मैं नहीं माना। एक बार तो उस आम के रस में सफेद रंग के पंद्रह-बीस कीड़े हो गए, उन्हें बिलबिलाते देखकर मैं घबरा गया। बस, उसके बाद मैंने आर्द्रा के बाद आम खाना छोड़ दिया। लेकिन राग तो नहीं ही गया। हाँ! खट्टे आम, गले हुए आम, फीके आम, खराब आम... इन सबके प्रति मुझे अरुचि भी हुई है। मन बहुत खराब हुआ है। ऐसा रस मैंने फेंक दिया है, गटर में डाल दिया है... यह है मन की विचित्रताएँ!...

(६५) बासी थेपले, भाखरी सुबह चाय के साथ खाने में बहुत अच्छे लगते थे। तो बासी होने के बावजूद मैं उन्हें राग से खाता था। और ब्रेड तो वैसे भी अभक्ष्य ही है। फिर भी वह बहुत अच्छी लगने के कारण खाता था और दूसरे दिन सुबह नाश्ते में भी स्वाद से खाता था। ऐसा तो सैकड़ों बार किया है।

(६७) पिज्जा, मंचूरियन, नाचोस, पंजाबी डिश, साउथ इंडियन डिश... ये सभी चीजें होटल में अभक्ष्य ही होती हैं, बासी होती हैं। जयणा के बिना होती हैं, यह सब पता होने के

बावजूद मैंने बहुत राग से इन चीजों का सेवन किया और करवाया। ऐसी तो ढेरों चीजें हैं, कितना लिखूँ?... कोई भी नई चीज़ बाज़ार में आती, तो उसे एक बार तो चखना ही है, ऐसी आसक्ति मुझमें पड़ी हुई थी। उसमें भी जिस होटल में वह चीज़ सबसे अच्छी बनती हो, उसी होटल में जाकर खाना... ऐसा पागलपन मुझमें था...

(६८) फ्रूट जूस भी उसी तरह अतिराग के साथ पिए। साथ में कोल्डड्रिक्स और कोको भी मैंने बहुत राग से पिए। सूरत का कोको इतना पसंद था कि सूरत जाता, तब तो पीता ही... साथ में उसका पाउडर ले आकर घर पर भी बनवाता... थम्सअप में मुझे सबसे ज्यादा राग होता था।

(६९) १५-१७ साल की उम्र में लस्सी की आसक्ति लग गई थी। एक डेयरी में अत्यंत स्वादिष्ट लस्सी मिलती थी, मैं हर रविवार को वहाँ जाकर तीन-तीन गिलास लस्सी पीता था।

(७०) बंगाली मिठाइयों के पीछे मैं पागल था। रसमलाई, मलाई सैंडविच, गुलाबजामुन... यह सब मैं अकेला ही दस लोगों जितना खा जाता था। अत्यंत तीव्र राग के साथ खाता था। मुझे इन सब में कभी पाप नहीं लगा, मानव-जन्म मिला है, तो बस, मजे कर लेने हैं... भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय... ऐसा कुछ मैंने देखा नहीं। बस, मुझे जो अच्छा लगा वह खाया-पिया, और बाकी छोड़ दिया, मोक्ष के लिए मिला यह मानव-जन्म मैं मिठाई खाने में ही बिताता गया...

(७१) सूखी सब्जी मुझे बिल्कुल पसंद नहीं थी, मम्मी धार्मिक होने के कारण अष्टमी-चौदस के दिन मूंग-चौलाई-गट्टे-पापड़-बड़ी... ऐसी सब सब्जियाँ बनातीं, उस समय मैंने अरुचि से ही उसे खाया है। मम्मी के सामने मेरा कुछ चलता नहीं था। और मुझे मम्मी की धार्मिक भावनाओं को ठेस भी नहीं पहुँचानी थी।

(७२) एक बार एकासणा में जूठी थाली में चार पूरनपोली तो ले लीं, लेकिन जब खाई, तब पता चला कि वे तो एकदम फीकी थीं, चीनी डालना रह गया था, मैंने ऊपर से चीनी छिड़की, लेकिन अंदर एकसार न होने के कारण मुझे उसमें मजा नहीं आया... अरुचि के साथ उसे खाया।

(७३) मुझे गर्मी हो गई थी इसलिए मम्मी ने मुझे चिरायता पिलाया, उसमें सख्त अरुचि हुई। यह मुझे आज भी कई बार पीना पड़ता है। लेकिन हर बार मुँह बिगाड़कर ही पिया है।

(७४) मनपसंद सब्जी ले तो ली, लेकिन उसमें अत्यंत तीखी हरी मिर्च आ जाने से चीख निकल गई... बड़ी मुश्किल से मिर्च खाई... ऐसा तो कई बार हुआ है।

(७५) मुझे दही बहुत पसंद है। लेकिन कई बार ऐसा हुआ कि लस्सी, कढ़ी आदि मैंने बहुत आसक्ति से लिए, पर उन्हें चखने के बाद पता चला कि 'वे तो अत्यंत खट्टे हैं।' तो फिर अरुचि के साथ मैंने उन्हें खाया... उसी तरह गलत पतेवड़ी (दहीवड़ा) भी अरुचि से खाई। कई बार चटनी आदि में नींबू ज्यादा होने से वह अधिक खट्टी थी, तब भी अरुचि के साथ ही खाई...

(७६) तुरई, करेले की सब्जी वैसे तो मुझे पसंद है, लेकिन कई बार वे कड़वे निकले, तब अरुचि हुई... कभी-कभी खीरा भी कड़वा निकला, तब अरुचि हुई।

(७७) पानी के मामले में भी मैंने इतने नखरे किए हैं कि पूछो मत... पालिताणा आदि जगहों का पानी मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आता था, तो वहाँ मुँह बिगाड़कर ही पानी पिया है। ज्यादातर तो मिनरल वाटर की बोतल आदि ही खरीद ली है। गाँव जाता था, तब भी मुझे मेरे गाँव का पानी बिल्कुल पसंद नहीं था। तो उस समय भी अरुचि के साथ इस्तेमाल किया है। फिर तो एक्वागार्ड-आरओ प्लांट लगवा दिया, तो पसंद का पानी मिलने लगा था...

(७८) घर में, शादी-ब्याह के प्रसंगों में जब तक अच्छा लगा, तब तक खाया, और जब इच्छा मर गई, तब वह जूठा खाना वैसे ही छोड़ दिया, फेंक दिया। म.सा.! तीखा + खट्टा + मीठा + कड़वा + कसैला + नमकीन... मुख्य रूप से ये छह प्रकार के स्वाद होते हैं। मैं संक्षेप में आपसे कहता हूँ कि ये छह स्वाद जिन-जिन वस्तुओं में मुझे अच्छे लगे हैं, वे-वे वस्तुएँ मैंने राग से खाई हैं, और जिन-जिन वस्तुओं में मुझे अच्छे नहीं लगे, और फिर भी मुझे वे वस्तुएँ खानी पड़ीं, तो मैंने अरुचि से खाई हैं। और ऐसे एक-एक प्रसंग लिखने जाऊँ, तो हजारों प्रसंग हो जाएँगे... और दूसरी बात... जिसमें रति होती थी, उसमें भी हमेशा रति नहीं होती थी। एक निश्चित मात्रा में सेवन करने के बाद उसमें फिर अरति भी शुरू हो जाती थी। और कोई अधिक अच्छी वस्तु मिल जाए, तो कम अच्छी वस्तु में अरति शुरू हो जाती थी। इन सभी स्वाद-संबंधी रति-अरति का मिच्छामी दुक्कडं।

(७९) एक बार सिर्फ एक कॉफ़ी मैंने ६०० रु. की पी थी।

(८०) एक बार १५०० रु. की एक डिश मैंने खाई थी...

अब मैं अपनी स्पर्श संबंधी रति-अरति आपको बताऊँगा... स्पर्श आठ हैं! शीत + उष्ण + स्निग्ध + रूक्ष + मृदु + कर्कश + गुरु + लघु... इन आठ स्पर्शों में मुझे जो रति-अरति हुई है, वह मुझे आपको बतानी है...

(८१) गर्मियों के दिनों में A.C. में मुझे बहुत आनंद आया। गर्मियों में कश्मीर आदि हिल स्टेशनों पर घूमने गए, तब भी मुझे बहुत मजा आया। बाहर गर्मी से जब घर में A.C. में आना होता, तब राहत मिलती। दोपहर में शॉपिंग के लिए निकले हों, और A.C. वाली दुकान में प्रवेश करूँ तो राहत मिलती। गर्मियों के दिनों में मेरा यह अनुभव स्थायी रहा कि दोपहर बारह से चार के दौरान A.C. के बिना बाहर के माहौल में अरति-त्रास, और बेडरूम, दुकान, मॉल, थिएटर... इन सभी स्थानों में प्रवेश करते ही रति-मजा... ऐसे मानसिक सूक्ष्म पाप मैंने किए।

(८२) गर्मियों में ऑफिस से घर आने के बाद रात में मैं ठंडे पानी से स्नान करता, उसमें मुझे बहुत मजा आया। कभी फुहारे में, कभी बाथटब में तो कभी यँ ही... लेकिन वह स्नान मुझे एकदम खुशी देता था। इसी तरह, रविवार के दिनों में स्विमिंग पूल के ठंडे पानी में नहा-नहाकर मजा लिया... रात में छत पर सोकर वहाँ की ठंडी हवा में मजा किया...

(८३) सर्दियों के दिनों में सब कुछ विपरीत था, यदि हाथ या पैर रजाई-कंबल से बाहर रह गया, तो सख्त ठंड लगने से मुझे अरति हुई। कभी-कभी अत्यधिक ठंड होने के कारण पूरा शरीर रजाई से ढका होने के बावजूद काँपना पड़ा, उस समय भी मुझे अरति होती ही थी।

(८४) चाय थोड़ी ठंडी हो गई, तो मुझे अच्छी नहीं लगी, कभी मन खराब करके पी, तो कभी फेंक दी...

(८५) सर्दियों में मुझे रोटी-सब्जी आदि गरमागरम ही पसंद थे, लेकिन कुछ बार वे ठंडे खाने पड़े। (सफर में / जब मैं घर देर से पहुँचा / जब मम्मी-पत्नी अंतराय में थीं, तो भाभी के यहाँ से टिफिन आया तब...) उस समय अरुचि हुई...

(८६) गर्मियों के दिनों में बिजली चली गई, और गर्मी में सिंकना पड़ा, भरी दोपहर में बाजार में घूमना पड़ा... इन सभी मौकों पर अरति हुई।

(८७) गर्मी में कोल्डड्रिंक, फ्रिज के पानी, आइसक्रीम की ठंडक... इन सभी ठंडे स्पर्शों में मुझे बहुत ही आनंद आया। मेरी विचित्रता तो देखिए, मुझे सिर्फ ठंडा स्पर्श ही पसंद है या सिर्फ गर्म स्पर्श ही पसंद है, ऐसा तो है ही नहीं। बल्कि किसी खास समय में, कुछ चीजों का ठंडा स्पर्श अच्छा लगता है, और किसी खास समय में, कुछ चीजों का गर्म स्पर्श अच्छा लगता है... मेरी यह आत्मा चंचलता का महाराजा है! हमेशा हर वस्तु में गर्म ही स्पर्श अच्छा लगे या ठंडा ही स्पर्श अच्छा लगे, ऐसा तो है ही नहीं। सर्दियों में

गरमागरम चाय पीने वाला मैं, उस समय पानी तो ठंडा ही पीता था... गुनगुना या वॉर्म भी नहीं... यह मन कितने नाटक करता है! इस नटखट के अधीन होना ही नहीं चाहिए। लेकिन मैं इस नटखट मन के अधीन होकर रति-अरति नामक दो नृत्य किए ही जा रहा हूँ...

(८८) मुलायम-मुलायम गद्दे पर बैठना-सोना अच्छा लगा। कड़े कंबल पर सोना अच्छा नहीं लगा। उपधान में संथारे पर सोने में मुझे बिल्कुल मजा नहीं आता था। सब कुछ शरीर को कष्ट देता था...

(८९) छ'री पालित संघ में टेंट में संथारा किया, खेत की जुती हुई ऊबड़-खाबड़ जमीन पर सोने में भयंकर कष्ट हुआ। नीचे कंबल तो बिछाया था, लेकिन जमीन की ऊँचाई-निचाई ने मुझे ऊँचा-नीचा कर दिया। वे बारह दिन याद करता हूँ तो भी मन परेशान हो जाता है। उसके बाद छ'री पालित संघ में यात्री के तौर पर जाने का मैंने विचार ही त्याग दिया..

(९०) खाखरा-मुरमुरे-चिवड़ा... ये सब चीजें सील गईं, नरम पड़ गईं, कुरकुरी नहीं रहीं... तो उन्हें खाने में मजा नहीं आया। सूखा नाश्ता तो कुरकुरा ही अच्छा लगता है न! और रोटी कभी थोड़ी जलकर कड़ी हो गई, तो वह भी अच्छी नहीं लगी। क्योंकि वह तो मुलायम ही चाहिए न! कभी पोहा एकदम सूखा था, कच्चा था, नरम नहीं था, थोड़ा कड़ा था... तो उसमें अरति हुई...

(९१) स्वामीवात्सल्य में पूड़ियाँ कच्ची रह गईं, उन्हें हाथ से या दाँत से तोड़ने में तकलीफ होती थी, तो उसमें भी मुझे अरति हुई।

(९२) काँटे चुभे, कभी कील चुभी, कभी लकड़ी की फाँस चुभ गई, चमड़ी में उतर गई। चीख निकल गई। उस काँटे और लकड़ी की फाँस को निकालने के लिए चमड़ी में सेफ्टीपिन से कुरेदना पड़ा। उसमें भी सख्त पीड़ा हुई। बीच-बीच में चीखें मारीं। और

उसी समय प्रभु के कानों में ठोकी गई दो कीलें याद आ गई, नरक के दुःखों का वर्णन याद आ गया... यह सब याद आने से प्रभु के प्रति सद्भाव बढ़ा, नरक आदि का डर बढ़ा... लेकिन उस समय अरति को तो रोक नहीं सका।

(९३) रसगुल्ले एकदम सॉफ्ट थे, तो मजा आया... लेकिन जब मम्मी ने घर पर बनाए, तब वे सॉफ्ट नहीं थे। चाशनी भी अंदर ठीक से नहीं गई थी, मुँह में टुकड़े-टुकड़े आ रहे थे, जैसे कि पनीर हो... उस समय अरुचि हुई... उन रसगुल्लों पर भी और मम्मी पर भी।

(९४) दावत में खीरे की सब्जी कच्ची रह गई थी, तो उसे खाने में अरुचि हुई।

(९५) सेंके हुए पापड़ को हवा लग गई थी, तो खाते समय अरुचि हुई, क्योंकि वे कुरकुरे नहीं थे।

(९६) कश्मीर में बर्फ के गोले बनाकर एक-दूसरे पर फेंकने का खेल खेला। वहाँ तो कुचली हुई बर्फ जैसी बर्फ पड़ी होती है, उस बर्फ का स्पर्श मुझे बहुत ही अच्छा लगा। हाथ से लेकर अपने गाल पर फेरा।

(९७) रोएँदार तौलिए बाजार में पहली बार स्पर्श करते ही बहुत पसंद आ गए। क्योंकि वे एकदम मुलायम थे... और फिर रोज स्नान के बाद उनका उपयोग करते समय आनंद आया। उसी तरह रोएँदार कंबल, मुलायम-मुलायम चादरें... उन सबके लिए रति हुई। मुलायम सोफे, गद्दे, तकिए, इन सभी के उपयोग में रति का अनुभव हुआ। बचपन में सॉफ्ट तकियों से मारपीट करने में भी बहुत मजा आया।

(९८) पत्नी के मुलायम-चिकने बालों का स्पर्श अत्यधिक पसंद आया। कई बार उन बालों को हाथ में लेकर खेला, अपने चेहरे पर फेरकर उस स्पर्श का आनंद लूटा। मेरे इस तुच्छ सुख को पोषित करने के लिए पत्नी ने अंडे के रस से बाल धुलवाए, ट्रीटमेंट लिया और एकदम चिकने-चिकने बाल बनाए रखे। यह भयंकर पाप उसने किया और उसमें निमित्त तो मैं ही बना।

(१९) बच्चे के दोनों गाल फूले हुए थे, इसलिए मुलायम थे, उन्हें स्पर्श करने में और उन्हें खींचने में मुझे बहुत मजा आया। आज लगता है कि कैसी तुच्छताएँ पड़ी हैं मुझमें! पुद्गलों के पीछे का यह पागलपन कब जाएगा? यह तो भगवान ही जानें।

(१००) छपी हुई पुस्तकों पर कई बार अक्षरों को एम्बॉस किया गया होता है, उन उभरे हुए रंगों को हाथों से स्पर्श करने में मुझे आनंद हुआ। वह आनंद पाने के लिए ही तो मैंने स्पर्श किया था, वरना उन पर हाथ फेरने की जरूरत ही क्या थी?

(१०१) बाइक-स्कूटर के रोएँदार रेक्सीन के कवर का स्पर्श कई बार किया, उसके ऊपर बैठने का मजा भी बहुत आया।

(१०२) नई कार ली, उसे कई बार हाथ से स्पर्श किया, उसका चिकना स्पर्श पसंद आया। कार की सीट पर चमड़े के कवर का कोमल स्पर्श भी अत्यंत पसंद आया। कई बार उसे हाथ से स्पर्श किया। उस पर हाथ फेरा।

(१०३) पशुओं के असली चमड़े से बने पर्स, बटुए, चप्पल, जूतों का स्पर्श मुझे बहुत पसंद आया। ऐसी चीजें मैंने पत्नी को उपहार में भी दीं। 'यह सब बनाने के लिए पशुओं को जीवित रखकर ही उनके शरीर की चमड़ी उतार ली जाती है... या फिर उन्हें मारकर चमड़ी ली जाती है...' इस बात पर मैंने कभी ध्यान नहीं दिया। यह पता चलने पर भी मैंने इसकी उपेक्षा की। बिल्कुल अनावश्यक वस्तुओं के लिए, सुखों के लिए, घोरातिघोर पाप करते हुए भी मेरी आत्मा रुकी नहीं। मेरी आत्मा को वे पाप बुरे लगे ही नहीं, यही उसकी सबसे बड़ी विचित्रता है।

(१०४) पत्नी मेरे सिर पर, माथे पर, प्रेम से हाथ फेरती। वह मुझे बहुत अच्छा लगता था... और वह रति मैंने अनेकानेक बार अनुभव की। (अब्रह्म का सुख स्पर्श का ही आनंद है, लेकिन उसका सारा वर्णन चौथे पाप में आ चुका है, इसलिए उसका वर्णन अभी नहीं कर रहा हूँ।)

(१०५) सिल्क के कपड़ों में रुचि हुई, और कुछ कपड़ों में अरुचि हुई, उनका स्पर्श पसंद नहीं आया।

(१०६) मम्मी ने मुझे बताया था कि जब मैं एकदम छोटा था, तब दादा-दादी अगर मुझे उठाते, तो मैं रोता था... और मम्मी उठातीं, तो मैं शांत हो जाता था... इसका कारण यह था कि दादा-दादी के हाथ खुरदरे थे, माँ के हाथ मुलायम थे... इसलिए उनके हाथों में मैं रोता था। यह भी अरति ही थी। अनादिकाल के संस्कारों के कारण अशुभ स्पर्शों में अरति का भाव उत्पन्न हो ही जाता था... अंतर से मिच्छामी दुक्कंड।

(१०७) मुझे घर में कुत्ता पालना था, उसमें एक बड़े कुत्ते के शरीर पर बिल्कुल रोएँ नहीं थे। मुझे उसका स्पर्श पसंद नहीं था। और एक छोटे कुत्ते के शरीर पर बहुत रोएँ थे, तो मुझे उसका स्पर्श पसंद था... तो मैंने उसे ही खरीदकर पाला। और उसके बाद रोज उसे प्यार करते समय उन रोओं पर हाथ फेरकर स्पर्श का आनंद लेता।

(१०८) गाँव जाते समय पापा ने मुझे एक बैग उठाने को दिया, उसके भार के कारण मुझे अरति हुई। हालाँकि उतना ज्यादा भार था ही नहीं। लेकिन मैंने कोई भी दुःख सहन करने का अभ्यास ही नहीं किया था। छोटे से दुःख का भी प्रतिकार ही करना मैंने अपना स्वभाव बना लिया था। मैंने पापा से शिकायत की, तो पापा ने डाँटकर हल्का सामान उठाने को दिया, तब मुझे राहत हुई।

(१०९) कभी-कभी घर में पानी न आने पर नीचे से पानी की बाल्टी भरकर घर लाना पड़ता था... उस भार को उठाने में अरति हुई। लेकिन उसमें कोई चारा ही नहीं था। दरअसल, पहले जहाँ रहते थे, वहाँ पानी की समस्या थी ही... इसलिए ऐसा होता था। हफ्ते में एक-आध बार तो मुझे यह भार उठाना ही पड़ता था।

(११०) बेटा तीन-चार साल की हो गई होने के बावजूद वह कई बार खुद को उठाकर ही चलने की जिद करती। मेले में, सर्कस में, शॉपिंग में, घूमने गए हों तब... इन सभी

परिस्थितियों में उसे ज्यादा चलने में थकान लगती, तो वह मेरे सामने हाथ फैलाकर रोने जैसी सूरत बना लेती। उसे पता था कि वह मेरी बहुत लाडली है, इसलिए मैं उसे दुःखी नहीं करूँगा...’ लेकिन अब उसका वजन भी काफी था। उसे उठाकर चलने में पसीना आ जाता। मैं पत्नी से कहता, तो वह तो मुझे ही सुनाती कि ‘आपने ही उसे ज्यादा लाड़ करके सिर पर चढ़ाया है। अब आप ही उसे उठाइए। मैं नहीं उठाने वाली...’ अंत में मुझे ही उसे उठाकर चलना पड़ता, लेकिन उस समय उसके वजन के कारण मुझे अरति तो निश्चित रूप से होती ही थी...

(१११) कई बार शॉपिंग के बाद वजन बहुत बढ़ जाने पर उठाकर चलने में अरति का अनुभव स्पष्ट हुआ।

(११२) पहले घर पर गैस सिलेंडर लाने पड़ते थे, उसके लिए खाली देना और भरा हुआ लेना... उस सब में वजन के कारण अरति होती थी।

(११३) स्कूल के दिनों में मेरे बस्ते का वजन इतना होता था...

सब कुछ इतना बढ़ जाता कि चलते समय मेरी कमर झुक जाती... तब बहुत पीड़ा होती। जब स्कूल-बैग शरीर से उतारकर बेंच पर रखता, तब राहत मिलती। जब शनिवार को आधे दिन का ही स्कूल होता, तब बैग का वज़न आधा हो जाता, उस समय मुझे राहत मिलती... इस प्रकार, वज़न को लेकर रति-अरति के चक्कर चलते ही रहे...

(११४) १७-१८ वर्ष की आयु में जंक फूड के कारण मेरा शरीर भयंकर रूप से फूल गया। मुझे खड़े होने और चलने में मेरे अपने ही वज़न के कारण पीड़ा होती थी। अंत में जंक फूड बंद कर दिया। दवा की, वापस पहले की तरह दुबला हो गया, और मुझे राहत मिली।

(११५) उपधान में पहले मेरे पास जो चरवणी था, उसकी डंडी मेटल की और मोटी थी, उसमें रेशे भी बहुत थे... इसलिए वह बहुत भारी लगता था, उसे उठाने में मुझे अरति होती थी। दो-तीन दिन में ही मैंने पतली डंडी वाला और कम रेशों वाला चरवणी ले लिया, वह वज़न में एकदम हल्का होने के कारण रति हुई।

(११६) घर के बाहर के पायदान पहले खुरदुरे-कड़े थे, तो वे अच्छे नहीं लगते थे। फिर बाज़ार से मुलायम ले आए, और उसका स्पर्श मुझे अच्छा लगने लगा।

(११७) साबुन-शैम्पू के झाग का स्पर्श मुझे बहुत पसंद था। मैं पानी में साबुन-शैम्पू से झाग बनाता, फिर वे सफ़ेद-सफ़ेद झाग अपने मुँह और शरीर पर लगाता। उसमें मुझे मज़ा आता। बाथटब में साबुन के झाग से भरे पानी में भैंस की तरह पड़े रहने में भी मुझे एक अनोखा आनंद आता था।

(११८) कई बार अनाज पिसवाने के लिए ले जाना होता और पिसा हुआ आटा वापस घर लाना होता, तब उसे उठाने में ज़्यादा वज़न के कारण अरति होती ही थी...

(११९) होशियारी दिखाकर भारी वज़न वाली बाइक ले तो ली, लेकिन फिर वह वज़न मेरा शरीर सह नहीं पाता था। उस बाइक को स्टैंड पर चढ़ाने की भी मेरी ताक़त नहीं थी। मैं परेशान हो गया, फिर अभिमान छोड़कर वह बाइक बेच दी और कम वज़न वाली एक्टिवा ले ली। लेकिन इस वज़नदार बाइक के कारण अनेक बार अरति हुई।

(१२०) लिखने की नोटबुक के कागज़ खुरदुरे होने के कारण पसंद नहीं आए, वह नोटबुक रद्द करके चिकने कागज़ वाली महंगी नोटबुक लाया, उसके कागज़ों का स्पर्श बहुत अच्छा लगा। उसकी सफ़ेदी देखकर भी आनंद हुआ। पुरानी नोटबुक का रंग भी एकदम फीका था।

(१२१) पाँच इंद्रियों के अलावा छठी इंद्रिय मन की रति-अरति भी बता दूँ... पूरी ज़िंदगी में आज तक हज़ारों बार मैंने अनेक मामलों में प्रशंसा पाई है। और छोटी या बड़ी हर

प्रशंसा के समय मेरा मन प्रसन्न हुआ है... और उसी तरह हजारों बार मेरी छोटी-बड़ी निंदा हुई है। मेरी छोटी-बड़ी गलतियाँ निकाली गई हैं। उन गलतियों के लिए मुझे टोका गया है। मेरा मज़ाक उड़ाया गया है, मुझे नीचा दिखाया गया है। मेरा अपमान किया गया है, हर उस अवसर पर मेरे मन को दुःख हुआ है। मैं अपनी गलतियों को प्रसन्नता के साथ स्वीकार नहीं कर पाया। इस तरह प्रशंसा + निंदा में रति + अरति मैंने हजारों बार की है।

(१२२) जब-जब किसी ने मुझसे प्रेम किया, तब-तब मैं खुश हुआ हूँ। और जब-जब किसी ने मुझसे प्रेम नहीं किया, मुझसे घृणा की, वात्सल्य नहीं बरसाया, तब-तब अरति को प्राप्त हुआ हूँ।

(१२३) मेरी बात जब-जब दूसरे ने मान ली, तब-तब मैं रति को प्राप्त हुआ हूँ, और मेरी बात जब-जब दूसरों ने नहीं मानी, अनसुनी कर दी, तब-तब मैं अरति को प्राप्त हुआ हूँ। यश + सौभाग्य + आदेयता में रति और अपयश + दुर्भाग्य + अनादेयता में अरति मैंने हजारों बार की है।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१६ : परपरिवाद

दूसरे के गुण-दोषों का छिटपुट वचन, यह परपरिवाद नामक सोलहवाँ पापस्थान है। इसका अर्थ मुझे एकदम स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आया है। मेरे क्षयोपशम के अनुसार मैं इसे इस प्रकार समझा हूँ कि (A) दूसरे के गुण बोलते-बोलते उसके दोष भी बोल देना... (B) अभ्याख्यान यानी सार्वजनिक रूप से दूसरे के असत् दोषों का कथन, पैशुन्य यानी निजी तौर पर दूसरे के असत् दोषों का कथन... तो परपरिवाद में बाक़ी

क्या रहा? शायद ऐसा हो सकता है कि दूसरे के असत् दोषों का कथन जैसे पाप है, वैसे ही दूसरे के सत् = विद्यमान दोषों का कथन भी पाप ही है। पराई पंचायत क्यों करनी? सत् दोषों का कथन पुण्य नहीं बन जाता। इसलिए ऐसा हो सकता है कि दूसरे के सत् दोषों का निजी या सार्वजनिक रूप से कथन ही परपरिवाद है!

इसमें (B) अर्थ के लिए तर्क तो मैंने आपको बता दिया है। अब (A) अर्थ के लिए भी तर्क सोच लेते हैं। स्वर्गस्थ पूज्य आचार्य प्रद्युम्नसूरिजी ने मुझसे कहा था, 'यावत्परगुणदोषपरिकीर्तने व्यावृत्तं मनो भवति । तावद् वरं विशुद्धध्याने मनः स्थातुम् ।' इस प्रशमरति के श्लोक का अर्थ यह है कि 'जितने समय मन दूसरों के गुणों और दोषों के कीर्तन में लगा रहता है, उतने समय उस मन को विशुद्ध ध्यान में लगाए रखना बेहतर है...' यहाँ दूसरों के दोषों के कीर्तन में मन का लगना तो बुरा ही है। लेकिन दूसरों के गुणों में मन का लगना अच्छा होने के बावजूद, उससे बेहतर विशुद्ध ध्यान में मन को लगाना है। इसके दो कारण हो सकते हैं: एक यह कि परगुणकीर्तन अच्छा होते हुए भी 'पर' से संबंध रखता है, जबकि विशुद्ध ध्यान केवल आत्मा से संबंध रखता है, इसलिए काफ़ी अंतर आ जाता है। और दूसरा यह कि दूसरों के गुणों का कीर्तन करते-करते जीव अनादिकाल के स्वभाव के कारण दूसरों के दोषों के कीर्तन में भी लग ही जाता है। यानी अच्छा काम करते-करते बुरा काम करने लगता है... इसके बजाय केवल स्व-आत्मा का विशुद्ध ध्यान धरे, वही श्रेष्ठ है।

पूज्यश्री के इस चिंतन के आधार पर मुझे ऐसा लगता है कि (१) दूसरों के गुण बोलते-बोलते उसके दोष भी याद आ जाएँ और हम उसके दोष भी बोलें, वह है परपरिवाद! (२) और दूसरे अर्थ के अनुसार, दूसरों के विद्यमान दोषों का सार्वजनिक या निजी रूप से कथन, वह है परपरिवाद!

नंबर १ का अर्थ इस प्रकार 'विप्रकीर्ण' अर्थात् छिटपुट, ऐसे भगवतीवृत्ति के अर्थ का अनुसरण करता है। कभी गुण बोलना, कभी दोष बोलना... इस तरह निरंतर गुणों या

निरंतर दोषों का वर्णन नहीं है, बल्कि गुणों और दोषों का बिखरा हुआ वर्णन है। मैं इन दोनों अर्थों के आधार पर अपने जीवन में जो-जो परपरिवाद के पाप हुए हैं, उनका वर्णन करने का प्रयास करूँगा। उसमें भी गुण के साथ दोष के कीर्तन में सद्-दोष का कीर्तन आ ही जाता है। इसलिए (A) में (B) तो है ही। और अकेले सत् दोषों का कीर्तन होगा, वह (B) है, उसमें (A) नहीं आएगा।

सार : गुण के साथ सद्-दोष का कीर्तन परपरिवाद है! (निजी या सार्वजनिक रूप से)

गुण के बिना सद्-दोष का कीर्तन परपरिवाद है! (निजी या सार्वजनिक रूप से)

(१) हम सात मित्र थे। साथ ही खेलते, घूमते, मस्ती करते। एक बार एक मित्र की अनुपस्थिति में उसके बारे में चर्चा चल रही थी, तब मैंने कहा कि 'वह पाठशाला में बहुत अच्छा पढ़ता है। घर के संस्कार भी अच्छे हैं। हमारे किसी भी काम के लिए जी-जान से तैयार रहता है...' यह बोलते-बोलते मुझे उसका एक दोष याद आ गया, मुझे उसके गुणों के वर्णन में उस दोष का वर्णन करना ही नहीं चाहिए था। परंतु मैंने कर दिया... मैं बोल पड़ा 'बस, चाँद में दाग़ की तरह उसमें एक दोष है। वह है कंजूसी! वह पैसे निकालने के मामले में बहुत कंजूस है। हमारे लिए तन-मन-वचन से खप जाएगा, लेकिन थोड़ा भी धन हमारे लिए खर्च करने की बात आए, तो बहाना बना ही लेगा। अपने जन्मदिन के अवसर पर आज तक उसने कोई पार्टी नहीं दी है। अरे, अपने लिए भी पैसे खर्च करते हुए उसका दम निकल जाता है, तो दूसरों की तो क्या बात करें?' इस तरह, अनेक प्रकार से उसकी कंजूसी के दोष का वर्णन किया। मेरी बात ग़लत नहीं थी, पर मुझे उसके दोषों का बख़ान क्यों करना था? उसकी ज़रूरत ही कहाँ थी? किसी का भी केवल गुणानुवाद करना वास्तव में बहुत ही कठिन है...

(२) हम एक म.सा. के प्रवचन के मुरीद बन गए थे। अनेक बार उनके प्रवचनों के बारे में बातें करते थे। एक बार मैंने कहा, 'उनके प्रवचन तो मुर्दे को भी खड़ा कर दें ऐसे हैं। अच्छे-अच्छों का खून खौला देते हैं। आज के समय में ऐसे ही प्रवचनों की ज़रूरत है...

बस, उन म.सा. का स्वभाव थोड़ा गुस्सैल है। कभी-कभी कुछ भी शब्द बोल देते हैं, श्रोताओं को आघात लग जाता है, और उसमें भी जब वे व्यक्तिगत रूप से किसी को कुछ कहते हैं, तब तो उस व्यक्ति पर बहुत भारी पड़ता है। कल अध्यक्ष को डाँट दिया था कि 'आप अध्यक्ष होकर प्रवचन में ऊँघते हैं...' यह बिल्कुल उचित नहीं था... पर ठीक है! हर किसी में कुछ न कुछ दोष तो रहते ही हैं। बाक़ी उनका शासनप्रेम गज़ब का है।' इस तरह मैंने उनके गुण-दोष-गुण का गान किया।

(३) मैंने अपने चचेरे भाई-बहनों से कहा, 'मेरे घर में तो मम्मी का ही राज चलता है। पापा तो बेचारे कुछ बोल ही नहीं सकते। मम्मी जैसा कहती हैं वैसा ही वे करते हैं, हमसे करवाते हैं। ऐसा ही लगता है कि पापा मम्मी से डरते हैं... पर हाँ! पापा का प्रेमपूर्ण स्वभाव हम सबका दिल जीत लेता है, रोज़ घर पर बाज़ार से कुछ न कुछ खाने की चीज़ ले आते हैं, हम सबको खिलाते हैं... सबकी देखभाल करते हैं, पर उसमें भी फिर मम्मी का आदेश आ जाए कि 'आपको आज कुछ नहीं लाना है,' तो गुलाम बनकर काम करते हैं... भगवान ने मेरे पापा को कैसा गढ़ा है, मुझे पता ही नहीं चलता...' इस तरह मैंने अपने पापा के ही दोष-गुण-दोष का गान किया। पापा के दोष बोलने के लिए मिच्छामी दुक्कड़।

(४) मम्मी का स्वभाव मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था, क्योंकि वे इंदिरा गांधी की तरह एकदम सख्ती से काम करती थीं। उसमें भी वे पापा को बार-बार धमकातीं, आदेश देतीं। गुलाम जैसा व्यवहार करतीं... वह तो मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। मैंने नाना-नानी से कई बार आवेश में आकर कहा कि 'मम्मी ऐसा-ऐसा करती हैं...' वे मुझसे कहते कि 'वह बचपन से ही ऐसी है। पर उसके मन में तुम सबके लिए बहुत स्नेह है।' तब मैं बोला कि 'हाँ! बीच में पापा बीमार पड़े, तो वह दिन-रात उनकी सेवा करती। उसमें ज़रा भी कमी नहीं आने देती। पर उसमें भी वह अपनी दादागीरी नहीं छोड़ती, पापा ज़रा कुछ कहने जाते, तो तुरंत धमकाती, 'मैं' जैसा कहती हूँ, वैसा आप करो। आपको दूसरी कोई ख़बर तो पड़ती नहीं।' और पापा चुप हो जाते। इस तरह मैंने नाना-नानी के

सामने मम्मी के दोष गाए, और साथ में कुछ गुण भी गाए। मम्मी के दोष बोलने के लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(५) स्कूल में हम दस-एक सहपाठी प्रिंसिपल के पास गए। 'सर! हमें अपने क्लासटीचर के बारे में बात करनी है। सर! वे बहुत अच्छा पढ़ाते हैं, और हम सब अच्छी तरह से पास हों, यही उनकी भावना है। परंतु सर! वे सबको फुट्टे से मारते हैं, कभी कोई होमवर्क किए बिना आए तो पूरा पीरियड मुर्गा बनाते हैं... निःसंदेह! पढ़ाने में उनके मुक्काबले एक भी शिक्षक नहीं है, पर हम पर इतनी सख्ती हमसे सहन नहीं होती। आप उन्हें समझाइए।'

दूसरे दिन से हमने देखा कि क्लासटीचर ने सख्ती बिल्कुल छोड़ दी, बस, वे सिर्फ पढ़ाते थे। होमवर्क न करने वालों को, बातें करने वालों को, ऊधम मचाने वालों को वे कुछ नहीं कहते थे। वे ज़्यादातर चुप ही रहते थे। हमारी परीक्षा का परिणाम कमज़ोर आया, पर वे कुछ नहीं बोले... हमें उनका मौन खटकता तो था ही, पर हमें समझ आ गया था कि हम अपनी ही ग़लती का ख़ामियाज़ा भुगत रहे हैं... एक बार हमने क्लास में हिम्मत करके उनसे 'सॉरी' कहा। तब सचमुच भीगी आँखों से वे बोले, 'मेरे कोई बेटे-बेटी नहीं हैं। मैंने तो तुम्हें ही अपने सगे बेटे-बेटी मानकर पढ़ाया है, तुम कहीं पीछे न रह जाओ, इसके लिए मैंने सख्ती की है। पर मेरी भावना को तुम तोड़-मरोड़ दोगे, इसका मुझे सपने में भी अंदाज़ा नहीं था। अब मैं समझ गई हूँ कि यह दुनिया मुझ जैसों की अच्छी भावना के लायक नहीं है...' हमने उनसे माफ़ी माँगी... पर उसके बाद हम उन्हें कभी उनके मूल स्वरूप में नहीं देख पाए। हमारे द्वारा उन्हें लगा आघात अत्यंत तीव्र था... मुझे आज भी यह सब याद करके घोर पश्चात्ताप होता है, विशिष्ट गुणवान लोगों के छोटे-छोटे दोषों को प्रकट करके मुझ जैसे लोग उनके गुणों का लाभ हमेशा के लिए खो देते हैं... पर ऐसा विवेक ज़्यादातर किसी भी व्यक्ति में नहीं होता... सच्चे भाव से मिच्छामी दुक्कडं...

(६) माता-पिता तीन-एक दिन के लिए बाहरगाँव गए थे, उसी समय मुझे बुखार आया, मेरी बड़ी बहन ने मेरी बहुत अच्छी सेवा की, नमक के पानी की पट्टियाँ रखीं, तीनों समय मुझे खाना खिलाया, पर दो-चार बातों पर उसका ध्यान नहीं रहा, और मुझे वही बात दिमाग में बैठ गई। इंसान का कैसा विचित्र स्वभाव है कि दूसरे ने कितना अच्छा किया, वह उसे कम दिखता है या नहीं दिखता... परंतु ५% भी बुरा किया होगा, तो वह दिखेगा... दो-तीन दिन बाद माता-पिता वापस आए, तब तक बहन की सेवा से मैं भला-चंगा हो गया था, पर मन में जो बातें बैठ गई थीं, वे मैंने उनसे कह दीं कि 'मुझे बुखार आया था, तब बहन को मेरे पास रहना चाहिए था न, उसकी बजाय वह बीच में पूजा करने चली गई, उसी समय मुझे पानी चाहिए था, पर मुझे २०-३० मिनट पानी के बिना पड़ा रहना पड़ा... और मेरे साथ बातें करने की बजाय वह अपनी सहेली को बुलाकर उसी के साथ बातें करती रहती थी...'

माता-पिता ने मेरा पक्ष लेते हुए उसे डाँटा, वह तो रो ही पड़ी। उसने फिर मुझसे कहा कि 'तू इतना गिरा हुआ होगा, यह मुझे आज पता चला। मुझे तो तेरी बहन होने पर भी शर्म आ रही है। अरे, सहेली से बातें भी कब कर रही थी? तुझे नमक के पानी की पट्टियाँ रखते समय ही न! तेरी सेवा मैंने कहाँ छोड़ी है? और २०-३० मिनट पूजा करने गई, उसमें तू मेरी शिकायत करने निकल पड़ा। दो-दो घंटे तुझे पट्टियाँ रखीं, अपना कॉलेज छोड़ा... यह सब तुझे क्यों नहीं दिखा? क्यों नहीं दिखता?.....'

मुझे आज अत्यधिक पश्चात्ताप होता है, गुणवानों के छोटे-छोटे दोषों की निंदा करके उन गुणवानों को हताश करने का घोर पाप मैंने जाने-अनजाने अनेकानेक बार कर दिया है। मेरा कर्तव्य तो यह था कि बड़े दोष भी हों, तो भी उनके प्रति मौन धारण करके गुणों को ऊपर लाना, गुणों का गान करना, इस तरह उनके उत्साह को बढ़ाना। मेरे अनुभव से मुझे यह बात दृढ़ हो गई है कि बहुत बड़े अच्छे कार्य करने वाले सज्जनों की भी यदि छोटी-छोटी गलतियों को ही प्रकट किया जाएगा, तो उन सज्जनों का बहुत अच्छे कार्य करने का उत्साह मर जाएगा। इसका पाप परपरिवादी को लगेगा।

अत्यंत छोटे अच्छे कार्य करने वाले सज्जनों की बड़ी-बड़ी गलतियों की भी उपेक्षा करके यदि उनके छोटे गुणों को प्रकट किया जाएगा, तो उन सज्जनों का अधिक से अधिक अच्छे कार्य करने का उत्साह बढ़ जाएगा, और उसका पुण्य अनुमोदक को मिलेगा।

(७) हम दस-एक लोग पू. आ. रत्नसुंदरसूरि म. के शिविर के लिए नवसारी गए थे, वहाँ आधे घंटे रामभाई काका ने हृदयविदारक भाषण देकर सबको रुला दिया, मैं भी एक अच्छा वक्ता था, पर मुझे कुछ बोलने को नहीं मिला। और एक वक्ता दूसरे बेहतर वक्ता को सहन नहीं कर सकता। ईर्ष्या उसके मन को बिगाड़ देती है। मैंने सूरत लौटते समय ट्रेन में सबसे कहा कि 'रामभाई बोलते तो ज़बरदस्त हैं! पर उन्हें हकीकत में सार्वजनिक रूप से बोलने ही नहीं देना चाहिए। क्योंकि वे शराबी हैं, भयंकर शराब पीते हैं। ऐसे लोगों को अगर समाज में महत्त्व मिलेगा, तो शराबियों को शराब कभी भी बुरी नहीं लगेगी। हाँ! उनकी शक्ति गज़ब की है, इस बात से कोई इंकार नहीं...'

मेरी बात शायद सच भी होगी, पर मुझे यह परिवाद करने की ज़रूरत ही क्या थी? और उन दस-एक लोगों से कहने का तो कोई मतलब ही नहीं था न! वे तो रामभाई का सुनकर जिन भावों में रम रहे थे, उन भावों में मैंने तो निंदा करके ज़हर घोलने का ही काम किया न! और फिर, सिर्फ़ ईर्ष्या से प्रेरित होकर वे शब्द बोले गए थे... हृदय से मिच्छामी दुक्कंड।

(८) मैंने संघ के लोगों से एक बार कहा कि 'हमारे अध्यक्ष ज़बरदस्त सक्रिय, समझदार, चतुर हैं। सारा काम बेहतरीन तरीक़े से सँभालते हैं। हिसाब भी साफ़ है, आचार भी अच्छे पालते हैं... बस! एक ही समस्या है, उनसे माइक नहीं छूटता। रोज़ उन्हें व्याख्यान के बाद माइक में पाँच-दस मिनट अपना भाषण देना ही होता है। मुझे तो इतनी ऊब होती है कि उठकर भाग जाने का मन करता है। म.सा. भी ऊब जाते हैं पर सिंह को कौन कहने जाए कि 'तुम्हारा मुँह बदबू दे रहा है।' अरे, कोई काम न हो, तो भी वे पाँच-

दस मिनट खा ही जाते हैं। म.सा. के प्रवचन के ऊपर अपना भाषण देने बैठ जाते हैं। बाकी सब ठीक है, बस! यह एक सुधार हो जाए न, तो बहुत ही अच्छा काम हो...' ऐसे परपरिवाद के लिए मिच्छामी दुक्कडं...

मुझे अब ऐसा लगता है कि माइक न छूटना उनका दोष ज़रूर है, पर मुझे उनके उस दोष की निंदा क्यों करनी चाहिए? यह मेरी गंभीर ग़लती ही है... मुझे केवल गुण ही देखने थे, दोष नहीं।

(९) हम सब मिलकर कई बार राजनीति की बातें करते। उसमें मोदीजी के प्रधानमंत्री बनने के बाद तो हमारी बातें बहुत बढ़ गईं। मैं और लगभग सभी मोदीजी और भाजपा के प्रशंसक-समर्थक थे... पर सबका निंदक स्वभाव तो हर जगह आड़े आता ही है। मैं बोला, 'वैसे तो मोदीजी देशभक्त हैं। पर वे ज़हरीले बहुत हैं। जिसे दाढ़ में ले लें, उसे छोड़ते नहीं। और उनकी पार्टी के लोग भी काफ़ी पैसा खाते हैं। उन्हें भी सबको खुश तो करना ही पड़ता है। राजनीति में साफ़ तो कोई नहीं है, भाई!'

उनका देशप्रेम, नवरात्रि के नौ दिनों में उपवास करने की उनकी धार्मिक निष्ठा, उनका निर्मल ब्रह्मचर्य, उनकी अपनी ईमानदारी, उनकी सादगी... इन सभी अनेक गुणों को ही मुझे देखना था... और मैंने वे देखे तो सही, पर साथ-साथ दोष भी देखे और उनकी निंदा की, यह मेरी ग़लती हो गई।

(१०) मैंने मित्रों से कहा कि 'हमारे जैन साधु बहुत अच्छा जीवन जीते हैं, लोककल्याण करते हैं... यह सब देखकर आनंद होता है। पर उनकी कुछ बातें मुझे पसंद नहीं आतीं, वे मैले कपड़े क्यों पहनते हैं? और माइक क्यों नहीं इस्तेमाल करते, माइक के बिना हमें सुनाई कैसे देगा? थोड़े लचीले बनें न, तो युवा पीढ़ी आकर्षित होगी। नहीं तो वे कहाँ से आएंगे?'

उनके आचारों के बारे में मुझे कोई विशेष ज्ञान ही नहीं है। तो मुझे उनके बारे में कुछ भी बोलने का हक़ भी नहीं है... पर फिर भी मैंने उनके आचारों की निंदा की। हालाँकि यह दोष-निंदा नहीं कहलाएगी, क्योंकि आचार दोष नहीं हैं। पर मैंने तो उसे दोष समझकर ही निंदा की। और हाँ! मैंने उनमें आपसी क्लेश-संघर्ष देखे थे, कहीं-कहीं देखे थे, तो मैंने उसकी निंदा ज़रूर की कि 'ये लोग हमें झगड़ने से मना करते हैं, पर वे तो खुद झगड़ते हैं।' मुझे यह खयाल नहीं रहा कि वे १०० में से १० झगड़ते हैं, और हम १०० में से ९०।

हम झगड़ते हैं। और वे झगड़कर भी पश्चात्ताप आदि करते हैं, हम झगड़े के बाद वैरभाव बढ़ाते हैं। बस, जो मन में आए वह कह देना, मेरा यह विचित्र स्वभाव सर्वथा अनुचित है।

(११) जब मैंने धंधे में नुकसान किया, तब बड़े भाई ने मेरा साथ देकर ३० लाख रु. चुकाए। मुझे हितशिक्षा दी कि 'ठीक से धंधा करो...' पर दूसरी बार भी मैंने वैसी ही गड़बड़ियाँ कीं, और दूसरी बार भाई के पास गया। उन्होंने मुझे डाँटा, पर फिर भी मेरा साथ देकर मुझे नुकसान से बाहर निकाला। साथ ही खुली चेतावनी दी कि 'अब तीसरी बार मैं साथ नहीं दूँगा...' पर कुत्ते की टेढ़ी पूँछ की तरह मैंने तीसरी बार बिलकुल मूर्खतापूर्ण साहस किया और नुकसान हो गया। इस बार भाई ने सहायता नहीं की। मैं फँस गया, लेनदार मुझे परेशान करने लगे। मैंने भाई से बहुत विनती की पर उन्होंने मना कर दिया... बस, इतनी-सी बात को लेकर मुझे गुस्सा आ गया, मैंने उनसे संबंध तोड़ लिया और सबसे कहता फिरा कि 'मेरे भाई ने संकट के समय मेरी सहायता नहीं की...' उन्हें भी गुस्सा आया, 'दो-दो बार सहायता करने के बावजूद अगर उसे वह नहीं दिखता, और तीसरी बार नहीं की, बस वही दिखता है, तो उस नालायक को अब एक रुपया भी नहीं दूँगा।' यह उनका बयान था। पर गलती मेरी ही थी, ऐसा मैं निश्चित रूप से मानता हूँ... मिच्छामी दुक्कंड।

फिर हुआ यह कि भाई ने मुझे दो बार सहयोग देने की बात कुछ लोगों को बता दी थी, इसलिए मुझे और भी बुरा लगा... 'उसने सहयोग किया है, तो कोई उपकार नहीं किया। भाई है, तो करेगा ही! और छोटे भाई की सहायता करने की बात दूसरों को बताना, यही उसका सबसे बड़ा दोष है। यह कैसा अहंकार! अरे! सहायता करके इस तरह उसका बखान तो नहीं करना चाहिए...' यह उसका दोष था, पर मुझे उस दोष का बखान करने के बजाय बस इतना ही कहना था कि हाँ! दो बार सहायता करके उसने मुझे पूरी तरह बचा लिया है। वह मुझ पर किए उपकारों को बोलकर गलती करता है, तो मैं उसके द्वारा मुझ पर किए गए उपकारों को न बोलकर गलती ही कर रहा हूँ न! मिच्छामी दुक्कडं।

(१२) मैंने एक दानवीर की आलोचना की, 'यह भाई अनेक स्थानों पर लाभ लेते हैं, कभी किसी को मना तो करते ही नहीं। शिबिर, आंबिल, पाठशाला... हर जगह उनका नाम होता ही है। वास्तव में बहुत ही सच्चे और उदार व्यक्ति हैं। परंतु एक अवगुण ऐसा है जो स्पष्ट रूप से आँखों में खटकता है। उनके माता-पिता अलग रहते हैं, वे उनकी देखभाल नहीं करते, सिर्फ पैसा दे देने से क्या होता है? उनके माता-पिता खून के आँसू रोते हैं, कि बेटा हमारे पास आता ही नहीं... और उसकी सगी बहन के ससुराल में बहुत गरीबी है। उसकी बहन खाखरा बनाकर बेचती है। यह भाई उसकी सहायता नहीं करते। यह कैसी विचित्रता है! पहले माता-पिता और बहन की ही देखभाल करनी चाहिए न!'

उनका दान सच्चा था, तो मुझे उसी की प्रशंसा करनी चाहिए थी। उनमें मौजूद अन्य दोषों के बारे में मुझे कुछ भी क्यों कहना चाहिए? पर मैंने वह भूल की।

(१३) मेरी एक सखी ने उपधान में धर्म प्राप्त कर मात्र ४० वर्ष की आयु में ही पति के साथ ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया। हम सब उसके इस शील की अनुमोदना करते थे, पर केवल अनुमोदना नामक इस मीठी बात से हमारा मन ऊब जाता था, इसलिए कुछ

तीखा खाने के लिए मैं और दूसरी सखियाँ बोल पड़ती थीं, 'वैसे तो सती-सावित्री है, पर सास से झगड़ा करके अलग रहती है, और मेकअप, कपड़े आदि की तो बहुत शौकीन है... हीरोइन की तरह घूमती है, किसी को भी उस पर राग हो जाए। अरे भाई! जब निर्मल शील का पालन करती हो, तो दूसरों के पवित्र भावों की रक्षा भी करनी चाहिए न! यह तो कैसी विचित्रता है कि 'मैं शील का पालन करूँ, और तुम मुझमें विकारी बनो...'

अब मुझे समझ आता है कि सबके गुण एक जैसे नहीं होते। ब्रह्मचर्य में दृढ़ आत्मा मौज-शौक वाली हो सकती है... और मौज-शौक से अलिप्त आत्मा महाविकारी हो सकती है, मोहोदय के हजारों प्रकार हैं... केवल अच्छाई की अनुमोदना करना ही मेरा कर्तव्य है। बुराई के प्रति मौन ही रहना चाहिए। मिच्छामी दुक्कडं।

(१४) मैंने अपनी सखी का स्टेटस देखा, वह परिवार के साथ बाहर घूमने गई थी, वहाँ उसने शॉर्ट्स पहने हुए थे, और उसे स्टेटस पर भी लगाया था। मैंने सबके सामने कहा, 'इसके नखरे देखो। यह हमारी पाठशाला के दो सौ बच्चों को संभालती है। पाठशाला के किसी भी कार्य में वह मुख्य होती है। हमारे पुत्रवधू मंडल की वह नेत्री है। और इतनी धार्मिक होने के बावजूद ऐसे कपड़े तो पहने ही, साथ में उसे स्टेटस पर भी डालती है... उस (अपशब्द) को शर्म नहीं आती...'

वह भगवान नहीं बन गई है, यह एक सत्य है। तो उसमें गुणों के साथ अवगुण भी रहने ही वाले हैं। मुझे दोषों को सह लेना था, और गुणों का गान करना था... पर मैं चूक गई, गुणों के गान के साथ-साथ मैंने अवगुणों का भी गान किया... मिच्छामी दुक्कडं।

(१५) हमारे समाज के एक परिवार की मैंने निंदा की, 'इस परिवार की हालत तो देखो। बेटा ने दीक्षा ली है। माँ वर्षीतप करती हैं, और बहुत अध्ययन करती हैं। पिता जी सतत वैयावच्य करते हैं। और उनका बेटा शराबी, स्मोकर, जुआरी है... हर बात में पूरा है।

उसके माता-पिता को उसे संस्कार देने चाहिए थे... दूसरा धर्म बाद में करेगा, तो चलेगा...'

माता-पिता ने संस्कार दिए होंगे, तभी तो बेटी ने दीक्षा ली न। अब बेटा वैसा संस्कारी नहीं बन सका, तो उसमें बेचारे माता-पिता क्या करें? और सबसे महत्वपूर्ण बात, माँ-बेटी-पिता की अनुमोदना के साथ-साथ बेटे की निंदा करने की मुझे क्या आवश्यकता है? यह कैसा गंदा दूषण मुझमें प्रवेश कर गया है?... मुझे स्वयं पर बहुत-बहुत खीझ होती है। मिच्छामी दुक्कडं।

(१६) एक धनवान परिवार के लिए मैं बोला, 'इस परिवार ने बहुत अच्छा काम किया। बेटे के विवाह के अवसर पर ११ लाख रु. साधर्मिक फंड में दिए। रिसेप्शन भी रात में नहीं रखा। पर थोड़ा दुःख इस बात का है कि विवाह का कुल खर्च लगभग ११ करोड़ किया होगा, तो उसके सामने ११ लाख तो जैसे साधर्मिकों का मजाक उड़ाया हो, मुझे तो ऐसा ही लगता है। और रिसेप्शन भले ही दोपहर में था, पर उसमें ७० आइटम थे! और अभक्ष्य तो बहुत था... दिखावा, बर्बादी, हिंसा! पता नहीं चलता कि मुझे उनकी साधर्मिक भक्ति और रात्रि रिसेप्शन त्याग की अनुमोदना करनी चाहिए या नहीं?...'

अब ऐसा लगता है कि श्रावक देशविरतिधर है। उसने जितनी विरति की, उतनी अनुमोदना! जितनी विरति नहीं की, उसके लिए माध्यस्थ्य भाव! पर मैंने तो निंदा की, उसके लिए मिच्छामी दुक्कडं।

(१७) एक आचार्य भगवंत के लिए मैं बोला, 'ये साहेबजी जबरदस्त ज्ञानी हैं, प्रवचन जोरदार देते हैं। संयम अव्वल दर्जे का पालते हैं। उन्हें यह विवेक भी है कि ट्रस्टियों की गलतियाँ कहाँ-कहाँ होती हैं? परंतु सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे कहीं भी खट्टे-खारे-कड़वे नहीं होना चाहते। सबसे मीठी बातें करते हैं, 'मास्टर जी न मारें और न पढ़ाएँ।' यह वैसी ही स्थिति है। ट्रस्टी कितने गलत काम करते हैं, पर साहेबजी उन्हें रोकते-

टोकते नहीं। ये ट्रस्टी तो बाप बन बैठे हैं। कोई उन्हें कहने वाला ही नहीं... साहेबजी इतने निष्क्रिय क्यों रहते होंगे? क्या उन्हें भी ट्रस्टी से कोई गरज होगी?’

आचार्य भगवंत के गुणों की प्रशंसा के साथ-साथ मैंने उनकी निंदा भी की। मिच्छामी दुक्कडं।

बाद में साहेबजी ने मुझे समझाया कि ‘हमारी भी सीमाएँ होती हैं। यदि ट्रस्टियों में पात्रता न हो, तो उन्हें कुछ कहने का कोई मतलब नहीं। यदि हम उनसे संबंध बिगाड़ेंगे, तो वे हमें बुलाएँगे ही नहीं। और यदि हम नहीं आएँगे, तो इस संघ के जैनों को हम सच्चा धर्म कैसे सिखाएँगे? इसलिए हमें उनकी उपेक्षा करनी ही पड़ती है। संघ के जैनों के हित के लिए हमें ट्रस्टियों से अच्छे संबंध रखने पड़ते हैं। बाकी हमें उनसे एक रुपए की भी आवश्यकता नहीं है। बस, वे हमें उपाश्रय में रहने दें, बहाने न बनाएँ, यही हमारे लिए पर्याप्त है... बाकी लोगों के हित का सारा काम हम संभाल लेंगे...’ साहेबजी की बात सुनने के बाद मुझे समझ आया कि साहेबजी चुप क्यों हैं... अरे! मान लीजिए कि साहेबजी वास्तव में ट्रस्टियों से कोई गरज रखते भी हों, तो भी उस एक दोष के सामने उनके और भी बहुत से गुण तो हैं ही न! आज के जमाने में कोई भी आत्मा सर्वगुणसंपन्न तो है ही नहीं... मुझे अपनी देखने और बोलने की भूल को सुधारना है।

(१८) मैं जहाँ नौकरी करता हूँ, वह सेठ मुझे बहुत अच्छी तरह से रखते हैं। पूरे स्टाफ का अच्छी तरह से पोषण करते हैं। डायमंड मार्केट की भयंकर मंदी में भी उन्होंने एक भी कर्मचारी को कम नहीं किया, वेतन नहीं घटाया। मैं अपनी आँखों से देखता हूँ कि वे हर साल अपनी पूँजी से ४ करोड़ रु. कम करते हैं। पिछले चार वर्षों से ऐसा ही चल रहा है। क्योंकि बाजार चल नहीं रहा... हालाँकि वे २००० करोड़ की पार्टी हैं। उन्हें ऐसे १६ करोड़ कम होने से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। फिर भी यह उनका गुण तो है ही। जब मैं दूसरों से अपने सेठ के बारे में बात करता हूँ, तब उनके ये सभी गुण तो बताता ही हूँ। मुझ पर किए उनके उपकार का भी वर्णन करता हूँ। परंतु साथ ही उनके दोष भी मेरे

मुँह से निकल ही जाते हैं। 'यह सेठ हर तरह से अच्छे हैं, पर उन्हें फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, नाम, पट्टिका और प्रसिद्धि में बहुत रुचि है। मुझे स्पष्ट दिखता है कि वे यह सब पाने के लिए बहुत माया करते हैं। यदि लाभार्थी के रूप में उनका नाम न बोला जाए, बहुमान न हो... तो उन्हें बहुत भारी पड़ता है। यह सब मैंने अपनी आँखों से देखा है। पर बड़े लोगों को सलाह देने कौन जाए? मुझे तो अपनी नौकरी संभालनी है... बस!'

मैंने इस तरह बोलकर उनकी निंदा की है। मेरी मान्यता स्पष्ट है कि उनके गुण सच्चे ही हैं, और वे सच्चे भाव से ही अच्छे काम करते हैं। और जो मलिनता है, वह बुरी होने के बावजूद मुझे उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए थी, फिर भी मैं खुद को रोक नहीं सका। मुझे उनकी मान की लालसा बहुत चुभती है, इसलिए मैं बोल देता हूँ। अब मैं खुद को निंदा से रोकने का पूरा प्रयास करूँगा। मिच्छामी दुक्कडं।

(१९) मैंने अपने पीहर पक्ष में सास-ससुर के लिए कहा, दोनों भगवान जैसे हैं। कभी कोई परेशानी नहीं देते। मुझ पर काम थोप देने का विचार भी सास को नहीं आता। सब मुझे बेटी की तरह रखते हैं। जब चाहे पीहर जाने की छूट! जब चाहे घूमने जाने की छूट! जो चाहे खाने-पीने की छूट! सब कुछ बहुत अच्छा है। बस, एक बात है कि उनका देवर-देवरानी के प्रति पक्षपात अधिक है। उनके लिए वे कुछ ज्यादा ही करेंगे। मुझे दुःख होता है कि 'हर मामले में उन्हें ज्यादा क्यों?' मैंने तो शिकायत भी की, तो वे कहते हैं, 'वे छोटे हैं, उन्हें बुरा नहीं लगना चाहिए...' पर मुझे तो दोनों का अतिरिक्त प्रेम साफ-साफ दिखाई देता है...'

मुझे कोई दुःख नहीं है, पर सास-ससुर देवर-देवरानी को अधिक सुख देते हैं, इसका मुझे दुःख है, और इसके लिए मैं पीहर में उनके विरुद्ध शिकायत करती हूँ। यह है मेरा तुच्छ स्वभाव! पर अब मैंने यह सब छोड़ देने का दृढ़ निश्चय किया है।

(२०) युवाओं का एक समूह पांजरापोल में पशुओं को घास खिलाना, गर्मियों में छाछ पिलाना, गरीबों को रविवार को भोजन कराना... ऐसे अनेक प्रकार के सुकृत्य करता

था। पर वे कभी प्रवचन नहीं सुनते, महाराज साहेब के परिचय में नहीं आते... मैंने एक बार एक बैठक में कहा कि 'ये ५५ युवा महान हैं, सभी व्यसनों को त्यागकर ऐसे उत्तम कार्य करते हैं। पर इन लोगों को व्याख्यान में बिलकुल रुचि नहीं है। जिनवचन के बिना 'क्या सही? क्या गलत?' यह कैसे पता चलेगा? उनके ये सभी कार्य उन्हें क्या फल देंगे? भगवान जाने।'

मेरा कर्तव्य था कि मैं केवल उनकी अनुमोदना ही करूँ। और वे जिनवचन नहीं सुनते, इसकी टीका-टिप्पणी दूसरों के सामने न करूँ। मुझे तो उन्हें ही प्रेम से कहना चाहिए था कि 'आप यह सब कुछ करें, साथ-ही-साथ जिनवचन सुनें, पढ़ें... भले ही सप्ताह में एक बार ही सुनें... तो आप बहुत विवेक प्राप्त करेंगे... आप और भी उत्तमोत्तम कार्य कर सकेंगे।'

मेरी इस भूल के लिए हृदय से मिच्छामी दुक्कडं।

(२१) मैं साध्वीजी के शिविरों में गई। मुझे उनमें बहुत आनंद आया, वे साध्वियाँ तपस्वी, संयमी थीं। परंतु मैंने देखा कि वे मुझ जैसी लड़कियों को दीक्षा के लिए लगातार प्रेरित करती थीं। मुझे लगा कि उन्हें शिष्या बनाने का लोभ है। मुझे यह अच्छा नहीं लगा, मैंने उनका संपर्क छोड़ दिया। फिर जब सखियों ने पूछा कि 'तू साध्वीजी के पास क्यों नहीं आती?' तब मैंने कहा कि 'वे हर तरह से अच्छी हैं, परंतु वे दीक्षा के लिए बहुत जोर डालती हैं। उनमें शिष्या बनाने का लोभ स्पष्ट दिखाई देता है... इसलिए मैंने उनके पास न जाने का निर्णय लिया है।' मुझे वास्तव में ऐसा कुछ भी बोलने की आवश्यकता नहीं थी। शिष्या बनाने का लोभ हो, यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं है। इस तरह उस दोष को बोलने के बजाय मैं कोई और बात कर सकती थी... पर अंदर का दुर्भाव शब्दों में प्रकट हो गया। हृदय से मिच्छामी दुक्कडं।

(२२) मैंने छपी हुई पुस्तकों के बारे में अपनी राय दी कि 'इन महाराज साहेब के पदार्थ बहुत ही अद्भुत होते हैं। पढ़ने वालों में परिवर्तन आता ही है। परंतु उनकी पुस्तक में

डिज़ाइन बहुत अधिक होती है! और बहुत खाली जगह छोड़ देते हैं। यदि वे उस जगह और डिज़ाइन की जगह पर पूरा-पूरा लेखन ले लें न, तो उनकी चार पुस्तकें एक ही पुस्तक में छप जाएँ। इसमें पैसों और कागजों की बहुत बर्बादी होती है।’

मेरी बात भले ही सही थी। पर मुझे यह बात सबको कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उससे कोई परिवर्तन होने वाला नहीं था। केवल सबके मन में व्यर्थ का दुर्भाव उत्पन्न होता। इसके बजाय यदि मुझे कोई राय देनी ही थी, तो मैं उन महाराज साहेब को ही प्रेम से अपनी राय लिखकर भेज देता, तो ज्यादा अच्छा होता। यदि उनके मन में वह बात बैठती, तभी सुधार होने वाला था... फिर हर किसी की विचारधारा अलग-अलग होती है। डिज़ाइन और खुले लेखन से लोगों को पढ़ने में अधिक आनंद आता हो, ऐसा उन्हें लगता हो, यह संभव है। हृदय से मिच्छामी दुक्कड़।

— X — X —

माय ब्लैक डायरी भाग - ६

भव / भाव आलोचना

पाप स्थानक-१७ : माया-मृषावाद

दूसरा पापस्थानक था मृषावाद! आठवाँ था माया! यहाँ उन दोनों को मिला दिया गया है। मायापूर्वक झूठ बोलना माया-मृषावाद है! मैंने जैसा जाना है, उसके अनुसार इस सत्रहवें पापस्थानक के द्वारा उन्होंने और भी कई नए पापस्थानक बता दिए हैं। माया एक कषाय है, तो माया शब्द से चारों कषाय लेने हैं और मृषावाद एक अव्रत है, तो मृषावाद शब्द से पाँचों अव्रत लेने हैं। इसलिए कुल $4 \times 4 = 16$ पापस्थानक होंगे, जो इस प्रकार हैं:

(१) क्रोध से हिंसा (२) मान से हिंसा (३) माया से हिंसा (४) लोभ से हिंसा।

(१) क्रोध से मृषा (२) मान से मृषा (३) माया से मृषा (४) लोभ से मृषा।

(१) क्रोध से चोरी (२) मान से चोरी (३) माया से चोरी (४) लोभ से चोरी।

(१) क्रोध से मैथुन (२) मान से मैथुन (३) माया से मैथुन (४) लोभ से मैथुन।

(१) क्रोध से परिग्रह (२) मान से परिग्रह (३) माया से परिग्रह (४) लोभ से परिग्रह।

महाराज साहेब! जब मैं विचार करने बैठता हूँ तो मुझे लगता है कि मैंने कितने-कितने पाप किस-किस तरह से किए हैं। इन सबका कोई हिसाब ही नहीं है। फिर भी, इन २० पापों का एक-एक प्रसंग तो मैं लिखूँगा ही, जो मेरे जीवन में घटे हैं।

(१) क्रोधहिंसा: रास्ते में एक कुत्ता मुझ पर लगातार भौंक रहा था, मुझे बहुत गुस्सा आया, मैंने एक बड़ा पत्थर उठाकर उसके सिर पर दे मारा... कुत्ता लहलुहान हो गया।

(२) मानहिंसा: अजैन मित्रों ने मेरा मजाक उड़ाया था कि 'ये जैन इतने डरपोक होते हैं कि वे तो कॉकरोच से भी डरते हैं...' उन सबकी बोलती बंद करने के लिए मैंने उन्हीं के सामने एक कॉकरोच पर पैर रखकर उसे कुचल डाला।

(३) मायाहिंसा: चूहा सीधे तो पकड़ा नहीं जा रहा था, तो पिंजरे में खाने की चीजें रखकर उसे ललचाया, चूहा पिंजरे में फँस गया। इसके बाद वह दोबारा घर में न आ जाए, इसके लिए उसे ठीक बिल्ली के सामने ही छोड़ा, बिल्ली ने झपट्टा मारकर उसे फाड़ डाला।

(४) लोभहिंसा: मुझे रैकेट में मच्छरों को जलते हुए देखने में बहुत मजा आता था, तो इसके लिए मैंने रैकेट से मच्छर मारे। (अथवा) अधिक पैसे कमाने की वृत्ति जाग जाने से भयंकर हिंसा वाली कंपनियों के शेयर खरीदकर भी उसे प्रोत्साहन दिया। (अथवा) खाने की आसक्ति के कारण अंडे वाली केक आदि खाई।

(५) क्रोधमृषा: मेरा बड़ा भाई मुझे हर बात में मारता था, नीचा दिखाता था... इसलिए मुझे उस पर बहुत गुस्सा था। मैंने उस क्रोध के कारण पिताजी से झूठी बात कही कि 'बड़ा भाई तो सिगरेट पीता है, और पैसों का जुआ भी खेलता है।'

(६) मानमृषा: मुझे मित्रों ने पूछा, 'तुम कितना पढ़े हो?' वास्तव में मैं ११वीं कक्षा में फेल हो गया था। पर यह बात कहता, तो मेरी नाक कट जाती, इसलिए मैंने असत्य कहा कि 'मैंने ग्रेजुएशन तक किया है। और हमेशा ८०% से ऊपर ही आते थे।'

(७) मायामृषा: मुझसे काँच के गिलासों का डिब्बा हाथ से छूट गया और सभी गिलास चूर-चूर हो गए। मुझे डर लगा कि 'माँ आएँगी, तो मुझे मारेंगी।' मैंने एक योजना बना ली, घर में एक कुत्ता पाला हुआ था, मैंने माँ से कहा कि 'कुत्ते का धक्का लगा, और डिब्बा नीचे गिरने से गिलास फूट गए...' मैंने इतनी होशियारी से बात कही, कि माँ ने मेरी बात मान ली...

(८) लोभमृषा: मुझे अपने पास पैसे जमा करने थे, तो मैं कोई वस्तु खरीदकर माँ-पिताजी को उसका दाम बढ़ाकर बताता, और बीच का अंतर मैं अपने पास रख लेता...

(९) क्रोधचोरी: कॉलेज में एक लड़के ने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया था, इस कारण मुझे उस पर बहुत क्रोध था। मैंने उसका स्मार्टफोन लेकर, सिम निकालकर उसे तोड़ दिया, और फिर मोबाइल चतुराई से उसकी जगह पर वापस रख दिया... वह बेचारा सिम गुम हो जाने और अपना सारा डेटा खो जाने से बहुत परेशान हुआ।

(१०) मानचोरी: मित्रों ने मुझे चुनौती दी कि 'तू इस प्रोफेसर की उपस्थिति में परीक्षा में नकल करके दिखा, तो तुझे असली मानें...' और मैंने वह चुनौती स्वीकार करके उस सख्त प्रोफेसर की उपस्थिति में ही नकल की, पकड़ा नहीं गया... और फिर मित्रों से अहंकार के साथ कहा कि 'मैं कहीं भी, किसी भी तरह से, किसी की भी आँखों में धूल झाँककर चोरी कर सकता हूँ।'

(११) मायाचोरी: सरकार के अत्यंत कड़े नियमों के बावजूद मैंने बड़ी धूर्तता से ऐसे-ऐसे रास्ते निकाले कि जिनसे मैंने टैक्स की चोरी कर ही ली।

(१२) लोभचोरी: पड़ोसी के घर में रखी एंटीक तरह की घड़ी मुझे बहुत पसंद आ गई थी। मुझे वह लेनी ही थी। एक बार पड़ोसी का दरवाजा खुला था, मैं अंदर जाकर घड़ी लेकर वापस आ गया।

(१३) क्रोध-मैथुन: मैंने एक लड़की को प्रपोज किया था, पर उसने सबके सामने मेरा मजाक उड़ाकर मुझे मना कर दिया था। (कुछ समय बाद) मैंने उसे अपनी ओर आकर्षित किया, उसने अपनी गलती के लिए माफी माँगी। मैंने उसके साथ भोग किया, और फिर उसे छोड़ दिया। उससे कह दिया कि 'तुम्हारे मजाक का मुझे जो बदला लेना था, वह मैंने ले लिया। अब तुमसे मेरा कोई संबंध नहीं है।' और सबके सामने मैंने उसका मजाक उड़ाया...

(१४) मान-मैथुन: दोस्तों ने मुझे उकसाया कि 'यह लड़की बहुत गुस्सैल है, और किसी के हाथ नहीं आती...' मैंने उनके साथ शर्त लगाई कि 'एक महीने में उसे भोगकर दिखाऊँगा...' और अपनी धूर्तता से मैंने वह काम कर भी लिया... फिर अपने मित्रों को प्रमाण के साथ दिखाकर गर्व से कहा कि 'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

(१५) माया-मैथुन: मेरी चचेरी बहन घर आई हुई थी, कुछ दिन रहने वाली थी। मेरे मन में उसके प्रति विकार जागा, मैंने एक रात उसे दूध में कोई दवा घोलकर पिला दी... वह गहरी नींद में चली गई, और मैंने उसी अवस्था में उसके साथ मैथुन सेवन कर लिया। चार-छह घंटे बाद नींद का असर समाप्त हुआ, पर तब तक तो सब कुछ हो चुका था। वह कुछ बोल सके, ऐसी परिस्थिति ही नहीं रही।

(१६) लोभ-मैथुन : एक धनी स्त्री को अपने पति से संतोष नहीं था। वह मेरी ओर आकर्षित थी, उसने मुझे धन का लालच दिया। मैंने धन पाने के लिए उसकी बात मान ली, और उसके साथ भोग किया।

(१७) क्रोध-परिग्रह : मेरे छोटे भाई ने संपत्ति में अपना समान हिस्सा पाने के लिए मेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। मैं उसे देने ही वाला था, पर मुझसे ज़रा विलंब हुआ, और वह उतावला हो गया। मुझे क्रोध आया... और मैंने उससे कह दिया, 'तुझसे जो हो, कर ले... पर तुझे एक कौड़ी नहीं दूँगा...' मैंने क्रोध के कारण उसकी समस्त संपत्ति अपने ही पास रख ली। (अथवा) मुझे एक व्यक्ति पर बहुत क्रोध था, इसलिए वह संपत्ति में मुझसे आगे न निकल जाए, इसके लिए मैं परिश्रम कर-करके अधिक से अधिक परिग्रह अर्जित करता ही रहा।

(१८) मान-परिग्रह : समाज में 'धनवान, करोड़पति, श्रीमंत' का दर्जा बनाए रखने के लिए, मुझे बिल्कुल ज़रूरत न होने पर भी मैं व्यापार बढ़ा-बढ़ाकर धन बढ़ाता गया, और लोगों में अधिकाधिक सम्मान पाता गया।

(१९) माया-परिग्रह : सरकार को, स्वजनों को, मेरे बच्चों को, पत्नी को भी पता न चले... इस तरह से मैंने अपनी संपत्ति अनेक प्रकार से जमा की है। गाँव के घर की ज़मीन में भी गाड़ी, और दूर-दूर के शहरों में संपत्ति भी खरीद रखी... इस तरह अनेक प्रकार से बहुत लोगों से छिपाकर परिग्रह का पाप किया।

(२०) लोभ-परिग्रह : मुझे पैसे से अत्यधिक राग है! मैं अपने लिए, परिवार के लिए... किसी के लिए भी खर्च नहीं कर सकता। बस, कमाता हूँ और इकट्ठा करता जाता हूँ।

इस प्रकार मायामृषावाद शब्द से ४ कषाय x ५ अग्रत = २० पापस्थान मैंने बताए।

शास्त्रों में इसकी दूसरी व्याख्या मैंने इस प्रकार भी जानी है कि वेश बदलकर या भाषा बदलकर दूसरों को ठगना भी मायामृषावाद है। इस प्रकार भी मैंने यह पाप अनेक बार किया है, जिसे हे म.सा.! अब मैं आपके समक्ष प्रकट करता हूँ।

(१) मज़ाक करके दूसरों को परेशान करना मेरा स्वभाव था। मुझे पता था कि मेरे एक मित्र के पिता उसकी पढ़ाई और चरित्र को लेकर अत्यंत कठोर थे। वह मित्र किसी लड़की से सामान्य बात भी करे, तो उसके पिता उसकी पिटाई कर देते थे। हम मित्रों ने मिलकर एक योजना बनाई, उस मित्र के पिता को रविवार के दिन फ़ोन किया। और मैंने लड़की की मीठी आवाज़ निकालकर बात की कि 'वह है? आज हमने घूमने जाने की योजना बनाई थी, पर वह आया नहीं, और उसका मोबाइल लग नहीं रहा है...' उसके पिता ने पहले तो मुझे धमकाया। मैंने पलटकर जवाब दिया 'अंकल! वह तो कहता था कि मेरे पापा एकदम खुले विचारों (Freemind) वाले हैं। तो आप ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं? आप एक बार उसे फ़ोन दीजिए न?' उसके पिता ने उसे फ़ोन दिया। मैंने उसके साथ सामान्य आवाज़ में बात की कि 'तुम इस जगह पर आ जाओ। हम क्रिकेट खेलने चलते हैं।' उसे पहले की बात का पता नहीं था, वह तो बोला 'दस मिनट में ही आता हूँ...' उसके पिता पास में ही थे, वे भड़क गए, 'कहाँ जाना है?' 'क्रिकेट खेलने के लिए...' 'किसके साथ? कौन था?' 'मेरा मित्र था...' और उसके पिता ने एक तमाचा जड़ दिया। दो गालियाँ दीं, 'लड़कियों के साथ घूमने जाना है। और बाप के सामने झूठ बोलता है...' वह बेचारा हक्का-बक्का रह गया। उसे कहाँ पता था कि मैंने लड़की की आवाज़ में उसके पिता से बात की थी... उसके पिता ने उसकी ख़ूब पिटाई की। बाद में जब उसे मेरी करतूत का पता चला, तब उसे बहुत आघात लगा। उसने मुझसे मित्रता तोड़ दी, और अपने पिता के सामने मुझसे स्वीकार करवाया कि 'मैंने भाषा बदलकर लड़की की आवाज़ में बात की थी।'

(२) कुत्ते की आवाज़ निकालकर बच्चों को डराया है, वह भी अनेक बार!

(३) गाँव में हम सब लगभग १५ चचेरे भाई-बहन इकट्ठे हुए थे। छुट्टियों में सब पंद्रह-एक दिन के लिए रुकने वाले थे। एक दिन हम दो-तीन लड़कों ने बाक़ी सबको रात में डराने की योजना बनाई। उस रात लगभग बारह बजे तक भूत-प्रेत की बातें कीं, उससे लगभग सभी के मन में डर तो पैदा हो ही गया था। उस रात सब बत्ती जलाकर सोए। हम तीन लोग दो बजे उठे, बत्ती बंद की, और पहले से बनाई योजना के अनुसार हम तीनों ने शरीर पर काला मोटा कपड़ा लपेट लिया। मुँह पर भूत का मुखौटा पहन लिया। और स्पीकर पर डरावनी आवाज़ें शुरू कर दीं, पहले धीमी आवाज़... फिर तेज़ आवाज़... और हम तीनों वहाँ खड़े हो गए। डरावनी आवाज़ें शुरू कीं। पहले धीमी आवाज़... फिर तेज़ आवाज़... और हम तीनों वहाँ खड़े हो गए। डरावनी तेज़ आवाज़ से सब जागने लगे, अँधेरे में हमारी भयानक आकृति देखकर चीख पड़े, हमने स्पीकर अपनी पहनी हुई जैकेट के अंदर रखे थे, इसलिए उन्हें लग रहा था कि वह आवाज़ हममें से ही आ रही है। लड़कियाँ तो बहुत ज़्यादा डर गईं। वे लगातार ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी थीं। और हम तीनों धीमे क़दमों से उन लोगों के पास जा रहे थे... बस! हम तीनों में से एक को लगा कि 'इसे और लंबा खींचना ठीक नहीं। कहीं कोई बेहोश हो गया तो?' उसने तुरंत जाकर बत्ती जला दी। काला कपड़ा और भूत का मुखौटा उतार दिया, स्पीकर बंद कर दिया। १५ सेकंड में ही यह सारा स्वरूप बदल गया, फिर हम दो लोग भी प्रकट हो गए। बाक़ी सबको यह तो समझ आ गया कि 'यह हम तीनों का खड़ा किया हुआ नाटक था।' पर मन पर इतना गहरा डर बैठ गया था कि उन सबको सामान्य होने में कम-से-कम तीन-चार मिनट लग गए, लड़कियाँ तो रोने लगीं, उन सबने हम तीनों को ख़ूब खरी-खोटी सुनाई... दो-चार दिन तो हमारी चचेरी बहनों ने हमसे बात भी नहीं की... हमने बहुत माफ़ी माँगी, फिर भी उन्होंने माता-पिता से सारी बात कहकर हमें डाँट खिलवाई, उसके बाद हम फिर से आपस में सामान्य हुए। आज समझ आता है कि 'इस तरह किसी को डराना नहीं चाहिए।' इसमें स्पीकर द्वारा भाषा

बदली, और काले कपड़े द्वारा वेश बदला, और इस तरह हमने चचेरे भाई-बहनों को ठगा-भूत का डर उत्पन्न कराया। मिच्छामी दुक्कंड।

(४) हमारे कॉलेज की एक लड़की बहुत अकड़कर चलती थी, मेरा मन उसे सबक सिखाने का हुआ। वह मुझे सामान्य रूप से पहचानती थी। और मैं उसकी सामान्य मित्र भी बन गई थी। एक दिन मैंने कपड़े और हेयरस्टाइल ऐसे बना लिए कि मैं लड़का ही लगूँ... और ऊपर चश्मा पहन लिया, और यह सब मैंने ड्रेस प्रतियोगिता के दिन किया ताकि उसे कोई शक न हो। ऐसे पहनावे में उस दिन मैं उसके साथ घूमी, उसके गले में हाथ डाला, उसे गले लगाया... उसे अच्छा नहीं लग रहा था, पर वह मुझे मना नहीं कर पाई। क्योंकि मैं तो लड़की ही थी... मैंने दूसरी सहेलियों से कह रखा था कि 'तुम लोग तस्वीरें खींचते रहना, वीडियो बनाते रहना...'

बस, उसके बाद मैंने उनमें से कुछ तस्वीरें और वीडियो के स्क्रीनशॉट कुछ दिनों बाद उसके पिता को भेज दिए। काफ़ी दिन बीत चुके थे, इसलिए उस लड़की के मन से तो ड्रेस प्रतियोगिता की बात भी निकल गई थी। और उसके पिता तो ये तस्वीरें देखकर भड़क गए, वे यह समझे कि 'उनकी बेटी एक स्मार्ट लड़के के साथ प्रेम में है, उसे गले लगाती है, उसके गले में उस पुरुष का हाथ है।' बाप रे! उस रात उसके पिता ने उसकी ख़ूब पिटाई की, उसने पूछा कि 'क्या बात है?' पर उतावले पिता ने उससे कोई स्पष्टीकरण माँगा ही नहीं। पहले पीट दिया, फिर कहा कि 'तुम किसी लड़के के साथ प्रेम में हो, और उसकी सारी तस्वीरें मेरे पास हैं।' और उन्होंने वे सारी तस्वीरें उसे दिखाईं। वह सब कुछ समझ गई। उसने पिता को सारी बात बताई। अब वे मुझ पर भड़क गए, और उन्होंने मुझे फ़ोन करके धमकाया... पर मैं तो बहाना बनाकर निर्दोष बच निकली कि 'मैंने तो तस्वीरें खींची ही नहीं, यह तो किसी और ने ही खींची हैं। वे आपकी बेटी को परेशान करना चाहते होंगे। बाक़ी मैं ऐसा क्यों करूँगी? वह तो मेरी सबसे अच्छी सहेली (Best Friend) है।'

उन्हें मेरी बात सच लगी या नहीं? यह तो पता नहीं। पर वे चुप हो गए। हालाँकि उसके बाद हमारे बीच की मित्रता टूट गई। आज ऐसा लगता है, दूसरों पर इस तरह वेश बदलकर आरोप लगवाना बिल्कुल उचित नहीं है। मिच्छामी दुक्कंडं।

(५) बचपन में कई बार रोने की हू-ब-हू आवाज़ करके, चेहरे पर वैसे ही भाव लाकर मैंने माँ को कई बातों के लिए मना लिया था। उन्हें यही लगता था कि 'मैं सच में रो रही हूँ।' पर मैं रोती नहीं थी, मैं सिर्फ अपनी इच्छा पूरी करने के लिए दिखावा करती थी। बड़ी होने के बाद प्रेमिका (गर्लफ्रेंड) को मनाने में भी मैंने यही तरीका अपनाया था। और अनेक बार यह सफल रहा था। शब्दों का स्वर बदला, चेहरे के हाव-भाव बदले और दूसरों को ठगा। अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कंडं।

(६) मैं एक तरह से उद्घोषक (एंकर) जैसा था, मुझे कई बार जनसभाओं में, शोकसभाओं में बोलना पड़ता ही था। उसमें मैं रोने जैसी आवाज़ करके, रूमाल से या शर्ट से आँसू पोंछने का अभिनय करके सबको रुला देता था, सबको लगता कि 'मैं बहुत ही भावुक हूँ...' इस तरह मैंने आज तक हज़ारों लोगों को ठगा है... अब यह सब मायाचार मैंने छोड़ दिया है...

(७) उम्र तो मेरी ६० हो गई थी, बूढ़ा हो गया था, पर उम्रदराज़ दिखना अच्छा नहीं लगता था। कोई मुझे अंकल-दादा कहे, तो पसंद नहीं आता था। उससे भी बड़ी समस्या तब होती जब लोग मुझे 'वृद्ध' मानकर सम्मान देते। मुझे ऐसा सम्मान बिल्कुल पसंद नहीं था। मैंने तो तय कर लिया कि 'मुझे युवा ही दिखना है।' इसके लिए मैं अपने बालों में हमेशा काली डाई करता था, और चेहरे (Face) पर भी ऐसी चीजें लगाता था जिससे मैं सबको युवा दिखूँ... इस तरह मैंने अनेकों को युवा बनकर ठगा है... मि. दुक्कंडं। हालाँकि इसमें किसी को नुकसान नहीं हुआ था, पर मेरी आत्मा को तो नुकसान हुआ ही है... मिच्छामी दुक्कंडं।

(८) ५५ वर्ष की आयु तक तो सिर पर लगभग गंजापन आ गया, गंजा दिखना अच्छा नहीं लगता था, तो मैंने विग पहनना शुरू कर दिया। किसी को पता भी नहीं चलता था कि 'मुझे गंजापन है...' इस तरह अपने गंजेपन को छिपाकर लोगों को ठगा।

(९) ४० वर्ष की आयु में ही मेरे सारे दाँत गिर गए, मुझे बत्तीसी लगवानी पड़ी। बत्तीसी की ज़रूरत तो भोजन के समय ही पड़ती है। उसके सिवा नहीं। पर अगर मैं उसे न पहनूँ तो बुढ़िया जैसी दिखती थी। अपना यह भद्दा रूप छिपाने के लिए मैं बिना ज़रूरत के भी बत्तीसी पहने रखकर अच्छी ही दिखने का प्रयत्न करती थी। यह था मेरा पुद्गलराग! अच्छा दिखने का राग! मि. दुक्कडं... (हालाँकि बत्तीसी न पहनो, तो बोलने में समस्या होती है, यह भी एक सच्चाई थी। परंतु मैंने जो बत्तीसी लगातार पहने रखी, वह तो 'पोली न दिखूँ' इसी कारण से पहने रखी।)

(१०) मुँह पर की झुर्रियाँ छिपाने के लिए मैंने हर समारोह में अच्छा-खासा मेकअप किया। परंतु वह मेकअप झुर्रियों के कारण टिक नहीं पाता था, और चेहरे पर से अलग पड़ जाता था। इसलिए अनेक लोगों ने मुझे टोका कि 'आप मेकअप को नहीं छोड़तीं, परंतु मेकअप आपको छोड़ रहा है। आपका बुढ़ापा अच्छा दिखेगा, पर ऐसा आपको छोड़ता हुआ मेकअप अच्छा नहीं दिखता...'।

मैं बूढ़ी तो नहीं हुई थी, पर प्रौढ़ावस्था की हो गई थी... और बस! ऐसी टिप्पणियाँ मिलने के बाद मैंने वैसा मेकअप करना ही छोड़ दिया।

(११) मेरे चेहरे पर कोढ़ के दाग़ थे, उसके कारण विवाह नहीं हो रहा था, आखिरकार मैंने प्लास्टिक सर्जरी करवाई, नई त्वचा लगाने से वह दाग़ छिप गया, और हमने सबसे कहा कि 'मेरा रोग ठीक हो गया है।' पर शरीर में जो खामी थी, जिसके कारण दाग़ होते थे, वह तो बनी ही हुई थी, यह कोई जड़ से तो ठीक नहीं हुआ था। इसलिए हमने धूर्तता ही की थी, पर उससे तत्काल मेरा बेड़ा पार हो गया। विवाह हो गया, और दो वर्ष बाद फिर से दाग़ हो गया, तब तक तो एक संतान भी हो चुकी थी। अब मेरे वैवाहिक जीवन

मैं कोई बाधा आने की संभावना नहीं थी। परंतु अभी तो मेरी उम्र सिर्फ ३० वर्ष ही थी। पति ने दवा के लिए प्रयास किया, पर उसमें सारा भांडा फूट गया कि 'मैंने प्लास्टिक सर्जरी करवाई है।' इस कारण उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्हें अब कोढ़ वाली मुझसे कोई आपत्ति नहीं थी। ज़िम्मेदारी निभाने के लिए वे दृढ़ थे, परंतु मैंने उनके साथ जो धोखा किया, उससे उन्हें सख्त आपत्ति थी। पर अब उन्होंने वह धोखा भी पचा लिया। हालाँकि अब भावना का स्थान ज़िम्मेदारी ने ले लिया था। मैंने उनसे माफ़ी भी माँग ली। मि. दुक्कंडा। पूरी ज़िंदगी के लिए ऐसा धोखा मुझे नहीं करना चाहिए था।

(१२) म.सा.! हम कुछ युवक पुलिस की वर्दी पहनकर कसाइयों के ट्रकों को रोकते थे, और पशुओं को बचाते थे। इसमें कोई पाप नहीं किया, अच्छी ही प्रवृत्ति की है, फिर भी सिर्फ आपको बता रहा हूँ कि 'हमने वेश-परिवर्तन करके कसाइयों को धोखा दिया है। वे ट्रक छोड़कर भाग गए हैं, और हमने पशुओं को बचाया है...' इसमें मुझे मि. दुक्कंडा देने जैसा कुछ नहीं लगता। फिर भी मुझमें दूसरों को ठगने के संस्कार पड़ गए हों, तो वे कल किसी बुरे काम में भी आ सकते हैं। इसलिए उसका मिच्छामी दुक्कंडा।

(१३) म.सा.! मैं सिर्फ नाम मात्र का जैन था, पर एक धार्मिक लड़की पर मेरा मन आ गया। उसे धार्मिक लड़का पसंद था, तो मैंने उसे रिझाने के लिए उत्तम कोटि के पूजा के वस्त्र, पेट्टी आदि खरीदे, और प्रभु-पूजा शुरू की... अष्टप्रकारी शुरू की। उसके कारण उस लड़की के मन में मेरे प्रति थोड़ा सद्भाव जागा। फिर मैंने सामायिक के कपड़े लिए, सामायिक शुरू किया, प्रवचन सुनना भी शुरू किया... उपधान किए... इन सबमें मैं बिल्कुल कोरा था! बस, उस लड़की को खुश करने के लिए यह सब नाटक था। आखिरकार लड़की मान गई, मेरा प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया, और हमने विवाह कर लिया। विवाह के बाद मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया, तो वह उलझन में पड़ गई, उसने मुझ पर ज़ोर दिया, मैंने पहले बहानेबाज़ी की, फिर स्पष्ट शब्दों में कहा 'मुझे तुम पसंद हो, यह धर्म-क्रियाएँ नहीं। तुम्हें पाने के लिए इन आराधनाओं का सहारा लिया था... बाक़ी मुझे इसमें कोई रुचि नहीं। हाँ! मैं तुम्हें रोकूँगा भी नहीं...'

मैं यह समझा था कि 'यह लड़की धार्मिक है। वह अब दूसरे विवाह का तो कभी सोचेगी भी नहीं। अब वह मेरे साथ ज़िंदगी गुज़ार लेगी।' परंतु मैं ग़लत था। वह संपूर्ण सात्त्विक मिज़ाज की थी। वह पीहर चली गई, और वहाँ से साध्वीजी के पास... छह महीने प्रशिक्षण लेकर दीक्षा ही ले ली। इस दौरान मैंने उसे समझाने के बहुत प्रयत्न किए, परंतु उसने मेरी एक भी बात नहीं मानी। मैंने फिर से वह सब धर्म करने की बात भी रखी। पर वह अत्यंत दृढ़ हो गई थी, उसकी एक ही बात थी कि 'मेरा अब संसार में लेश मात्र भी मन नहीं है। आप सच्चे धार्मिक बनें, तो भी नहीं।' और आखिरकार उसकी दीक्षा हो गई। उसके बाद मैंने दूसरा विवाह तो किया, परंतु सच्चे अर्थों में धार्मिक भी बना... उस लड़की को इस तरह धार्मिकता का दिखावा करके ठगने के लिए अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कड़।

(१४) हम दो सहेलियाँ मिलकर ऊपर की मंज़िल पर रहने वाली एक आंटी को फ़ोन करतीं, और जैसे ही वह फ़ोन उठातीं कि हम तुरंत विचित्र आवाज़ें निकालतीं, उसके कारण कभी वे घबरा जातीं... कभी गुस्सा करतीं। वे बेचारी परेशान-परेशान हो गईं, और हमें इसमें बहुत मज़ा आता। वे हमें पकड़ नहीं सकीं। फिर उन्होंने अपने पति से यह बात कही, उन्होंने होशियारी से हमें पकड़ लिया, हम उसी बिल्डिंग में रहती थीं, तो 'हम ऐसे काम करती थीं' यह जानने के बाद उन्होंने हमें सख्त डाँट लगाई। हमारे माता-पिता से शिकायत की। यह सब होने के बाद हमने माफ़ी माँगी, और ऐसे कार्य बंद कर दिए।

(१५) म.सा.!! हम मित्र मिलकर अनेक लोगों को फ़ोन द्वारा अलग-अलग तरह से परेशान करते थे। पहले उनकी सामान्य जानकारी ले लेते। और फिर उन्हें कॉल करते। हम कभी पुलिस बनकर बात करते, कभी आई.टी. ऑफिसर बनकर, कभी गुंडे-माफ़िया बनकर, हर बार उस प्रकार की आवाज़ निकालने में हमने महारत हासिल कर ली थी। वे लोग डर जाते, ऐसा करके हमने कई बार तो पैसे भी ऐंठे हैं। हम पैसे पाने के लिए ऐसा नहीं करते थे, करने का कारण तो एक ही था, 'मज़ाक-मस्ती...' पर कभी-

कभी पैसे भी ऐंठ लिए। पर ऐसा कितने दिन चलता? एक अंकल की पुलिस वालों से पक्की दोस्ती थी, उन्होंने उनके ज़रिए हमें पकड़वाया, पुलिस वालों से थोड़ी पिटाई करवाई, और फिर हमें छोड़ दिया...

(१६) मेरे ससुराल में वस्त्रों की मर्यादा का सख्त आग्रह था। मुझे साड़ी पहनना, सिर पर पल्लू रखना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, परंतु विवश होकर मुझे वह करना पड़ता था। ससुरजी का आग्रह तो रविवार को बाहर घूमने जाते समय भी वैसे ही वस्त्रों का होता था... मैं उनके संतोष के लिए साड़ी पहन लेती, और उनकी नज़रों के सामने पति के साथ बाहर निकलती। नीचे पहुँचने के बाद साड़ी उतारकर वेस्टर्न ड्रेस में ही घूमने जाती। मेरे पति को कोई आपत्ति नहीं थी। वापस घर आते समय साड़ी पहनकर आती। इस तरह मैंने अपने ससुर को अनेक बार ठगा है। पर ऐसी माया कब तक चलने वाली थी? एक बार मैं उनके साथ ही साड़ी में नीचे उतरी, और वे किसी काम से बालकनी में आए, मैं तो नीचे साड़ी उतारकर जीन्स-टीशर्ट में कार में बैठने जा रही थी, उनकी नज़र पड़ गई... वे सब समझ गए... उस दिन उन्होंने मुझे और पति को ऐसी माया करने के लिए डाँटा, और साथ में उदारता के साथ इतना कहा कि 'तुम भले ही साड़ी छोड़ दो। पर जीन्स-टीशर्ट भी छोड़ दो। पंजाबी ड्रेस पहनो। मेरा इतना मान रख लो। तुम्हें मेरा भी लिहाज़ रखने की ज़रूरत नहीं है।' उनकी वह उदारता मेरे मन को छू गई और मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली... पर अनेक बार ससुर को ठगने के लिए मिच्छामी दुक्कंड।

(१७) स्कूल में हम लड़के-लड़कियों का एक ग्रुप था, कई बार हम स्कूल के दिनों में भी कहीं घूमने...

जाने की योजना बनाते। उस समय घर से तो स्कूल ड्रेस में ही निकलते, और स्कूल बैग भी ले जाते, लेकिन उसमें किताबों-कॉपियों के बजाय घूमने-फिरने जाने के लिए सामान्य कपड़े रहते। घर से निकलने के बाद एक निश्चित स्थान पर वे सामान्य कपड़े

पहनकर घूमने निकल जाते। स्कूल से घर लौटने के समय हम स्कूल ड्रेस पहनकर घर पहुँच जाते। स्कूल में हमारी अनुपस्थिति दर्ज होती, पर घर पर किसी को कुछ भी अंदाज़ा नहीं होता। इस तरह वर्ष में तीन-चार बार हमने माता-पिता को ठगा... इस पाप के लिए मैं अंतःकरण से मिच्छामी दुक्कडं चाहता हूँ।

(१८) रविवार को दोपहर में किसी विवाह प्रसंग में मैं मेकअप वगैरह करके गई, और वहाँ से सीधे ही वाचना में चली गई। मैं पूरी तरह मुमुक्षु नहीं थी, परन्तु मुझे दीक्षा लेने की थोड़ी-थोड़ी भावना थी। अब मेरे पास ड्रेस बदलकर, मेकअप हटाकर वाचना में जाने जितना समय ही नहीं था, तो घर जाने के बजाय मैं सीधे वाचना में चली गई। ड्रेस तो मर्यादित थी, मेकअप भी यूँ तो ज़्यादा नहीं था, फिर भी मुझे याद आया कि मेरे होठों पर बहुत गहरी लिपस्टिक थी, उसका रंग किसी की भी आँखों में चुभने वाला था। हम मुमुक्षु कम ही थे, दो-तीन भाई और सात-आठ बहनें... उसमें महात्मा की नज़र में वह लिपस्टिक आ जाए, इसकी पूरी संभावना थी... इसलिए मैंने मुँह के पास लगातार मुहपत्ती रखी, ताकि म.सा. की अचानक नज़र पड़े, तो भी लिपस्टिक दिखाई न दे... पर म.सा. चतुर थे, उन्हें अंदाज़ा हो गया कि 'बहन को कुछ बोलना तो है नहीं, तो फिर वह स्वयं मुँह के पास मुहपत्ती क्यों रखे हुए है?' उन्होंने वाचना के बाद मुझे छोटी-सी टोक लगाई कि 'लिपस्टिक लगाकर वाचना में आई हो न...' उन्होंने बिना किसी क्रोध के मुझसे यह बात कही, कहीं भी उद्देग नहीं था, प्रसन्नता थी... विवेक था... मैंने तुरंत क्षमा माँगी, और सच्ची बात बताई। तो उन्होंने कहा, 'लिपस्टिक लगाना दोष है। पर ऐसी स्थिति में लिपस्टिक म.सा. की नज़र में न आए, इसके लिए तुम्हारा प्रयत्न दोष नहीं है। हाँ! इसमें दो विकल्प हैं। तुम मर्यादा के पालन के लिए ऐसा करो, तो यह उत्तम है! पर 'म.सा. के मन में मेरी छवि खराब पड़ेगी कि यह कैसी शौकीन, नखरेबाज़ है...' इस डर से यदि तुम लिपस्टिक छिपाओ, तो तुम स्वयं को अच्छा दिखाने का प्रयत्न कर रही हो, यह गलत है... पर तुमने तो मर्यादा के पालन के लिए ही यह किया है।

इसलिए यह एकदम उचित ही है। बस, इतना ध्यान रखना कि 'स्वयं को अच्छा दिखाने का माया रूपी अशुभ परिणाम तुममें प्रवेश न करे, इसका विशेष ध्यान रखना...'

मैंने म.सा. से क्षमा माँगी, उनकी सच्ची हितशिक्षा से मुझे बहुत लाभ हुआ...

(१९) म.सा.! मेरी दुनिया बहुत ही विचित्रताओं से भरी है। देरासर में पूजा करने जाती हूँ तो मुमुक्षुओं को शोभा देने वाले घाघरा-चोली पहनकर जाती हूँ, देखने वालों को यही लगता कि 'यह मुमुक्षु है...' और उपाश्रय में एकदम मर्यादापूर्ण वस्त्रों में सामायिक करके व्याख्यान सुनती। पर दूसरी ओर छुट्टियों के दिनों में या विशेष प्रसंगों पर पार्टियों में बिल्कुल अशोभनीय कपड़े पहनकर नाचती... एक बार तो शाम को मैं ऐसे अशोभनीय कपड़े पहनकर निकल ही रही थी, तभी मेरी अत्यंत परिचित साध्वीजी कोई दवा लेने अचानक घर आ पहुँचीं। मुझे तो अंदाज़ा ही नहीं था कि इस समय कोई घर आ सकता है, (साध्वीजी...) दरवाज़ा माँ ने खोला, और साध्वीजी अंदर आईं। मुझे जैसे ही पता चला, मैं तुरंत भागकर अंदर गई, और सिर पर ठीक से ओढ़नी ओढ़कर, अशोभनीय कपड़े ढँककर बाहर आई। पर साध्वीजी ने मुझे अपनी पैनी नज़र से देख लिया था। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम्हारा दूसरा संपूर्ण स्वरूप मैंने देख लिया है। क्यों अपने शरीर का ऐसा अशोभनीय प्रदर्शन करके लोगों में वासना उत्पन्न करती हो? इतने सारे प्रवचनों के बाद भी तुम्हें इतना विवेक नहीं आया? हम तो तुम्हारी बहुत प्रशंसा करते हैं, तुम हमारे लिए लोगों को दिखाने हेतु एक आदर्श हो... और तुम ही यदि ऐसा करोगी तो...' साध्वीजी का गला भर आया था, मेरे लिए उनका विश्वास भाव मुझे एकदम छू गया। मैंने उसी समय अंदर जाकर अशोभनीय कपड़े बदल डाले, और साध्वीजी को वचन दिया कि 'मैं अपने जिनशासन की सच्ची श्राविका बनूँगी...' म.सा.! इतने समय तक धार्मिक स्थानों में उत्कृष्ट वस्त्र और अन्य स्थानों में अशोभनीय वस्त्र पहनकर मैंने दुनिया के साथ जो ठगी की है, उसके लिए विशेष मिच्छामि दुक्कंड। बस, उसके बाद तो किसी भी स्थान पर मैंने घाघरा-चोली या शरीर को पूरा ढँकने वाला पंजाबी ड्रेस ही पहना है... सच्ची श्राविका बनी हूँ।

(२०) मेरा विवाह तो हो गया था, पर मुझे नई-नई लड़कियों के साथ संबंध बनाने में बहुत रुचि थी! तो मैंने अनेक लड़कियों को अपनी पहचान अविवाहित के रूप में दी। मोबाइल पर संपर्क होता था, वे मेरी स्मार्टनेस से मेरी ओर आकर्षित होती थीं, और मेरी अविवाहित की पहचान से और भी अधिक आकर्षित होती थीं। इस तरह दो लड़कियों के साथ पहले मोबाइल पर और फिर उनके शहर में होटल में रुककर शारीरिक संबंध भी बनाए। पर जब वे विवाह की बात करतीं, तब मैं सच्ची बात कहकर बच निकलता। वे बेचारी दो लड़कियाँ इस कारण बहुत दुःखी हुईं। एक ने तो आत्महत्या का प्रयास किया और मेरे नाम सब कुछ लिखकर गई। वह मरी नहीं, पर वह पत्र पुलिस के हाथ लग गया, जिससे मैं फँस गया। फिर तो यह बात सार्वजनिक हो गई, मेरी पत्नी को पता चला। केस से बड़ी मुश्किल से छूटा... पत्नी ने अनिच्छा से ही सही, मुझे अपना लिया। अब हमारे बीच के संबंध केवल नाम मात्र के रह गए हैं। पर इतने वर्षों बाद मुझे पश्चात्ताप भी होता है। जवानी के जोश में, वासना के आवेश में मैंने उन दो लड़कियों के साथ कैसा छल किया... बहुत-बहुत मिच्छामी दुक्कड़।

(२१) मेरे पति पर कर्ज़ हो गया था। एक लेनदार दबंग था, वह कड़ी उगाही करता रहता था। पति ने उससे बचने के लिए, उसे सबक सिखाने के लिए मेरा उपयोग किया। मैंने अपने मुँह पर नाखून से घाव किए, कपड़े फाड़े... मुझ पर किसी ने बलात्कार का प्रयास किया हो, ऐसे सबूत गढ़े और फिर मैंने पुलिस में जाकर शिकायत की... पुलिस ने उस लेनदार को सीधे जेल में डाल दिया। वह तो बेचारा निर्दोष ही था। पर मैंने अपने बाहरी रूप को ऐसा खराब बनाकर पुलिस को ठगा। अदालतें स्त्रियों के पक्ष में होती हैं, इसलिए मुझे विशेष लाभ मिल गया। वह बुरी तरह फँस गया... फिर पति ने उसके साथ समझौता किया। उसने लिखकर दिया कि 'सारे पैसे चुका दिए गए हैं।' इस तरह का सारा हिसाब पक्का हो जाने के बाद हमने उस केस को ढीला कर दिया। और वह छूट गया। पर इस तरह हमने एक निर्दोष व्यक्ति को फँसाया। पहली बात तो यह कि हमने उसके पैसे भी नहीं चुकाए, और उलटा उसे परेशान किया। भले ही पैसों की

वसूली के लिए अत्यधिक सख्ती करना उसकी भूल होगी, पर सभी लोग तो ऐसा ही करते हैं। हमने जो किया, वह बिल्कुल उचित नहीं था... अंतःकरण से मिच्छामि दुक्कडं। पिछले तीन वर्षों से पति को समझाकर उस भाई के पैसे चुका रहे हैं, ८०% चुका दिए गए हैं। २०% चुक जाएँगे। अब उसके साथ हमारा सारा व्यवहार अच्छा है।

- X - X -

****अतिचारसूत्र और अठारह पापस्थान****

पहले इन तीन संबंधी पापों का वर्णन।

अतिचारसूत्र में कुल १२४ अतिचारों का वर्णन है।

(१) ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार के आठ-आठ = $८ \times ३ = २४$.

(२) कुल बारह व्रत हैं, प्रत्येक के पाँच-पाँच = $१२ \times ५ = ६०$.

(३) सम्यक्त्व के पाँच और संलेखना के पाँच = $५ + ५ = १०$.

(४) कर्मादान के पंद्रह = १५.

(५) तप के बारह = १२.

(६) वीर्याचार के तीन = ३.

कुल = १२४.

लगभग जो भी भवालोचना की पुस्तकें हैं, उनमें इन अतिचारों के आधार पर सभी मुद्दे दिए गए होते हैं। मैंने इस 'माय ब्लैक डायरी' पुस्तक में अठारह पापस्थानों के आधार पर मुमुक्षुओं के अनुभव लिखे हैं। तो क्या १२४ अतिचारों के अनुसार भवालोचना सही है? या फिर इन १८ पापस्थानों के आधार पर आलोचना सही है?

इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार लगता है।

अतिचारसूत्र में जो सबसे अंतिम आलापक है, उसे ध्यान से देखें...

- नाणाईणं इत्यादि गाथा द्वारा १२४ अतिचार दर्शाए...

- पडिक्कमामि इत्यादि गाथा में सारा सार बता दिया कि

(A) प्रभु ने जो करने, बोलने, विचारने से मना किया है, वह किया-बोला-विचारा... वह पाप!

(B) प्रभु ने जो पूजा-वंदना करने को कहा है, वह नहीं किया-बोला-विचारा... वह पाप!

(C) प्रभु के वचन से विपरीत प्ररूपणा करना... वह पाप!

(D) प्रभु द्वारा बताए गए पदार्थों में श्रद्धा न करना... वह पाप!

इन चार बिंदुओं में सब कुछ आ गया।

उसके बाद तहा पाणाइवायाओ इसके द्वारा १८ पापस्थान बताए गए हैं।

यानी अतिचारसूत्र में अठारह पापस्थान आ ही जाते हैं। पर केवल अठारह पापस्थान में शायद अतिचारसूत्र की सभी वस्तुओं का समावेश न भी हो...

इसमें मुझे ऐसा लगता है कि

(१) जिन आत्माओं ने अभी तक व्रत नहीं लिए हैं, उन आत्माओं के लिए १८ पापस्थानों की आलोचना मुख्य है।

(२) जिन आत्माओं ने व्रत लिए हैं, उन आत्माओं के लिए अतिचारसूत्र में बताए गए अतिचारों की आलोचना मुख्य है। साथ-साथ १८ पापस्थान की भी आलोचना करनी ही है।

ध्यान रखें...

• १८ पापस्थानों की आलोचना पापों की आलोचना है, व्रत में लगे दोषों की आलोचना नहीं है, क्योंकि व्रत लिए बिना भी उन पापों की आलोचना करनी है... और उस समय वे पापस्थान हैं, अतिचार नहीं।

• व्रत लेने के बाद व्रतों में होने वाली भूलें अतिचार-रूप पापों की आलोचना हैं। यदि व्रत न लिए हों, तो पाप पाप गिना जाएगा, अतिचार-अनाचार नहीं गिना जाएगा... यदि व्रत लिए हों, तो पाप अतिचार-अनाचार गिना जाएगा...

१८ पापस्थानों में जिनका वर्णन प्रायः नहीं किया गया है, वैसे कुछ पापः

(१) ज्ञानी-ज्ञानी की आशातना-विराधना आदि के पाप।

(२) दर्शनाचार और सम्यक्त्व संबंधी पाप। यद्यपि इन्हें मिथ्यात्वशक्त्य में लिया गया है, फिर भी उनमें से भी कुछ शेष रह गए पाप।

(३) चारित्राचार के समिति-गुप्ति के पाप।

(४) दिग्परिमाणव्रत के पाप।

(५) भोगोपभोग विरमण के कुछ पाप।

(६) पंद्रह कर्मादान के प्रायः सभी पाप।

(७) अनर्थदंड विरमण के पाप।

(८) सामायिक + देशावगासिक + पौषध + अतिथिसंविभाग... इन चारों व्रतों के पाप।

(९) संलेखना + १२ प्रकार के तप + वीर्याचार के पाप।

इतने पापों का १८ पापस्थानों के वर्णन में प्रायः समावेश नहीं हुआ है, और यदि हुआ भी है, तो पूरी तरह नहीं हुआ है। तो इन सभी पापों पर विस्तार से लिखने के बजाय इनके मुद्दे ही आपको एक साथ दे दिए जाएंगे... आप उन्हें भी पढ़कर उसके आधार पर भी सभी पापों को याद कर-करके लिख लेंगे...

विशेष, विशेष, विशेष नम्र विनती।

यह 'माय ब्लैक डायरी' पुस्तक पापों को याद दिलाने के लिए है। याद दिलाकर पश्चात्ताप जगाने के लिए है, और पश्चात्ताप जगाकर आलोचना करने के लिए है।

पर यह पुस्तक 'पाप किस-किस तरह से किए जा सकते हैं?' यह सिखाने के लिए नहीं है। इसमें प्रत्येक पाप के लिए ढेरों दृष्टांत दिए गए हैं, उन्हें पढ़कर यदि आप पाप करने का तरीका सीखकर पाप करने लगेंगे, तो तो इस पुस्तक के साथ आपने बहुत बड़ा अन्याय किया हुआ ही माना जाएगा।

पाप सीखने के लिए, पाप करने के लिए यह पुस्तक नहीं है, पाप छोड़ने के लिए, पाप तोड़ने के लिए यह पुस्तक है।

सब्जी काटने के लिए बनी छुरी से किसी का गला काट देना, यह तो छुरी का दुरुपयोग है।

शरीर को ढँकने के लिए बनी साड़ी से गले का फंदा बनाकर मर जाना, यह तो साड़ी का दुरुपयोग है।

सफाई के लिए रखे फिनाइल को पीकर ज़िंदगी छोटी कर लेना, यह तो फिनाइल का दुरुपयोग है।

रसोई बनाने के लिए रखे गैस से स्वयं को जला देना, यह तो गैस का दुरुपयोग है।

उसी प्रकार, आत्मा के पापों के निराकरण के लिए लिखी गई इस पुस्तक को पढ़कर पापों की वृद्धि करना, यह तो इस पुस्तक का दुरुपयोग है।

अधम आत्माएँ 'बेस्ट' को 'वेस्ट' बना देती हैं, उत्तम आत्माएँ 'वेस्ट' को भी 'बेस्ट' बना देती हैं...

आप सब उत्तम हैं, और यह पुस्तक 'बेस्ट' है, तो आप तो इसे 'बेस्टेस्ट' ही बनाकर रहेंगे, ऐसी श्रद्धा के साथ रुकता हूँ।

सर्वज्ञ-वीतराग भगवंत की आज्ञा के विपरीत कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छामी दुक्कडं।

- X - X -

युगप्रधानाचार्यसम पूज्यपाद पन्यासप्रवर श्री चंद्रशेखरविजयजी म. के शिष्य
गुणहंसविजय

ता. १७-११-२५, सोमवार, मार्गशीर्ष वद-एकादशी से तेरस, चामराज पेट, महावीर स्वामी
श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैनसंघ के उपाश्रय में यह पुस्तक संपूर्ण हुई।

समय: रात्रि १.१७.